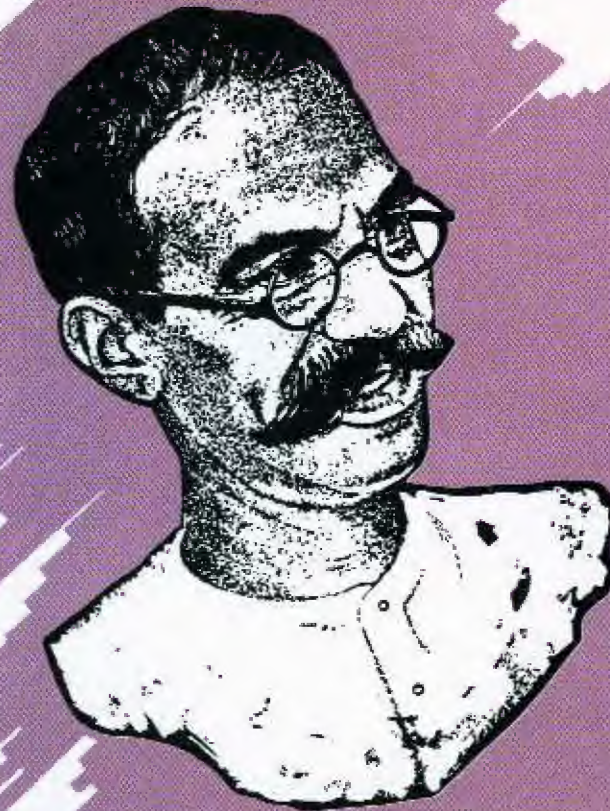


गिजुभाई ग्रंथमाला-16



**कथा-कहानी का
शास्त्र**
गिजुभाई

गिजुभाई-ग्रंथमाला-16

कथा-कहानी का शास्त्र

लेखक

गिजुभाई

अनुवाद

रामनरेश सोनी

मोटिसरी-बाल-शिक्षण-समिति,
राजलदेसर(चूरु) 331802

प्रकाशकीय

हमारे साथियों ने जब यहाँ पर सन् 1954 में अभिनव बालभारती नामक संस्था स्थापित की थी, तभी मेरे जेहन में बाल-शिक्षण के साथ ही साथ अध्यापकों को प्रशिक्षण देने का विचार भी उठ रहा था, बल्कि अभिभावकों द्वारा प्रशिक्षण लेने का विचार भी मेरे मन में बहुत प्रबल था। मैं सौभाग्यशाली रहा कि एक बार कलकत्ते में मुझे प्रख्यात बाल-शिक्षाविद् स्व. के. यू. भामरा से प्रशिक्षण लेने का अवसर मिला, सन् 1958-59 में।

उस प्रशिक्षण ने मेरे इस चिंतन की दिशा को और भी पुष्ट कर दिया कि बाल-शिक्षण के लिए अध्यापकों का ही नहीं, माता-पिताओं का भी नजरिया बदलना जरूरी है। मेरे आग्रह पर स्व. के. यू. भामरा यहाँ पधारे और सन् 1962 में उन्होंने मोण्टीसोरी प्रशिक्षण का काम शुरू किया। आज 25 वर्षों से अध्यापकों के शिक्षण-प्रशिक्षण का कार्यक्रम यहाँ जारी है और अब तक लगभग 200 अध्यापक प्रशिक्षण का लाभ हासिल कर चुके हैं।

मैं अब भी बराबर अनुभव करता रहा हूँ कि अध्यापक बनने के लिए मोण्टीसोरी-शिक्षण का प्रशिक्षण लेना एक बात है, और बच्चों के माता-पिता बनने के लिए प्रशिक्षण लेना एक अलग अहमियत रखता है। मेरी पत्नी और दोनों पुत्रियों ने महज इसी इरादे से प्रशिक्षण लिया था। मैं चाहता हूँ कि अभिभावकों को इस दिशा में प्रेरित किया जाना जरूरी है। इसी इरादे से पिछले दिनों हमने संस्था में 'अभिभावकत्व-शिक्षण' पर एक संगोष्ठी भी आयोजित की थी। संगोष्ठी में बाल-शिक्षण के अच्छे पक्षों पर तो रोशनी डाली ही गई, संस्था के लिए एक सुझाव भी सामने आया कि माता-पिता की शिक्षा के लिए शैक्षिक-साहित्य प्रकाशित कराया जाए। हमने इसे स्वीकार किया, और पहला कदम यह उठाना जरूरी समझा कि देश के महान बाल-शिक्षाविद् स्व. गिजुभाई बधेका की गुजराती भाषा में लिखी हुई पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद करवाकर पुस्तकाकार प्रकाशित करें। इस दिशा में इंदौर के महान गाँधीवादी चिंतक एवं मध्य भारत के प्रथम शिक्षामन्त्री श्री काशिनाथ त्रिवेदी का हमें अभूतपूर्व सहयोग एवं प्रोत्साहन मिला। स्व. गिजुभाई की अनेक पुस्तकों का वे सन् 1932-34 के कार्यकाल में ही अनुवाद कर चुके हैं, और शेष का भी अनुवाद करने का उनका संकल्प है। इसी दिशा में मुझे 'शिविरा-पत्रिका' के संपादकीय सहकर्मी श्री रामनरेश सोनी का भी सहयोग मिला है।

© विमलाबहन बधेका
दक्षिणामूर्ति-बालमन्दिर
भावनगर 364002 (गुजरात)

प्रकाशक :
मोंटेसरी-बाल-शिक्षण-समिति
राजलदेसर (चूरू)

प्रकाशन-वर्ष : 2006 ई.

मूल्य : अड़तालीस रुपये मात्र

मुद्रक :
सांखला प्रिण्टर्स
शिवबाड़ी रोड, बीकानेर 334003

पुस्तक-प्रकाशन का काम अपने काम में बहुत कठिन होता है, विशेषतया अर्थ के अभाव में तो असम्भव-प्राय हो जाता है। पर हमारा सौभाग्य है कि मेरे अनुरोध को यशस्वी दानदाताओं ने स्वीकार किया, और प्रत्येक पुस्तक को अकेले अपने ही आर्थिक-सहयोग से छापने का भार वहन किया है।

इस पुस्तक की 'भूमिका' के लिए देश के जाने-माने शिक्षाविद, विचारक, एवं साहित्यकार डॉ. नन्दकिशोर आचार्य का और 'सम्पादकीय निवेदन' के लिए श्रद्धेय काशिनाथ त्रिवेदी का मैं हार्दिक आभार मानता हूँ।

शिक्षा विभाग ने 'दिवास्वप्न' और 'बाल-शिक्षण : जैसा मैं समझ पाया' पुस्तकों की पांच-पांच हजार प्रतियां ऑपरेशन-ब्लैकबोर्ड के अंतर्गत खरीदकर अपने विद्यालयों को भेजी थी। मुझे खुशी है कि शिक्षा विभाग ने हमारे प्रकाशन कार्य की उपयोगिता को समझा।

मोण्टीसोरी-बाल-शिक्षण-समिति
राजलदेसर 331802

—कुन्दन बैद

संपादक का निवेदन

हिन्दी में गिजुभाई ग्रंथमाला का अवतरण

अपने जन्म से पहले अपनी माँ के गर्भ में, और जन्म के बाद अपने माता-पिता और परिवार के बीच, हमारे निर्दोष और निरीह बच्चों को हमारी ही अपनी नादानी, नासमझी और कमजोरियों के कारण शरीर और मन से जुड़े जो अनगिनत दुःख निरन्तर भोगने पड़ते हैं, जो उपेक्षा, जो अपमान, जो तिरस्कार, जो मार-पीट और डाँट-फटकार उनको बराबर सहनी पड़ती है, यदि कोई माई का लाल इन सब पर एक लम्बी दर्द-भरी कहानी लिखे, तो निश्चय ही वह कहानी, हम में से जो भी संवेदनशील हैं, और सहृदय हैं, उनको रुलाये बिना रहेगी ही नहीं। अपने ही बालकों को हमने ही तन-मन के जितने दुःख दिए हैं, चलते-फिरते और उठते-बैठते हमने उनको जितना मारा-पीटा, रुलाया, सताया और दुरदुराया है, उसकी तो कोई सीमा रही ही नहीं है। इन सबकी तुलना में हमारे घरों में बालकों के सही प्यार-दुलार का पलड़ा प्रायः हल्का ही रहता रहा है।

ऐसे अनगिनत दुखी-दरदी बालकों के बीच उनके मसीहा बनकर काम करने वाले स्वर्गीय गिजुभाई बधेका की अमृत वर्षा करने वाली लेखनी से लिखी गई, और माता-पिताओं और शिक्षक-शिक्षिकाओं के लिए वरदान-रूप बनी हुई छोटी-बड़ी गुजराती पुस्तकों के हिन्दी अनुवाद इस गिजुभाई ग्रंथमाला के नाम से प्रकाशित करने का सुयोग और सौभाग्य बाल-शिक्षा के काम में लगी हमारी एक छोटी-सी शिक्षा-संस्था को मिला है, इसकी बहुत ही गहरी प्रसन्नता और धन्यता हमारे मनःप्राण में रम रही है। हमको लगता है कि इससे अधिक पवित्र और पावन काम हमारे हिस्से न पहले कभी आया, और न आगे कभी आ पाएगा। हम अपनी इस कृतार्थता को किन शब्दों में और कैसे व्यक्त करें, इसको हम समझ नहीं पा रहे हैं। हम नम्रतापूर्वक मानते हैं कि परम मंगलमय प्रभु की परम सुख देने वाली आन्तरिक प्रेरणा का ही यह एक मधुर और सुखद फल है। इसको लोकात्मा रूपी और घट-घट-व्यापी प्रभु के चरणों में सादर, सविनय समर्पित करके हम धन्य हो लेना चाहते हैं : त्वदीय वस्तु गोविन्दः तुभ्यमेव समर्पयेत् !

क्राउन सोलह पेजी आकार के कोई तीन हजार की पृष्ठ संख्या वाली इस गिजुभाई ग्रंथमाला में गिजुभाई की जिन 15 पुस्तकों के हिन्दी अनुवाद

प्रकाशित करने की योजना बनी है, उनमें चार पुस्तकें माता-पिताओं के लिए हैं। चारों अपने ढंग की अनोखी और मार्गदर्शक पुस्तकें हैं। घरों में बालकों के जीवन को स्वस्थ, सुखी और समृद्ध बनाने की प्रेरक और मार्मिक चर्चा इन पुस्तकों की अपनी विशेषता है। ये हैं :

1. माता-पिता से
2. मां-बाप बनना कठिन है
3. माता-पिता के प्रश्न
4. माँ-बापों की मायापट्टी।

बाकी ग्यारह पुस्तकों में बाल-जीवन और बाल-शिक्षण के विविध अंगों की विशद चर्चा की गई है। इनके नाम यों हैं :

1. मोण्टीसोरी-पद्धति
2. बाल-शिक्षण : जैसा मैं समझ पाया
3. प्राथमिक शाला में शिक्षा-पद्धतियाँ
4. प्राथमिक शाला में शिक्षक
5. प्राथमिक शाला में भाषा-शिक्षा
6. प्राथमिक शाला में चिट्ठी-वाचन
7. प्राथमिक शाला में कला-कारीगरी की शिक्षा, भाग 1-2
8. दिवास्वप्न
9. शिक्षक हों तो
10. चलते-फिरते
11. कथा-कहानी का शास्त्र, भाग 1-2

इनमें 'मोण्टीसोरी पद्धति', 'दिवास्वप्न' और 'कथा-कहानी का शास्त्र' ये तीन पुस्तकें अपनी विलक्षणता और मौलिकता के कारण शिक्षा-जगत् के लिए गिजुभाई की अपनी अनमोल और अमर देन बनी हैं। इनमें बाल-देवता के पुजारी और बाल-शिक्षक गिजुभाई ने बहुत ही गहराई में जाकर अपनी आत्मा को उंडेला है। बाल-जीवन और बाल-शिक्षण के मर्म को समझने में ये अपने पाठकों की बहुत मदद करती हैं। बार-बार पढ़ने, पीने, पचाने और अपनाने लायक भरपूर सामग्री इनमें भरी पड़ी है। ये अपने पाठकों को बाल-जीवन की गहराइयों में ले जाती हैं, और बाल-जीवन के मर्म को समझने में पग-पग पर उनकी सहायता करती हैं।

गिजुभाई की इन पन्द्रह रचनाओं में से केवल दो रचनाएं, 'दिवास्वप्न' और 'प्राथमिक शाला में भाषा-शिक्षा' सन् 1934 में पहली बार हिन्दी में

प्रकाशित हुई थीं। शेष सब रचनाएं अब सन् 1987 से क्रम-क्रम से पुस्तक के रूप में प्रकाशित होने वाली हैं। पचास से भी अधिक वर्षों तक हिन्दी-भाषी जनता का हमारा शिक्षा-जगत् इन पुस्तकों के प्रकाशन से वंचित बना रहा। न गिजुभाई का जन्म-शताब्दी-वर्ष आता, और न यह पावन अनुष्ठान हमारे संयुक्त पुरुषार्थ का एक निमित्त बनता। 15 नवम्बर, 1984 को शुरू हुआ गिजुभाई का जन्म-शताब्दी-वर्ष 15 नवम्बर, 1985 को पूरा हो गया। किन्तु गुजरात की बाल-शिक्षा-संस्थाओं ने और बाल-शिक्षा-प्रेमी भाई-बहनों ने गुजरात की सरकार के साथ जुड़कर जन्म-शताब्दी-वर्ष की अवधि 15 नवम्बर, 86 तक बढ़ाई, और गिजुभाई के जीवन और कार्य को उसके विविध रूपों में जानने और समझने की एक नई लहर गुजरात-भर में उठ खड़ी हुई। गुजरात के पड़ौसी के नाते उस लहर ने राजस्थान, मध्यप्रदेश और उत्तरप्रदेश के हम कुछ साथियों को भी प्रेरित और प्रभावित किया। फलस्वरूप गिजुभाई ग्रंथमाला को हिन्दी में प्रकाशित करने का शुभ संकल्प राजस्थान के राजलदेसर नगर के बाल-शिक्षा-प्रेमी नागरिक भाई श्री कुन्दन बैद के मन में जागा, और उन्होंने इस ग्रंथमाला को हिन्दी-भाषी जगत् के हाथों में सौंपने का बीड़ा उठा लिया।

हमको विश्वास है कि भारत का हिन्दी-भाषी जगत्, विशेषकर उसका हिन्दी-भाषी शिक्षा-जगत्, अपने बीच इस गिजुभाई ग्रंथमाला का भरपूर स्वागत, मुक्त और प्रसन्न मन से करेगा, और इससे प्रेरणा लेकर अपने क्षेत्र के बाल-जीवन और बाल-शिक्षण को सब प्रकार से समृद्ध बनाने के पुण्य-पावन कार्य में अपने तन-मन-धन की तल्लीनता के साथ जुट जाना पसन्द करेगा। हिन्दी में गिजुभाई ग्रंथमाला के अवतरण की इससे अधिक सार्थकता और क्या हो सकती है ?

अपने जीवन-काल में गिजुभाई ने अपनी रचनाओं को अपनी कमाई का साधन बनाने की बात सोची ही नहीं। अपने चिन्तन और लेखन का यह नैवेद्य भक्तिभावपूर्वक जनता जनार्दन को समर्पित करके उन्होंने जिस धन्यता का वरण किया, वह उनकी जीवन-साधना के अनुरूप ही रहा। गिजुभाई के इन पदचिह्नों का अनुसरण करके हमने भी अपनी गिजुभाई ग्रंथमाला को व्यावसायिकता के स्पर्श से मुक्त रखा है, और ग्रंथमाला की सब पुस्तकों को उनके लागत मूल्य में ही पाठकों तक पहुँचाने का शुभ निश्चय किया है।

बीकानेर, राजस्थान के हमारे बाल-शिक्षा-प्रेमी साथी, जाने-माने शिक्षाविद् और गिजुभाई के परम प्रशंसक श्री रामनरेश सोनी इस ग्रन्थमाला के अनुष्ठान को सफल बनाने में हमारे साथ सक्रिय रूप से जुड़ गए हैं, इससे हमारा भार बहुत हल्का हो गया है।

हमको खुशी है कि हमारे साथी श्री कुन्दन बैद इस ग्रन्थमाला की 15 पुस्तकों के लिए पन्द्रह ऐसे उदार और सहृदय दाताओं की खोज में लगे हैं, जो इनमें से एक-एक पुस्तक के प्रकाशन का सारा खर्च स्वयं उठाने को तैयार हों। इसमें भी पहल श्री कुन्दन बैद ने ही की है। त्याग और दान की बेल तो ऐसे ही खाद-पानी से फूलती-फलती रही है।

—काशिनाथ त्रिवेदी

गांव-पीपल्याराव

इन्दौर-452001

सादर नमन

हम अपने पाठकों को अत्यंत दुःख के साथ सूचित कर रहे हैं कि गिजुभाई ग्रंथमाला के हिन्दी अवतरण के हमारे संपादक श्रद्धेय काशिनाथ त्रिवेदी का 26 जून, 1996 को देहांत हो गया। वे 90 वर्ष के थे। उस महान विभूति को हमारा सादर नमन।

उनकी प्रेरणा से अनुवाद का काम लगभग पूरा हो चुका है, अब पुस्तकें मुद्रित होकर पाठकों के हाथों में आनी शेष हैं।

—कुन्दन बैद

भूमिका

सम्प्रेषण का मर्म

साहित्य का उद्देश्य क्या है? इस सवाल को लेकर साहित्य के पंडितों में एक अन्तहीन बहस चल रही है। वह अपना उद्देश्य स्वयं ही है अर्थात् उसके रचे जाने और पढ़े-सुने जाने की रचनात्मक प्रक्रिया से प्रसूत आनन्द ही उस का उद्देश्य है, यह मानने वाला एक बड़ा वर्ग है जिसे उसके आलोचक मनुष्य, जीवन और समाज से कटा हुआ मानते हैं। यह दूसरा वर्ग जीवन से जुड़े सवालों को एक नीति-शास्त्र के परिप्रेक्ष्य में रख कर देखने की कोशिश करने को साहित्य का उद्देश्य मानता है। इस वर्ग के लिए साहित्य मूलतः एक शैक्षणिक प्रक्रिया हो जाता है।

गिजुभाई की प्रसिद्धि एक शिक्षक के रूप में है। इसलिए जब उनकी पुस्तक 'कथा-कहानी का शास्त्र' मुझे मिली तो उसे पढ़ना शुरू करने से पूर्व ही मेरे मन में यह पूर्वग्रह बन गया था कि उन के लिए कहानी निश्चय ही नीति शिक्षा का माध्यम होगी। कोई भी शिक्षक कहानी को क्यों महत्व देगा यदि वह उसके लिए शिक्षण का माध्यम हो सकने में असफल हो?

लेकिन आश्चर्य! गिजुभाई तो कुछ और ही बात कहते हैं। और यह बात केवल कहानी पर ही लागू नहीं होती बल्कि साहित्य की उस अन्तहीन बहस को भी एक समाधान देने की कोशिश करती लगती है जिसका उल्लेख मैंने प्रारम्भ में किया था। गिजुभाई कहते हैं कि कहानी का उद्देश्य नीति-शास्त्र की शिक्षा देना नहीं बल्कि निर्दोष आनन्द है। उल्लेखनीय यह है कि वह वयस्क को ही नहीं, किसी बालक तक को नीति-शास्त्र की शिक्षा देने की किसी भी मंशा या प्रयत्न को अनिवार्यतः मानवीय स्वतन्त्रता का अपमान मानते हैं। एक शिक्षक शिक्षा देने के प्रयत्न को ही मानवीय स्वतन्त्रता का अपमान कहे, इससे अधिक आश्चर्य की बात क्या हो सकती है? लेकिन गिजुभाई स्पष्ट लिखते हैं, 'नीति-शिक्षण मनुष्य को आत्मा की स्वतन्त्रता से भ्रष्ट करने की कोशिश करता है।' ऐसा क्यों?

गिजुभाई उन विचारकों में हैं जो जीवन को आनन्द का स्रोत मानते हैं और इसीलिए यह भी मानते हैं कि आनन्द से वंचित करने वाली कोई भी बात

अनिवार्यतः जीवन के विरोध में ही होगी। इसीलिए वह लिखते हैं : 'आनन्द हमारे जीवन का स्वाभाविक लक्षण है। जीवात्मा आनन्दमय वस्तु है। आनन्द की भूख और वांछा जीवन की ही भाँति स्वाभाविक है। यह आनन्द जितने निर्दोष एवं पवित्र साधनों द्वारा मनुष्य को उपलब्ध करवाया जायेगा, उतना ही मानव जाति के लिए उपकारक होगा।' शिक्षा भी इसीलिए तभी वास्तविक शिक्षा है जब वह इस आनन्द की अनुभूति का माध्यम बन सके—और स्पष्ट है कि तब शिक्षा का एक माध्यम समझी जाने वाली कहानी की सार्थकता भी इस आनन्द का एक स्रोत होने में ही होगी। यह अकारण नहीं है कि भारतीय परम्परा में ज्ञान और आनन्द में उसी तरह कोई भेद नहीं किया गया जिस तरह शिव और सुन्दर में। गिजुभाई न केवल इस अवधारणा से परिचित हैं बल्कि एक शिक्षक के रूप में उनके सारे प्रयोग इसी से निसरते हैं।

स्मरणीय है कि यह आनन्द कोई रणनीति नहीं एक प्रामाणिक अनुभूति है। शिक्षण की कोई भी प्रक्रिया और कहानी भी—जिस तरह बालक के लिए आनन्द का स्रोत है, उसी प्रकार शिक्षक के लिए भी। कुछ लोग यह समझ सकते हैं कि यदि हम शिक्षण-प्रक्रिया को या कहानी को रोचक बना कर प्रस्तुत कर दें तो वह बालक के लिए सहज ग्राह्य हो जायेगी। लेकिन तब वे शिक्षण की रोचकता को और कहानी को भी—एक रणनीति की तरह इस्तेमाल कर रहे होंगे और इसलिए वह स्वयं उन के लिए आनन्द की प्रामाणिक अनुभूति का स्रोत नहीं हो सकेगी। स्पष्ट है कि बालकों के लिए भी तब वह आनन्द की बात नहीं बन पायेगी। कोई भी कहानी सुनने वाले के लिए आनन्द का स्रोत हो सकती है या नहीं, यह जानने की एक मात्र प्रामाणिक कसौटी यही है कि वह कहने वाले—और लिखने वाले के लिए भी—आनन्द की अनुभूति सम्भव करती है या नहीं।

कहानी कहना एक सर्जन-कर्म भी है और एक सम्प्रेषण-कर्म भी। इसलिए गिजुभाई उन सब बातों की ओर तो हमारा ध्यान आकर्षित करते ही हैं जिनके माध्यम से हम इस कला की बेहतर साधना कर सकें, साथ ही एक सम्प्रेषणकर्मी के रूप में वह अपने श्रोता-समूह की ग्रहण-सामर्थ्य और उसके मनोविज्ञान से परिचित होने की ज़रूरत पर भी बल देते हैं। लेकिन हर हालत में वह अपने श्रोता की स्वतन्त्र सत्ता का पूरा सम्मान करते हैं। तभी वह यह कह पाते हैं : 'दूसरों का

चरित्र गढ़ने का जिम्मा अपने ऊपर लेना जोखिम का काम तो है ही, इससे भी अधिक मूर्खता-भरा भी है।'

लेकिन इस का तात्पर्य यह नहीं है कि गिजुभाई बालकों के लिए हर तरह की कहानी को उपयुक्त मानते हैं। वह कहानी के विषयों और उसकी वस्तु पर भी बड़ी बारीकी से विचार करते हैं और स्पष्ट कहते हैं कि ऐसी कहानियाँ नहीं कही जानी चाहिए, जिनसे भय या बुरी प्रवृत्तियाँ पैदा होती हों। कुछ लोगों को यह एक तरह का विरोधाभास लग सकता है। यदि कहानी कला की कसौटी पर खरी उतर रही है तो उस के प्रभाव या परिणाम पर विचार क्यों किया जाय ? और यदि ऐसा किया जाता है तो यह कहने का क्या अर्थ रह जाता है कि कहानी का उद्देश्य नीति-शिक्षण नहीं आनन्द है ? लेकिन यदि हम गिजुभाई की मूल स्थापना पर गौर करें तो पायेंगे कि यहाँ कोई विरोधाभास नहीं है। गिजुभाई जब आनन्द की बात करते हैं तो वह एक स्वस्थ मन का आनन्द है। इसीलिए वह 'निर्दोष आनन्द' की बात करते हैं। कला और साहित्य को कई मनीषियों ने 'स्वस्थ व्यक्ति की आनन्द साधना' कहा है। आनन्द-साधना वह तभी है जब उसमें अहं का विलयन हो जाय। इस का तात्पर्य है उन सब प्रवृत्तियों का विलयन हो जाना जिन का स्रोत अहं में है। यहाँ अज्ञेय के एक लेख 'सौन्दर्य-बोध और शिवत्व बोध' का अनायास ही स्मरण हो आता है जिसमें वह यह मन्तव्य प्रकट करते हैं कि मानव का विवेक ही दोनों मूल्यों का स्रोत है और इसलिए 'कला हमें आनन्द भी देती है, हमारा उन्नयन भी करती है।' यदि आनन्द जीवन का लक्षण है तो इस का बोध जीवन का बोध है और इस की ओर बढ़ना ही जीवन का संस्कार और उन्नयन भी है। इसलिए कहानी यदि आनन्द का स्रोत नहीं है तो वह जीवन के उन्नयन का स्रोत भी नहीं है। और शिक्षा क्या है सिवा जीवन के इस उन्नयन और आनन्द के !

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि गिजुभाई की यह पुस्तक कोई कहानी नहीं (यद्यपि इसमें कई कहानियाँ कही गयी हैं) बल्कि 'कथा-कहानी का शास्त्र' है, लेकिन इसे पढ़ना कहानी पढ़ने की ही तरह रोचक है। गिजुभाई इस शास्त्र की प्रक्रिया में भी हमें उसी तरह साथ ले लेते हैं जैसे एक कहानी कहने वाला अपने श्रोता को। पुस्तक पढ़ते हुए प्रत्येक पाठक को लगता है जैसे गिजुभाई सीधे उसी को सम्बोधित कर रहे हैं और कहानी कहने का कोई शास्त्र नहीं बता रहे बल्कि अपने अनुभवों का किसी आत्मीय से सीधा साझा कर रहे हैं। वह कहीं भी अपने

मन्तव्य को छुपाते नहीं बल्कि बड़ी सहजता और स्पष्टता के साथ हमारे सामने खोलते हैं और यह सहजता और स्पष्टता ही उन की बातों को अनुभव की विश्वसनीयता दे देती है। इस पुस्तक को लिखकर गिजुभाई ने तो एक बड़ी सेवा की ही है, श्री रामनरेश सोनी ने इस की सहजता को बनाये रखते हुए जो प्रामाणिक अनुवाद प्रस्तुत किया है, वह हिन्दी प्रदेश के सभी शिक्षकों और संस्कृतिकर्मियों के लिए भी एक ऋणानुबन्ध है जिससे उनका उन्नोचन तभी सम्भव है जब वे अपने सम्प्रेषण-कर्म को आनन्द के एक स्रोत में रूपान्तरित कर लें। अज्ञेय की पंक्तियाँ याद आती हैं :

अँधेरी रात
जागते शिशु की तरह मुस्कुरा उठे,
दिन
हो एक आलोकद्वार जिससे मुझे जाना है
(समय मेरा रथ और उल्लास मेरा घोड़ा)
मेरा जीवन—
घास की पत्ती से झूलती हुई यह अजानी ओस बूँद—
सूर्य की पहली किरण से जगमगा उठे और स्वयं
किरणें विकीरित करने लगे।
मेरा कर्म
मेरे गले का जुआ नहीं
वह जोती हुई भूमि बन जाये
जिसमें मुझे
नया बीज बोना है।

—नन्दकिशोर आचार्य

सुथारों की बड़ी गुवाड़,
बीकानेर 334005

दो शब्द

लगभग एक महीने के सतत लेखन के बाद आज यह पुस्तक पूरी हो रही है।

इसमें कथा-कहानी से संबंधित मेरे दस वर्षों के अनुभव समाहित हैं। कथाशास्त्र के बारे में आज तक मैंने जो कुछ पढ़ा है, उसका सार भी मैंने यहाँ यथाशक्ति यथामति प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

एक लेखक ने लिखा था कि 'कोई भी पुस्तक अपने प्रकाशन के पाँच मिनट बाद ही पुरानी पड़ जाती है।' ऐसे में यदि मैं यह लिखने की धृष्टता करता हूँ कि मेरी यह पुस्तक अपने विषय की एक सम्पूर्ण पुस्तक है, तब भी कल इसमें बहुत सारी बातें पुनः जोड़ने की गुंजाइश निकल आएगी। इसलिए यदि यह पुस्तक अपूर्ण रह जाती है तब भी मुझे संतोष ही होगा।

प्रत्येक अध्यापक, माता-पिता और कहानी कहने वाला व्यक्ति अगर इस पुस्तक को शुरू से अंत तक ध्यानपूर्वक पढ़ लेगा तो मैं समझता हूँ कि उनके निमित्त किया गया मेरा यह परिश्रम अकारथ नहीं जाएगा।

इत्यलम्।

२०-११-१९२३

श्री दक्षिणामूर्ति बाल मंदिर
भावनगर

गिजुभाई

अनुक्रमणिका

प्रथम खण्ड

1. कहानी कहने का उद्देश्य	13
2. कहानी का चुनाव	24
3. कहानियों का क्रम	49
4. कहानी को कहने योग्य कैसे बनाएँ ?	70
5. कहानी किस तरह कहें !	133

द्वितीय खण्ड

6. कहानी कहने का समय	145
7. कहानी का विशिष्ट उपयोग	156
8. कहानी और नाट्य-प्रयोग	168
9. कथा-कहानी और नीति-शिक्षण	178
10. लोक-वार्ताएँ और कल्पना-शक्ति	192
11. लोक-कथाओं का साहित्य	202
12. अन्ततः	216
13. कथा-कहानी का भंडार	225

परिशिष्ट

14. मरम की बात	234
----------------	-----

प्रथम खण्ड

पहला प्रकरण

कहानी कहने का उद्देश्य

कथा-कहानी के शास्त्र का प्रथम प्रकरण कहानी कहने के उद्देश्य से संबंधित ही होना चाहिए। जब तक कहानी कहने वाले व्यक्ति के मन में कहानी कहने का उद्देश्य स्पष्ट नहीं होगा, तब तक वह कहानी के चुनाव, उसकी कथावस्तु की क्रमबद्धता तथा कहने की छटा को लेकर अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ अनुभव करेगा।

हमें विदित है कि कहानी सुनकर मनुष्य आनंद का अनुभव करता है। जो कहानियाँ मनुष्य के मन में निराशा के भाव भर देती हैं, उन कहानियों का जीवन क्षणिक होता है। इसके विपरीत कई कहानियाँ लोगों को निराशाजनक प्रतीत होती हैं, पर उनमें व्यक्त सतही निराशा अनेकानेक दुःखी लोगों के जीवन में आशा का संचार करती है अथवा जो लोग जीवन-संघर्ष में हार जाते हैं उनको संघर्ष के लिए उत्तेजित करती है अथवा कहना न होगा कि वे अंततः एक सहानुभूतिपूर्ण मित्र का दायित्व निभाती हैं। स्वभावतया मनुष्य हर स्थिति में आनंद प्राप्त करने की इच्छा रखता है अथवा यों भी कह सकते हैं कि वह दुःख-दर्द को भुला देना चाहता है। इन दोनों वृत्तियों से प्रेरित होकर ही व्यक्ति कहानी सुनता है। कहानी आनंद-प्राप्ति की स्वाभाविक खुराक होती है और दर्द की दवा भी। नन्हें बालक अपनी कल्पना की तरंगों में ऊंची से ऊंची उड़ान भरने के लिए, वास्तविकता की दुनिया को जान-समझकर उसके कल्पना के प्रदेश को उधाड़ने के लिए, अपने निजी अनुभवों को कहानी के द्वारा पुनः पुनः ताजा करने के लिए, अपनी अधूरी इच्छाएँ पूरी करने के लिए, अपनी अक्रिय भावनाओं के निर्झर को गति से प्रवाहित करने के लिए तथा अंततः अपने आसपास की अच्छी न लगने वाली दुनिया और उसकी मर्यादा में आए छोटे-छोटे दुःखों को पल भर भुला देने के लिए कहानियाँ सुनना चाहते हैं। इस चाहत के पीछे उनके भीतर किसी न किसी प्रकार के आनंद की इच्छा रहती है।

हमारी सामाजिक घटनाएँ, घर-परिवार व कुटुम्ब की व्यवस्था तथा धर्म की संयोजना ऐसी है कि मनुष्य को अनेक निर्दोष आनंद तलाश करने में, और हाथ लग

जाएँ तो उन्हें अनुभव करने में अनेक प्रकार की बाधाएँ सामने आती हैं। कृत्रिम समाज में जहाँ-जहाँ भी स्वाभाविक आनंद का विरोध होता है, वहाँ-वहाँ मनुष्य को कृत्रिम साधनों के द्वारा अपना आनंद तलाशना पड़ता है। कहानी इसी प्रकार का एक साधन है, नाटक और सिनेमा भी ऐसे ही साधन हैं। कोई साधन जितना अधिक शुद्ध होगा, उतना ही अधिक उसका व्यवहार होगा। नाटक और सिनेमा जैसे आनंद देने वाले साधनों की चर्चा को अप्रासंगिक मानते हुए मैं इन्हें एक तरफ रख देना चाहूँगा। आनंद देने वाले शुद्ध साधन के रूप में कहानी की प्रासंगिकता को स्वीकार करते हुए मैं यहाँ इस पर विचार करना समीचीन समझता हूँ।

हमारा सामाजिक जीवन सम्पूर्णतया स्वाभाविकता को अंगीकार कर ले, यह न आज, न कल, न ही वर्षों तक संभव है। जब तक इसमें मानवीय आनंद का थोड़ा-बहुत अंश आ नहीं जाता, तब तक कहानी की उपादेयता बनी रहेगी। एक समय ऐसा आ जाएगा कि जब मनुष्य वास्तविकता के सौंदर्य को भलीभाँति समझ लेगा, और जब वास्तविकता में वह सम्पूर्ण सुखों का भोक्ता बन जाएगा, तब मनुष्य को कहानी, उपन्यास, नाटक, सिनेमा और शराब आदि साधनों की कतई जरूरत नहीं पड़ेगी। लेकिन जब तक ऐसा नहीं होता, तब तक कहानी का माध्यम मनुष्य के लिए हितावह है और इसका प्रथम उद्देश्य है आनंद। आनंद हमारे जीवन का स्वाभाविक लक्षण है। जीवात्मा आनंदमय वस्तु है। आनंद की भूख और वांछ जीवन की ही भाँति स्वाभाविक है। यह आनंद जितने निर्दोष एवं पवित्र साधनों द्वारा मनुष्य को उपलब्ध कराया जाएगा, उतना ही मानव जाति के लिए उपकारक सिद्ध होगा।

हमारा अनुभव भी ऐसा ही है। रोता बालक जब कहानी सुनने लगता है तो रोना भूल जाता है। कहानी पढ़ते-पढ़ते या सुनते-सुनते रोगी अपनी पीड़ा को भूल जाता है। पराजित व निराश मनुष्य कहानी के वाचन और मनन द्वारा फिर से संघर्ष के लिए तैयार हो जाता है। स्वस्थ और आशान्वित व्यक्तियों को कहानियों के द्वारा अपने सम्पूर्ण जीवन के निर्माण की प्रेरणा मिलती है। युवकों के हृदय कहानियों के माध्यम से अपनी प्रेम-प्रतिमा और प्रेम-भीमांसा निर्मित करते हैं। बालक व वृद्ध भी कहानियों की शरण लेकर या तो अपने दुःख-दर्द को भुला देते हैं या फिर उनमें नई चेतना का संचार होता है।

शायद ही कोई देश होगा, जहाँ कथा-साहित्य न हो और जहाँ आनंद प्राप्ति के लिए कहानियाँ न कही जाती हों, न पढ़ी जाती हों। हर शाम खाना खा लेने के

पश्चात् बालकों के झुंड कहानी सुनाने के लिए घर के बड़ों-बूढ़ों को घेर लेते हैं—यह परंपरा धरती पर विकसित समाजों में भी देखने में आती है और अविकसित अथवा जंगली लोगों में भी। देश-परदेश में घूमने वाले मुसाफिर किसी रात किसी धर्मशाला में रुकते हैं तो अन्य देशों के मुसाफिरों के साथ बैठ कर नई-नई कहानियाँ कहते-सुनते हैं और दिन भर की थकान उतारते हैं। युद्ध के जख्मों को वीरता से झेल लेने वाले सिपाही दवा की शीशियों से भी अधिक महत्त्व कहानियाँ सुनाने वाली नर्स को देते हैं। जेल में सड़ते कैदियों को भी अगर मौका मिल जाता है तो वे कहानियाँ कहने का प्रसंग जरूर ढूँढ़ लेते हैं। लम्बी समुद्री यात्राओं में कहानियाँ ही रात के समय एकमात्र विनोद का माध्यम बनती हैं। राजा और रानी तो हमेशा सोने से पहले कही जाने वाली कहानियों अथवा लोककथाओं में हमसे बार-बार बतियाते हैं। कहानी की यही तो खासियत है कि इसमें सभी आनंद लेते हैं। काका कालेलकर ने थोड़े-से शब्दों में कहानी की महिमा का सुंदरता से यों वर्णन किया है :

‘उत्तरी ध्रुव से लेकर दक्षिणी ध्रुव तक के सभी देशों में, विशाल जनपदों अथवा नन्हें टापुओं में, विकसित लोगों अथवा जंगली निवासियों में, बूढ़ों और बच्चों में, गृहस्थियों अथवा संन्यासियों में यदि कोई सर्वसामान्य व्यसन देखा जा सकता है तो वह है कहानी का व्यसन। संसार में शायद ही कोई गाँव होगा जहाँ शाम पड़ी हो और कहानियाँ न चलती हों!’

‘जहाँ-जहाँ व्यापार के पुराने अड्डे थे वहाँ-वहाँ दूर देशांतरों के व्यापारी सरायों में इकट्ठे होते थे और फिर चातुरी, ठगबाजी, आशिक-माशूक, कुत्ते-बिल्ली, राजा-रानी, साधु-संतों, दैवी क्षोभ अथवा दैवी चमत्कारों, तंत्र-मंत्र या जादू-टोनों की कहानियाँ ही चलती थी।’

देखा, कैसी आनंददायी वस्तु है कहानी। कहानी सुनने में मनुष्य को अपूर्व आनंद मिलता है, स्पष्ट है कि कहानी सुनाने वाले व्यक्ति के समस्त प्रथम उद्देश्य श्रोता को शुद्ध व सम्पूर्ण आनंद देना होना चाहिए। एक और दृष्टि से भी जरा विचार करें। कहानी सुनाने का प्रथम उद्देश्य आनंद प्रदान करना ही हो सकता है, क्योंकि इसका आदि-स्वभाव आनंद है। कहानी स्वयं एक कलाकृति है और प्रत्येक कलाकृति का मुख्य उद्देश्य उसके परिचय में आने वाले व्यक्ति अथवा व्यक्तियों को

आनंद देना ही होता है। प्रत्येक कला की विशिष्ट आत्मा होती है। प्रत्येक कला लोगों को कुछ न कुछ संदेश देना चाहती है। पत्थर में मूर्तिवत कला एक संदेश देती है तो केनवास पर चित्रित कला कोई अन्य संदेश देती है। यह संदेश उस मनुष्य की आत्मा में निहित कला का है। मनुष्य की आत्मा अनेक रूपों-रीतियों से व्यक्त होती है। साहित्य, संगीत व कला आदि में आत्मा का प्रतिबिम्ब है। कहानी लोकजीवन का—लोकात्मा का प्रतिबिम्ब है। इसका उद्देश्य मानवीय आत्मा की साहित्य विषयक कला को व्यक्त करना है। संगीत ध्वनि-प्रधान कला है, चित्र रूप-प्रधान कला है; साहित्य काव्य-प्रधान कला है; कहानियाँ अनेक रसों का भंडार होती हैं। विविध रसों के भोक्ता इन रसों का पान करके आनंद व तृप्ति प्राप्त कर सकते हैं। साहित्य का यह रस-विभाग कहानी में जितने अधिक परिमाण में प्रकट होता है, उतने परिमाण में कहानी एक कला-कृति है तथा उतने ही परिमाण में कहानी कहने का उद्देश्य आनंद प्रदान करना है।

नाट्यकला का प्रथम उद्देश्य नाटक के दर्शक को आनंदित करना है। नाटक में चाहे जितना ज्ञान भरा हो, अथवा सामाजिक, आर्थिक या राजनीतिक बातों से वह चाहे जितना समृद्ध हो, पर यदि वह दर्शकों को आनंद नहीं दे सके तो बेकार है। उसके अवांतर लाभ अनेक हो सकते हैं। उसमें अनेक उपयोगी बातें गुँथी हुई हो सकती हैं पर नाटक की सफलता तो उसमें जो आनंद प्रदान करने की शक्ति है, उसमें निहित रहती है। बहुरंगी, स्वस्थ एवं उपयोगी घटनाओं का यदि उसमें से सुसंयोग प्रकट न हो तो नाटक असफल रहता है। यही बात कहानी की है। अनेक लाभ हैं इसके। पर लाभ प्रदान करने वाली वास्तविकताएँ कहानी की अंतरात्मा नहीं अपितु शरीर होती है। उसमें से उत्पन्न होने वाली कला ही इसका गण है। इसी से व्यक्ति कहानी की ओर आकृष्ट होता है।

जहाँ कहीं भी शिक्षण की क्रिया आनंद से विहीन रहेगी, वहाँ-वहाँ आज नहीं तो कल, एक वर्ष में नहीं तो दो वर्षों बाद, इस दौर में नहीं तो अगले दौर में शिक्षण-कार्य निष्फल ही जाएगा। आज तो शिक्षाशास्त्र के अग्रगण्य विद्वान वेचारक बार-बार यही बात कह रहे हैं और प्रमाणित करके बता रहे हैं कि शिक्षण और आनंद दोनों एक ही चीजें हैं, इसके ठीक विपरीत अशिक्षण और निरानंद भी एक ही चीजें हैं। आज 'खेल के समय खेल और काम के समय काम' वाला शिक्षण सूत्र बदल रहा है। कुछेक विद्यालयों में 'खेल को काम तथा काम को खेल'

माना जाने लगा है। इनसे भी कुछ थोड़े विद्यालयों ने 'सभी तरह के खेल काम हैं और सभी काम खेल हैं' के जीवन-सूत्र को अंगीकार कर लिया है।

यदि यह बात स्वयंसिद्ध है कि कहानी आनंद देने वाली चीज है तो निश्चय ही कहानी को विद्यालयी-शिक्षण में महत्त्वपूर्ण स्थान मिल जाएगा। इसीलिए आज अनेक देशों में कहानी के द्वारा कई-कई विषयों को पढ़ाने की विधि व्यवहार में आने लगी है। प्रथम उद्देश्य से प्रतिफलित होने वाला यह दूसरा उद्देश्य है। हर तरह के विषय-शिक्षण की शुरुआत कहानी सुना कर की जा सकती है। कहानी द्वारा शिक्षण देने की रीति बहुत पुरानी है। एक अवतरण से इस बात को स्पष्ट किया जा सकता है : 'हिन्दुस्तान में भी यात्रा के लिए निकले ऋषि-मुनि अगर कहीं अनुष्ठान कर रहे होते, तो वहाँ कुछ दिन विश्राम करते और अत्यंत उत्साह के साथ धार्मिक कथाओं का विनिमय करते। भगवान बुद्ध हर शाम श्रमण भिक्षुओं को इकट्ठा करके कहानियाँ सुनाते थे। ईसा मसीह भी धर्मोपदेश के समय कहानियों के माध्यम से ही उपदेश देते थे।' हमारे यहाँ भी राजपुत्रों को धार्मिक कहानियों के द्वारा सभी तरह का ज्ञान दिया जाता था। पंचतंत्र की प्रतिज्ञा वाली बात भी ऐसी ही है। विष्णुशर्मा ने किस तरह राजा के ठोठ पुत्रों को छह महीनों के अंदर-अंदर पढ़ा-गुना कर बुद्धिमान बना दिया। उपनिषदों में भी महान ऋषिगण विश्व के रहस्यों का उद्घाटन करने वाले सिद्धांत कहानी के माध्यम से ही अपने शिष्यों को समझाते थे। मध्यकाल में और आज भी हमारे जीवंत कथा-भट्ट रामायण-महाभारत जैसे विषय कथा-वार्ता के द्वारा ही बताते हैं। इस पुस्तक के 'कहानी का विशिष्ट उपयोग' प्रकरण में इस विषय पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है अतः यहाँ इतनी ही चर्चा करके आगे बढ़ना समीचीन लग रहा है।

कथा-कहानी का तीसरा उद्देश्य है श्रोताओं की कल्पना-शक्ति को विकसित करना। कल्पना और भ्रमणा दोनों में बहुत अंतर है। मैं इस अंतर को स्वीकार करके ही चलता हूँ। कल्पना यथार्थ की दूसरी ओर रहती है अथवा कल्पना यथार्थ का विस्तार है। प्रत्येक कल्पना वास्तविकता के मूल में निहित रहती है, पर वास्तविकता से अमुक वस्तु कल्पना को प्राप्त करती है तथा उसी में कल्पना-शक्ति का बल विद्यमान रहता है। अंततः मनुष्य का मानस मर्यादित है इसी से कल्पना का प्रदेश भी मर्यादित है। कल्पना का प्रदेश वास्तविकता की वजह से ही मर्यादित रहता है। कल्पना शक्ति को विकसित करने का काम कहानी करती है। जब

बालक एक, दो, तीन, चार की संख्याएँ सीखता है तो उसकी समझ में यह बात भी आने लगती है कि इस प्रकार की अनंत संख्याएँ भी हो सकती हैं। जब तक ऐसी समझ नहीं आती, तब तक बालक में गणित विषयक कल्पना भी नहीं आती। एक आदमी मरता है, दो मरते हैं, तीन मरते हैं, इसी भाँति सभी मनुष्य मृत्यु के आधीन हैं, ऐसी समझ पैदा होना कल्पना का क्षेत्र है। विशिष्ट के द्वारा सामान्य को समझने की क्षमता विकसित होना कल्पना शक्ति की प्रबलता पर निर्भर करता है। यह तो हुई एक बात। दूसरी बात यह है कि वास्तविकता के अलग-अलग प्रकार के मिश्रण करके उसे एक नवीन मिश्रण के रूप में प्रस्तुत करना, यह भी कल्पना का क्षेत्र है। भाँत-भाँत के वृक्षों, फूलों और पंखुड़ियों के अध्ययन द्वारा चित्रकला में नए फूल की योजना करना कल्पना के कारण ही संभव है। इस संसार में घटित होने वाली अनेक प्रकार की घटनाओं के यथार्थ को नवीन रचना शैली में ढालकर उसे एक विशिष्ट घटना बना देना—यही कहानी में निहित कल्पना तत्त्व है। कहानी स्वयं कल्पना का प्रतिफल होती है। भले ही वह वास्तविकता से युक्त हो तथापि उसका विन्यास कल्पना का परिणाम होता है। अतएव कहानी के द्वारा कल्पनाशक्ति को विकसित करने का उद्देश्य सुनिश्चित किया जाना वांछनीय है। पर यह उद्देश्य गौण है, यह भूलने की बात नहीं। इस संबंध में भी इस पुस्तक में एक प्रकरण में चर्चा की गई है।

शिक्षण की दृष्टि से कहानी कहने का एक और भी उद्देश्य है। यह है विद्यार्थी की भाषा-शुद्धि की दक्षता। शुद्ध भाषा-ज्ञान के लिए शुद्ध भाषा का परिचय राजमार्ग होता है। कहानी के द्वारा उसका श्रोता कहानी की भाषा के परिचय में आता है। यही नहीं, बल्कि जिन शब्द-समूहों, वाक्य-प्रयोगों और तुकबंदियों से भाषा अर्थपूर्ण, प्रभावशाली व यथार्थ बनती है, वे सभी तत्त्व कहानी के श्रवण द्वारा स्वयंमेव श्रोता के अपने बन जाते हैं और उसका भाषा पर स्वच्छ नियंत्रण सध जाता है।

कहानी कहना एक और रीति से भी भाषा ज्ञान के विकास में अद्भुत मददगार सिद्ध होता है। प्रत्येक मनुष्य के जीवन में बारंबार ऐसे प्रसंग उपस्थित होते हैं, ऐसे-ऐसे भाव-प्रवाह प्रवाहित होते हैं, ऐसे-ऐसे अभिनव अनुभव सामने आते हैं कि जिन्हें व्यक्त करने के लिए वह भाषा की शरण में दौड़ता है। ऐसे क्षण में यदि उसे वांछित भाषा मिल जाती है तो अनायास ही उसका भाषा ज्ञान सध जाता

है। अनुभव बताता है कि जब हम किसी से बातें करते हैं तथा विशेष प्रकार के विचार अथवा भावों को प्रकट करना चाहते हैं तो कई बार हमें सही शब्दों की तलाश करनी पड़ती है। हम सही शब्द के लिए जूझने लगते हैं। ऐसे में यदि हमारा साथी हमारे भावों को समझ कर हमें सही शब्द-चयन में मदद कर देता है तो हम कह उठते हैं : 'हाँ, बिल्कुल, मैं यही कहना चाहता था। मेरा यही कहने का आशय था' आदि।

हम देखते हैं कि कई बार जब बालक अपने मन की बात सही शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं कर पाता तो इधर-उधर की बातें कहता हुआ अपने आशय को प्रकट करने का प्रयत्न करता है। लेकिन हम उसके मर्म को नहीं समझ पाते और उसकी इच्छा पूरी करने में मुश्किल महसूस करने लगते हैं। बालक हमसे झगड़ने लगता है और हम विवशता से उसकी ओर देखते रहते हैं। ऐसे में यदि किसी होशियार व्यक्ति के दिमाग में बात आ जाए और वह बोल उठे : 'क्या तुम्हें अमुक चीज़ चाहिए?' तो बालक उस नए शब्द को तत्काल पकड़ कर अपने स्मृति-कोष में संग्रहीत कर लेता है। उसका झगड़ना समाप्त हो जाता है और इच्छा पूरी हो जाने के कारण बालक भाषा ज्ञान में एक और कदम आगे बढ़ता है।

इस प्रसंग में मनोविज्ञान की दृष्टि से अवलोकन करने वालों का अनुभव विशाल हो सकता है। जो लोग बालक को वांछित भाषा यथासमय प्रदान करने की कला में प्रवीण हैं, वे भलीभाँति जानते हैं कि जीवन में भाषा-ज्ञान के अर्जन की भी एक ऋतु आती है। यदि कोई कुशल व्यक्ति ठीक उसी ऋतु में भाषा की खाद समयानुसार और आवश्यकतानुरूप डालता जाए तो निःसंदेह बालक की भाषा का वृक्ष आगे चलकर बड़ा ही सघन हो जाता है। साधारणतया हर आदमी बालक के भाषा-विकास के क्रम का अनुसरण नहीं कर सकता। इतनी फुर्सत, इतना आग्रह और इतना ज्ञान सभी शिक्षकों में नहीं होता। फिर, किस समय कैसा भाषा ज्ञान कराना चाहिए, यह विवेक कर पाना तो और भी कठिन होता है। ऐसी स्थिति में कहानी कहना बहुत उपयोगी रहता है। अलग-अलग स्तर वाले और अलग-अलग जातीय संस्कार वाले बालकों को अलग-अलग प्रकार की भाषा अर्थात् नए-नए भाषा-प्रयोग और शब्द-सामर्थ्य देने की जरूरत पड़ती है। अगर श्रोता-बालकों के योग्य वांछित भाषा में कहानी कही जाएगी तो सुनने वाले बालक उसमें से अपनी वांछित भाषा तत्काल पकड़ लेंगे। जहाँ पर सामूहिक रूप में बालकों को कहानी

सुनाई जाती है, वहाँ कौनसा बालक कैसे शब्द प्रयोगों को पकड़ता है, यह जान पाना बहुत मुश्किल होता है, लेकिन जहाँ व्यक्तिगत अथवा कुछेक बालकों के स्तर पर कहानी सुनाई जा रही हो, वहाँ वार्ताकार का यह अनुभव सही है कि कहानी की भाषा बालक के भाषा-संस्कार में मददगार होती है और उसकी भाषाई जरूरत की पूर्ति करती है।

कथा-कहानी के एक और उद्देश्य पर भी दृष्टिपात करें।

कहानी लोक-साहित्य का अंग है। लोक-साहित्य में हमेशा प्रजा की संस्कृति प्रवाहित रहती है। अगर हमें अपनी भावी-पीढ़ियों को लोक की संस्कृति से परिचित कराना है तो हमें वार्ता कथन और श्रवण की परम्परा को बनाए रखना चाहिए तथा इसकी महत्ता को समझना चाहिए। वार्ता-कथन से सीधे-सीधे एक मुँह से दूसरे मुँह तक, एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक, एक समाज से दूसरे समाज तक तथा एक युग से दूसरे युग तक प्रजा की संस्कृति का संदेश जीवंत रहता आया है। कहानी में मनुष्य-जीवन का सम्पूर्ण चित्र रहता है। उस चित्र का बार-बार परिचय कराये जाने में आनंद आने से मनुष्य को वह कहानी सुनना अच्छा लगता है। उस सम्पूर्ण चित्र के परिचय में संस्कृति की आत्मा का परिचय मिलता है। हमारे प्राचीन धर्मग्रन्थ हमारे एक काल-विशेष की संस्कृति को प्रकट करते हैं, हमारे ऐतिहासिक ग्रंथ भूतकाल की संस्कृति का प्रतिबिम्ब हमारी आँखों के सामने प्रस्तुत करते हैं, पर लोक-वार्ताएँ हमें यह बताती हैं कि जीवंत समाज का प्राण कहाँ है और वह कैसा है! लोक-साहित्य का थोड़ा अध्ययन करने पर यह बात बहुत स्पष्टता से हमारे सामने आ जाती है कि हमारी आज की समाज भावना, शिष्टता और स्तरीयता की स्थिति पूर्व जैसी नहीं है। अपनी संस्कृति का परिचय लोगों को ऐसी वार्ताओं के कथन द्वारा कराया जा सकता है।

चाहे जो कहें, पर वार्ता एक जादुई वस्तु है। जो लोग चमत्कार, नवीनता और अद्भुतता के वशीभूत हो जाते हैं, उन पर कहानियों का असर भी जादू की माफिक होता है। बालकों पर तो कहानियाँ जबरदस्त चोट करती हैं। जिस तरह से मंत्रबल से किसी मंत्रवेत्ता या तांत्रिक के हाथ में भूत की शिखा आ जाती है, उसी प्रकार वार्ता के मंत्रबल से मुग्ध बना बालक वार्ता कहने वाले के वशीभूत हो जाता है। यह अधीनता दीनता की नहीं है अपितु समभाव की है, प्रेम भाव की है। वार्ता कहने वाला व्यक्ति अपना दृष्टिबिन्दु जानता है और उसे व्यक्त करता है, इस

कल्पना से सुनने वाला व्यक्ति सुनने वाले को भूल जाता है। वह उसे अपने जैसा ही मान कर उसके साथ एक-सा भाव अनुभव करता है। इस एकात्म-भाव में माता-पिता और बालक, शिक्षक और विद्यार्थी एक-दूसरे के प्रगाढ़ परिचय में आते हैं, उनके बीच उम्र और ज्ञान का बड़ा अंतर मिट जाता है और वे एक-दूसरे के बन जाते हैं। इससे उनके बीच विश्वास, प्रेम और सहानुभूति अपने आप प्रकट होती है। इस मधुर संबंध से घर की, विद्यालय की या समाज की व्यवस्था के सवाल अपने आप हल हो जाते हैं। कहानियाँ सुनने वाले माता-पिता, अध्यापकों और सभी का अनुभव है कि कहानियाँ सुनने में रुचि लेने वाले रसिक विद्यार्थी व्यवस्था सम्बन्धी नियमों को बहुत आदर देते हैं। कहानी के भाव स्वयं उनमें एक प्रकार की व्यवस्था उत्पन्न कर देते हैं। व्यवस्था का ऐसा असर माता-पिता और शिक्षकों ने अन्य अनेक प्रसंगों में अवश्य देखा होगा।

विद्यालयों का शोरगुल कहानी की जादुई छड़ी ऊपर उठने के साथ ही अपने आप शांत हो जाता है; बदमाशी और झगड़ा करने वाला बालक कहानी शुरू होते ही आनन्दमग्न चेहरे से एकदम ठंडाटीप हो जाता है। कहानी कहने वाला व्यक्ति अपने हाथ में हमेशा एक प्रकार की ऐसी रामबाण औषधि लिए फिरता है कि जिसके द्वारा बेचैन, बेसुरे, अव्यवस्थित, शोर मचाने वाले, चिड़-चिड़े व गुस्सैल बालकों या मनुष्यों को तत्काल व्यवस्थित किया जा सकता है। वार्ता कहने वाले के लिए ऐसे अनुभव अत्यंत स्वाभाविक हैं अतः अधिक दृष्टांत देना उचित नहीं है। बाल सँवारने से आनाकानी करने वाला बालक माँ के मुँह से कहानी शुरू होते ही तत्काल उसकी गोदी में शान्ति से आकर बैठ जाता है। स्वास्थ्य के माफिक न पड़ने वाली चीज के लिए झगड़ा करने वाला बालक कहानी का पहला शब्द कान में पड़ते ही कहानी रूपी मिठाई खाने के लिए दौड़ पड़ता है। बच्चों को सुलाना हो तो लोरी, गीत और कहानी का प्रयोग सदैव उत्तम है। इतने सारे फायदे हैं वार्ताओं के। कहानी कहने के ये उद्देश्य गौण रूप से सदैव विद्यमान रहते हैं।

दो-एक अन्य दृष्टियों से भी कहानी सुनाना स्वागत योग्य है। जिस प्रकार कहानी सुनने से बालक की कल्पना शक्ति विकसित होती है उसी प्रकार कहानी सुनने से उसकी स्मरण-शक्ति भी विकसित होती है। एक वस्तु से जुड़ी दूसरी वस्तु याद आती है, एक अनुभव स्मरण करते ही दूसरा याद आता है, एक प्रसंग को ताजा करते ही दूसरा प्रसंग झाँकने लगता है और इसका कारण है स्मरण-शक्ति में

विचार-संकलित करने के तत्त्व का होना। हममें विचार-संकलित करने की शक्ति जितने अधिक परिमाण में होगी, उतनी ही अधिक प्रबल होगी हमारी स्मरण शक्ति। कहानी की बुनावट ही ऐसी होती है कि उसमें विचार-संकलन अत्यन्त सरल और सहज होता है। इस सरलता और अकृत्रिमता का ही परिणाम है कि वार्ता का सूत्र अविच्छिन्न भाव से चला आ रहा है तथा वह स्मरण शक्ति के सम्पोषण में सहायक है। यहाँ यह सवाल खड़ा करना असंगत होगा कि स्मरण-शक्ति जैसी कोई मानसिक शक्ति होती भी है या नहीं, लेकिन कहानी कहने के परिणाम से यदि विचार करें तो कहना होगा कि इससे स्मरण-शक्ति विकसित होती है। यदि यों कहें, तब भी संगत होगा कि वार्ता एक ऐसा साधन है, जिसे प्रयोग में लाये जाने से स्मरण-शक्ति को वांछित एवं स्वस्थ व्यायाम मिलता है। असम्बद्ध बातों को संग्रहीत करने से स्मरण-शक्ति कुम्हला जाती है, लेकिन सम्बद्ध और यथार्थ बातें सुनने से स्मरण शक्ति को लाभदायी व्यायाम मिलता है। कहानी में सम्बद्धता और यथार्थता के गुण बहुत अधिक मात्रा में विद्यमान होते हैं।

वार्ता कथन से बालक में रहने वाली नट-वृत्ति को मार्ग मिलता है। वार्ता कहने का यह एक अन्य उद्देश्य है। इस बारे में 'कहानी और नाट्य प्रयोग' शीर्षक प्रकरण में विस्तारपूर्वक लिखा गया है, यहाँ तो इस विचार का स्पर्श मात्र करके आगे बढ़ रहा हूँ।

वार्ता कथन के दो-एक विशेष लाभ बताते हुए मैं इस प्रकरण को पूरा करूँगा।

वार्ता-कथन मेरे हिसाब से निबंध लेखन का प्रथम सोपान है और होना भी चाहिए। सवाल उठता है कि जिस वस्तु को सुनने के लिए मन आकर्षित होता है, उस वस्तु के सिवाय दूसरी किस चीज से मनुष्य लेखन की वस्तु के बतौर आकर्षित होता है। निबंध लेखन में जो सुसंकलना होनी चाहिए तथा जिस क्रमबद्धता और सुसंतुलन की आवश्यकता है, वह कहानी में होने से कहानी शुरुआत के दिनों में निबंध लेखन में बेशक स्वीकार करने योग्य है। फिर निबंध-लेखन में विद्यार्थियों को विचाराभिव्यक्ति में जो कठिनाता अनुभव करनी पड़ती है, वह कहानी के निबंध-लेखन में नहीं करनी पड़ती। इसका कारण यह है कि कहानी स्वयं-सुधारक, संशोधक होने से वार्ता की शृंखला टूटती नहीं अतः विचारों की शृंखला एक समान चलती रहती है। कहानी में कहने वाले से भूल हो या कि सुनकर लिखने वाले से

भूल हो तो वह फौरन पकड़ में आ जाती है। सुसंकलना के वगैर कहानी लिखने या कहने वाला आगे चल ही नहीं सकता। इस कारण कहानी स्वयं शिक्षा देने वाली विधा है और इसी से वार्ता-कथन से निबंध-लेखन की ओर प्रवृत्त होना आसान है। यह अनुभव प्रमाण पुष्ट है।

मनुष्य को अनेक तरीकों से ऊँचा उठाने का अर्थात् उसके अभ्युत्थान का उद्देश्य भी है वार्ताएँ सुनाने का। पर यह उद्देश्य तभी पूरा हो सकता है कि जब वार्ता को आनन्द की वस्तु के बतौर आगे रखा जाएगा तथा उपदेशात्मकता के उद्देश्य को ढँक कर एक तरफ रख दिया जाएगा। धार्मिक पुस्तकें ईश्वर की भाँति आज्ञा देती हैं अतः उनका कुछ प्रभाव हम पर होता है। इतिहास के ग्रंथ मित्र की भाँति हमारे कान खोलते हैं, पर उनको मानने या न मानने के लिए हम स्वतन्त्र रहते हैं, लेकिन वार्ताएँ प्रेमपगनी सहधर्मिणी की भाँति हमारे मन को वशीभूत करके मानवीय स्वभाव तथा मानव जीवन के बारे में बोध देती हुई हमें इस तरह से ऊपर उठा देती हैं कि हमें पता ही नहीं लग पाता। जिन उपदेशों को ठसाने में नीतिपाठ असफल सिद्ध होते हैं, उन्हें कहानियाँ अपने में बड़ी ही आसानी से समाहित कर सकती हैं। प्राणियों पर दया करो, यों कहने की बजाय उनके प्रति प्रेम पैदा हो अथवा उनकी दीन दशा देखकर दया उत्पन्न हो, ऐसी कहानियाँ कही जाती हैं, तो उनका असर कहीं अधिक होता है। इस बाबत में श्रद्धेय काका साहब कालेलकर के सुन्दर शब्दों का एक और अवतरण देते हुए मैं इस प्रकरण को यहीं समाप्त करूँगा :

‘बौद्धकालीन जातक कथाएँ लें, जैनकालीन पंचतंत्र लें, विष्णु शर्मा का हितोपदेश पढ़ें अथवा मिश्र देश की नीति कथाएँ पढ़ें, आपको पता लगेगा कि मनुष्य अपने पर्यावरण के साथ, तिर्यग्योनि के साथ, जीव-सृष्टि के साथ एकरूप था। रामायण में वाल्मीकि भी पशु-पक्षी, मत्स्य, वानर आदि समस्त प्राणियों के साथ एकरूप थे। इस समभाव के कारण ही हम समस्त प्राणियों से प्रेम कर सकते थे, उनके स्वभाव से बहुत कुछ सीख सकते थे तथा सभी में एक ही आत्मा का वास है, यह बात समझना सहज था। कहानियों में मनुष्य जाति का प्राचीन से प्राचीन और अत्यन्त व्यापक जीवन रहस्य है।’ □

दूसरा प्रकरण कहानी का चुनाव

बालकों को कैसी कहानियाँ कही जाएँ, यह एक अत्यन्त महत्त्व का प्रश्न है। जब तक इस प्रश्न का समाधान नहीं मिल जाता, तब तक कथा-कहानी का शास्त्र पंगु ही रहेगा। वार्ताएँ कई प्रकार की हैं। अलग-अलग देशों की अलग-अलग वार्ताएँ हैं। भिन्न-भिन्न आबो-हवा में रहने वाले तथा भिन्न-भिन्न रहन-सहन का अनुसरण करने वाले लोगों की बातें अलग-अलग तरह की हैं।

धार्मिक मान्यताओं में एक-दूसरे से अलग तरह के लोगों में अलग-अलग तरह की कहानियाँ प्रचलित हैं। कुछ देश परियों की कहानियों के लिए अभिमान करते हैं तो कुछ देश भूत-प्रेतों की वार्ताओं में अपनी आस्था प्रकट करते हैं; कई देश विज्ञान की बातों में अधिक रस लेते हैं तो कई देश बहमों-अंधविश्वासों की बातों को सच मानते हैं; कई देश भयप्रद बातों के शौकीन होते हैं तो कइयों की वार्ताओं में अहिंसा का तत्त्व अधिक मात्रा में होता है; कई देशों की बातें प्रेम और दया के मनोभावों से युक्त होती हैं तो कई देशों की बातें भक्तिरस से भरपूर होती हैं।

वार्ताएँ भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं। एक प्रकार है शूरवीरता का तो दूसरा प्रकार है बुद्धि-चातुर्य का; कुछ वार्ताएँ करुण-रस प्रधान होती हैं तो कुछ वीर-रस प्रधान; कुछ कहानियाँ धार्मिक होती हैं तो कुछ तात्त्विक; किसी वार्ता में प्रकृति की महिमा होती है तो किसी में मानवीय महिमा। जिस प्रकार से वार्ताओं के प्रकार होते हैं उसी प्रकार से लोक-रुचि के प्रकार होते हैं। एक मनुष्य को विनोद की कहानियाँ अच्छी लगती हैं तो दूसरे को गंभीर उपदेशात्मक कहानियाँ पसंद आती हैं; एक व्यक्ति का मन देवी-देवताओं की कहानियाँ सुनना चाहता है तो दूसरा मनुष्य-चरित्रों की सुनना चाहता है; एक को कल्पित वार्ताओं में मजा आता है तो दूसरे को ऐतिहासिक कहानियों में आनंद आता है।

इस प्रकार जहाँ वार्ताएँ अनेक विध हैं और उनके श्रोता अनेक रुचि वाले हैं वहीं इस प्रश्न का हल ढूँढ़ना भी आवश्यक और मुश्किल है कि कैसी कहानियाँ

कही जानी चाहिए और कैसी नहीं कही जानी चाहिए। एक बात तो दीपक के प्रकाश की तरह उजागर है कि सभी कहानियाँ कहने योग्य नहीं होतीं।

अगर हम पृथ्वी के भीतर की परतों को उघाड़ कर उसका अध्ययन करने का श्रम करें तो पता लगेगा कि पृथ्वी के गर्भ में अनेक प्रकार की परतें हैं। वे एक-दूसरे से निराली हैं। यही नहीं, वे परतें भिन्न-भिन्न समय में, भिन्न-भिन्न संजोगों में, भिन्न-भिन्न वातावरण और बाहरी व अंदरूनी परिवर्तन की वजह से निर्मित हुई हैं। भूगर्भ वैज्ञानिक उन परतों को प्रथम युग की परतें, द्वितीय युग की परतें, तृतीय युग की परतें—यों कहकर परिचित कराते हैं। वे लोग उन परतों की उम्र भी बताते हैं। कुछ-कुछ इसी प्रकार की परतें प्रचलित कहानियों के समूह में भी देखने को मिलती हैं। कोई परत अत्यंत प्राचीन है तो कुछ आधुनिक है; कोई परत विदेशी है तो कोई सम्पूर्ण स्वदेशी है; कोई परत स्वाभाविक है तो कोई कृत्रिम है; कोई परत नीति तत्त्व से युक्त है तो कोई अनैति-प्रेरक है; कोई परत उच्च विनोद-प्रधान है तो कोई ग्राम्योन्मुखी है; किसी परत में बुद्धि-चातुर्य की महिमा है तो कोई विज्ञान की बातें बताती है। कहानियाँ सुनाने के लिए कौनसी परतों को संग्रहीत करना चाहिए और कौनसी परतों को त्याग देना चाहिए, इस पर विचार करने की जरूरत है।

प्रत्येक युग में उस युग का काम करने वाले व्यक्ति उत्पन्न होते हैं। इसी भाँति वार्ताएँ और वार्ताओं के समूह भी उत्पन्न होते हैं। एक समाज दूसरे समाज की कहानियों में भरे सयानेपन से ऊब जाता है अथवा यों भी कह सकते हैं कि वह उस सयानेपन से बढ़कर अपने सयानेपन का दावा करता है और उस समाज की कहानियों को धक्का मारता है। जैसे-जैसे कोई समाज नई रुचि, नई कल्पना और नए आदर्श धारण करता है वैसे-वैसे पुरानी रुचि, पुरानी कल्पना और पुराने आदर्शों को सौंप के केंचुल की मानिंद छोड़ता जाता है। समाज के द्वारा इस प्रकार केंचुल की भाँति छोड़ी हुई अनेक कथाएँ हमारे वार्ता-भंडार में पड़ी हुई हैं। हमारे वार्ता-भंडार में ऐसी कथाएँ भी पड़ी हैं जिन्हें समाज ने आदि काल से अपने अंग पर धारण कर रखा है और जिन्हें अभी तक अपने अंग से हटया नहीं है। ऐसी भी वार्ताएँ हैं कि जो समाज के हृदय में हैं, पर समाज के वेश में नहीं। इसी प्रकार इस भंडार में ऐसी बातें भी हैं, जिन्हें किसी व्यक्ति ने बिल्कुल छोड़ दिया है, कोई व्यक्ति उनकी तरफ आश्चर्य के साथ देख रहा है तो कोई व्यक्ति उन्हें जीवन की तरह सहेजे हुए हैं। भिन्न-भिन्न समाजों की भिन्न-भिन्न रुचियों तथा जरूरतों के कारण

वार्ताओं के समूह भी भिन्न-भिन्न बन गए हैं; इसी प्रकार एक ही समाज के भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की भिन्न-भिन्न रुचियों के कारण भी वार्ताओं के समूह भिन्न-भिन्न बन गए हैं। एक ही समाज में अनेक रंगी लोग होते हैं। एक ही समाज में आदिम युग के मनुष्यों जैसी बुद्धि, शक्ति एवं वृत्ति वाले मनुष्यों से लेकर उच्च मानवीय दशा जैसी बुद्धि, शक्ति एवं वृत्ति धारण करने वाले मनुष्यों तक के व्यक्ति हमें मिल जाते हैं। एक ही समाज में क्षुद्र वृत्ति वाले मनुष्य से लेकर उच्च वृत्ति तक का मनुष्य मिल जाता है। इसी से एक ही वार्ता की परत अथवा समूह में विविधता देखने में आती है। यह विविधता लोकरुचि का प्रतिबिम्ब है। इस विविधता में समाज का सम्पूर्ण जीवन विद्यमान है।

इन तमाम कथाओं में से कौनसी ली जाएँ और कौनसी न ली जाएँ, यह निर्णय अत्यंत कौशल के साथ करना होगा। यहाँ हमें एक बात पर विचार करना है कि हमें बालकों को प्रथमतः शुद्ध एवं निर्दोष आनंद देने के लिए ही कहानियाँ कहनी हैं। निश्चय ही हमारा प्रथम उद्देश्य यही है, फिर भी यह बात हमारे ध्यान से कहीं निकल न जाए कि कहानियाँ कई तरह से बालकों के जीवन का निर्माण करती हैं। वे शुद्ध आनंद देती हैं इसीलिए उनमें बालक के जीवन को संस्कारित करने की शक्ति मौजूद रहती है। जो वस्तु सुन्दर है, मधुर है, प्रिय है, उसका हम पर प्रभाव होना स्वाभाविक है। अपने आप में सुन्दर कहानियाँ हम पर कई तरह का असर डालती हैं। इसीलिए निर्दोष आनंद देने वाला साधन किसी तरह नष्ट न हो जाए, इसका हमें सदैव ध्यान रखना चाहिए। प्रत्येक वार्ता आनंद देती है, क्योंकि वार्ता का आनंद-विभाग कला का विषय है और जहाँ वार्ता का कला-विभाग यथार्थ होगा वहाँ बालक को आनंद आएगा ही। पर सभी कलापूर्ण कहानियाँ लाभदायक नहीं होतीं, यह हमारा अनुभव है। इसीलिए हमें वार्ताओं के चुनाव के झंझट में पड़ना होगा।

इससे पहले कि हम बालकों की कथाओं के चयन हेतु नियम बनाएँ, हमें उनकी वृत्ति और उनकी दुनिया को जान लेना चाहिए। अगर हम अपनी दृष्टि से बाल-जीवन के व्यवहार का निर्माण करेंगे तो थोड़े ही समय में हम बालकों का नुकसान कर बैठेंगे। बालक सम्पूर्ण मनुष्य है, यह बात सही है, फिर भी सम्पूर्णता बीज रूप में है। इसीलिए वृक्ष के लिए जिस आबोहवा और खाद की जरूरत है वह आबोहवा और खाद बीज के लिए सदैव आरोग्यप्रद नहीं होती। बीज से लेकर

सम्पूर्ण वृक्ष बनने तक की विकास-क्रिया का समय बहुत लम्बा है और उसमें अनेक श्रेणियाँ हैं। प्रत्येक श्रेणी पर वृक्ष की ग्राह्य-शक्ति और जरूरत को ध्यान में रखकर उसकी देखभाल करनी पड़ती है। कथाओं के चुनाव की दृष्टि से विचार करें तो बाल्यावस्था की कथाएँ, कुमारवस्था की कथाएँ, युवावस्था की कथाएँ, प्रौढ़वस्था की कथाएँ तथा वृद्धावस्था की कथाएँ—और महिला वर्ग की पसंदीदा कथाएँ तथा पुरुष वर्ग को अच्छी लगने वाली कथाएँ—इन सब में हमें अंतर समझना चाहिए और उस अंतर को ध्यान में रखकर ही बालकों को कहने योग्य कहानियों का चुनाव करना चाहिए।

वार्ताओं के चयन के समय तीसरी दृष्टि यह रखनी चाहिए कि बालक समाज के वाल्यकाल का प्रतिनिधि है। आदिम मनुष्य के विकास की क्रिया वाली दशा के साथ बालक के विकास की क्रिया वाली दशा का गहरा साम्य है। फिर वर्तमान संस्कृत समाज का एक अंग बनने के लिए हमारा समाज जिस आदिम समाज से बाहर निकल चुका है, उस दशा से बालक को बाहर निकलना है। यह सही है कि बालक एक सम्पूर्ण मनुष्य होता है, फिर भी अभी वह विकास की प्राथमिक स्थिति में है, यह बात सदैव ध्यान में रखकर ही बालक के लिए कथाओं का चुनाव किया जाना चाहिए। प्राथमिक मानव कैसी-कैसी कहानियाँ पसंद करता था, इसकी हमें पूरी-पूरी कल्पना करनी होगी। शुरुआत में ऐसी ही कुछ जरूरी बातों को ध्यान में रखते हुए हमें यह निर्णय लेना होगा कि बालकों के लिए कैसी कहानियाँ चुनी जाएँ।

ढेर सारी कहानियों में से सबसे पहले हमें अर्थ-विहीन छोटी-छोटी कविताएँ और फिर तुकबंदियों से भरपूर कहानियाँ लेनी चाहिए। बिना अर्थ वाली तुकबंदियाँ बाल जीवन में कैसा अद्भुत चमत्कार पैदा करती हैं, इसे तो वही जान सकता है जिसने बाल-जीवन और बाल-कहानी कहने का सीधा अनुभव हासिल किया है। यहाँ गुजराती भाषा की कुछ तुकबंदियाँ दी जा रही हैं। हरेक भाषा में ऐसी ढेरों तुकबंदियाँ घर-घर में मिल जाएँगी।

‘चांदा रे चांदा, घी गोळ मांडा,
दही के दूधड़ी, माखण फूदड़ी,
मारी बेनना मोढामां हबूक पोळी।’

‘आव रे वरसाद, घेवरियो परसाद,
ऊनी ऊनी रोटली ने कारेलानु शाक,
आव रे वरसाद, नेवले पाणी,
नठारी छोकरी ने देइके ताणी ।’

ऐसी सादी तुकबंदियां सुनते-सुनते बालक धीरे-धीरे छोटी-छोटी अर्थविहीन और तुकबंदियों से भरपूर कहानियां सुनने लगता है। यह क्रम स्वाभाविक है। ऐसी कहानियाँ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं :

‘चकी पड़ी खीर मां ने चको बैठो निमाणो’
‘कूकड़ी पड़ी रंग मां ने कूकड़ो शोक ढंग मां’
‘कहाणी कहुं कैयां ने सांभळ मारा छैया’
‘अक वात नी वात ने सवायानी सात’

उपर्युक्त कहानियाँ ऐसी ही हैं। ये बालकों की दुनिया की कहानियाँ हैं। बालक तो अपने चारों ओर की दुनिया को नई आँखों से देखने लगता है, अतः उसे इस तरह की कहानियों में बहुत मजा आता है। आकाश, पृथ्वी, पवन, सूर्य, चन्द्र, पक्षी, पशु और फूलों को देखकर बालक के मन में नया अचरज होता है। अगर इन तत्त्वों को कहानी में पिरोकर बालक के सामने पेश किया जाए तो वह कहानी सुनने में बहुत तल्लीन हो जाता है। निश्चय ही, इन कहानियों को बालक ज्यों का त्यों उनके सम्पूर्ण अर्थ में समझता हो और इसीलिए सुनने के लिए प्रेरित हुआ हो, ऐसा कुछ भी नहीं है। हम जिन्हें समझ ही नहीं सकते, ऐसे-ऐसे अनुभव इस दुनिया का नया मेहमान प्रतिपल इन्द्रियगम्य वस्तु के संबंध में अर्जित करता रहता है और जिन-जिन शब्दों या शब्द-समूहों में इन अनुभवों को भाषा मिलती है, वहाँ-वहाँ बालक को चमत्कार महसूस होता है। ऐसे प्रसंग में बालक अपनी भाषा गढ़ने का सुन्दर लाभ लेता है—यह भी एक कारण है कि वह ऐसी कहानियों में रुचि लेता है। ऐसी कहानियों को हम बाल-कहानियों के नाम से पुकारते हैं। इन कहानियों को लेकर हमें चिंता करने की कतई जरूरत नहीं है कि ये उलजलूल, बेढंगी और अर्थहीन होती हैं, वस्तुतः इन कहानियों में बालकों की दुनिया का प्रतिबिम्ब रहता है, और वे उनमें रुचि लेते हैं, इतना ही हमारे लिए पर्याप्त है।

उपर्युक्त कहानियाँ बेशक कल्पित हैं। पर इससे अगले स्तर पर और ज्यादा कल्पित कहानियों और कहानियों के नाम की शोभा बढ़ाने वाली कहानियों

को शामिल करना होगा। कल्पित कहानियों में कई-कई तरह की कहानियों का समावेश हो जाता है। ऐतिहासिक और वैज्ञानिक कहानियों के अलावा सभी कहानियाँ कल्पित होती हैं। कल्पित कहानियाँ भी दो प्रकार की होती हैं। जिनको हम प्राणियों की, प्राकृतिक घटनाओं की, भूत-प्रेतादि की, देवी-देवताओं, नाग, यक्ष, किन्नरों और राक्षसों की कहानियाँ कहते हैं, वे सब कल्पित कहानियों का एक प्रकार हैं। इसके विपरीत जिन कहानियों में मनुष्यों को पात्र बनाया जाता है, ऐसी कहानियाँ दूसरे प्रकार की कहानियाँ हैं। साधारणतया ऐतिहासिक दंतकथाएँ, भक्ति कथाएँ, सतियों की कथाएँ, प्रेम कथाएँ, पारिवारिक वार्ताएँ, जादू-टोने की वार्ताएँ, पर्व-उत्सवों की कथाएँ, शूरवीरों की कथाएँ तथा ऐतिहासिक कथाएँ इस दूसरे प्रकार की कहानियों में आती हैं। प्रथम प्रकार की कहानियों को अंग्रेजी में ‘इमेजिनेटिव फिक्शन’ और दूसरे प्रकार की कहानियों को ‘रियलिस्टिक फिक्शन’ कहा जाता है।

प्रथम वर्ग की कहानियों में हकीकत की यथार्थपरकता नहीं होती। इन कहानियों में हकीकत कल्पित अर्थात् अस्तित्व में न हो, ऐसी कल्पना से ही निकली हुई होती है। इस वर्ग की कहानियाँ हकीकत में खोटी होती हैं। लेकिन खोटी या कल्पित हकीकत के द्वारा उनमें सच्चे विचारों एवं सच्चे आदर्शों का समावेश होता है। इन कहानियों के पात्र—परियाँ, यक्ष, किन्नर, भूत-प्रेत या नाग झूठे होते हैं, पर इनके द्वारा व्यक्त की गई भावनाएँ और आदर्श सच्चे व खरे होते हैं।

दूसरे वर्ग की कहानियों में मनुष्य पात्र रूप में होते हैं, पर उनमें गुंथी हुई कहानियाँ कल्पित होती हैं। हालाँकि ये घटनाएँ कल्पना पर आधारित होती हैं फिर भी वे घटनाएँ दुनिया में घटित होने वाली घटनाओं जैसी ही होती हैं और इन घटनाओं के द्वारा ये कहानियाँ मानवीय अनुभवों को प्रकट करती हैं। मानवीय मनो-मंथन, आदर्श, आचार तथा भावनाओं को व्यक्त करती हैं। बालकों को ये दोनों ही तरह की घटनाएँ पसंद आती हैं। दोनों ही तरह की कहानियाँ बालकों को कही जाएँ तो कोई एतराज की बात नहीं है। सिर्फ एक ही बात ध्यान में रखनी चाहिए कि ये कहानियाँ अपने आप में अच्छी और लाभदायी हैं; किसी भी तरह से आपत्ति-योग्य नहीं हैं। वार्ताएँ कल्पित होते हुए भी बालकों के मन पर गहरा प्रभाव डालती हैं। असत्य होने पर भी ये कहानियाँ बालकों को इतनी अधिक जीवंत लगती हैं कि उन के मानसिक संस्कारों का निर्माण करने में सक्षम हैं। एकाध अच्छी व कल्पित कहानी बालक के विचारों, आदर्शों, दृष्टि-बिन्दु, अच्छी भली बुद्धि,

सद्-असद् विवेक को जाग्रत करती है, गति देती है एवं निश्चित करती है। ऐसी कहानी उसके दृष्टिकोण को विशाल बनाती है, कल्पना शक्ति को तेज करती है, सौंदर्य परखने की सही शक्ति देती है, भावनाएँ सूक्ष्म और गहन बनाती है, विनोद को सजीव करती है और कुल मिला कर संक्षेप में कहें तो बालक के जीवन में प्राणों का सिंचन करती है। यह सब कैसे होता है इसका अनुभव किसी कुशल कहानी कहने वाले को हमेशा ही मिलता रहता है। ये कहानियाँ लोगों के अनेक विध जीवन के सार-स्वरूप लोक-हृदय से प्रकट होती हैं। कल्पित होते हुए भी इनकी न्याय नीति, धर्म बुद्धि, प्रामाणिकता और विवेकबुद्धि इतनी निर्मल व संतुलित होती है कि बालक इनमें विद्यमान काल्पनिकता को भुला कर इनके गुणों की वास्तविकता का अपने जीवन में समावेश करते हैं। हमारे यहाँ परियों की कथाएँ नहीं हैं अथवा यों कहें कि अनुवाद के प्रभाव से हाल ही में कुछ बढ़ने लगी हैं, पर परियों की कथाओं को टकरा देने वाली कल्पित कथाएँ हमारे यहाँ हैं। इन कहानियों को हम परियों की कथाओं के जितना ही स्थान दे सकते हैं। परी-कथाओं की महत्ता को लेकर अमेरिकी लेखिका मिसेज मिलर ने सुन्दर शब्दों में लिखा है :

‘जन सामान्य के सहज स्वाभाविक एवं अनगढ़ (अप्रशिक्षित) दिलों से उपजी परीकथाओं को साहित्य का वन्य-उद्यान माना गया है। इससे अधिक सुन्दर व्याख्या इनकी हो ही नहीं सकती। साहित्य के भव्य-प्रासादों के उत्कृष्ट फव्वारों के पास स्थित व्यवस्थित उद्यानों में लगाये गए परिष्कृत गुलाबों अथवा शानदार पोस्त-पुष्पों के ठीक विपरीत ये (परी कथाएँ) बाड़े में उगने वाले वन्य गुलाब, किसी घाटी में विकसी कुमुदिनी, पवन के झकोरों में उड़ने वाले पुष्प अथवा किसी शादल की मधुरिमा के समान हैं।’*

* Fairy tales, welling up from the simple, natural, untrained hearts of the common people, have been called the wild-garden of literature and they could not be more beautifully described. They are the wild-rose in the hedgerose, the lily of the valley, the wind flower, the meadow sweet in contrast to the cultivated rose or gorgeous poppy that grows in the ordered gardens beside the classic fountains of literature's Stately Palaces.

इस तरह की वार्ताओं का बाल-विकास और चरित्र-गठन में बहुत बड़ा योगदान है। किसी भी प्रकार के नैतिक उपदेश के बगैर अथवा शिक्षक के द्वारा कहानी के मर्म की ओर ध्यान दिलाने के रंच मात्र प्रयास के बगैर बालक अपने आप समझ जाता है कि कहानी कि कथावस्तु में कौन-कौन से उम्दा व श्रेष्ठ संस्कारशील गुण हैं और कौन-कौनसी बातें दुष्टापूर्ण व निंदनीय हैं। स्वाभाविक रीति से अर्थात् बताये बिना ही सत्य की तरफ, शौर्य की तरफ, पवित्रता की तरफ, न्याय की तरफ बालक की अभिवृत्ति बढ़ती है, जबकि असत्य, अत्याचार, दुर्बलता और अन्याय के प्रति उसके मन में तिरस्कार के भाव पैदा होते हैं। कहानी अपने आप में सुन्दर और मोहक होती है, जिससे बालक उसमें इतना अधिक सराबोर हो जाता है कि बगैर कोशिश ही कहानी उस पर गहरा प्रभाव डाल देती है। बालक का हृदय सदैव स्वाभाविक होता है, इसी से वह कहानी की स्वाभाविकता-अस्वाभाविकता के बीच के फर्क को पहचान जाता है। कहानियों का बालकों पर ऐसा प्रबल प्रभाव होता है कि धर्म नीति की जो बातें वे किसी महान् धर्माचार्य के व्याख्यान से अर्जित नहीं कर सकते, वही बातें कहानियों के माध्यम से अर्जित कर लेते हैं और जीवन पर्यंत वे विचार उनके लिए आदर्श रूप बने रहते हैं। हमारे जीवन का अनुभव कुछ ऐसा ही है। अनेक कल्पित पात्र आज भी हमें आदर्शों की दिशा में प्रेरित कर रहे हैं। अनेक कल्पित ऊर्ध्वमुखी बातें आज भी हमें क्षुद्रताओं से ऊपर उठने को प्रेरित कर रही हैं। अच्छी कहानियाँ अच्छे भाषणों-व्याख्यानों की तुलना में अधिक दृढ़ता से नीति बोध कराती हैं। ऐसा कहने से यों न समझ लिया जाए कि यहाँ नीति-शिक्षणयुक्त बातें कहने की हिमायत की गई है। सार रूप में इतनी ही बात ग्रहण करने की है कि कहानी अच्छी हो और अच्छे ढंग से कही जाए, फिर भले ही उसका रहस्य नीति हो या अर्थशास्त्र, शूरवीरता हो या पवित्रता, पर कहानी का प्रभाव ही ऐसा होता है कि इस रास्ते इसका रहस्य मनुष्य के हृदय में जम जाता है। इसके विपरीत यदि अमुक प्रयोजन को सामने रखकर कहानी कही जाती है तो उस प्रयोजन की नोक-मात्र मनुष्य का स्पर्श करती है और वह ऐसी कहानी और ऐसे प्रयोजनों दोनों को स्वीकार करने से मना करता है। अगर कहानियाँ अच्छी हैं, उनमें सच्चे विचार, आदर्श, और भावनाएँ हैं, जो किसी उच्च वस्तु का सीधा बोध नहीं करातीं वरन् मर्म की बात को अपने हृदय में ढँक कर रखती हैं, भले ही वे कल्पित हों या अर्द्ध सत्य, ऐतिहासिक हों या दंत कथा, उन्हें बालकों को सुनाने में कोई आपत्ति नहीं है।

जिस प्रकार किसी बाग के सभी वृक्ष बाग के लाभार्थ नहीं होते उसी प्रकार किसी कथा-संग्रह की सभी कहानियाँ बालकों के काम की नहीं होतीं। कई कहानियाँ खरपतवार जैसी होती हैं, उन्हें तो उखाड़ फेंकना ही अच्छा रहता है, फिर भले ही वे परियों की कहानियाँ हों या इतिहास की, भले ही उनमें कला की अपूर्वता हो या भाषा का लालित्य हो, ऐसी कहानियाँ बालकों को देनी ही नहीं चाहिए। पहले तो हमें अनीतियुक्त वार्ताओं को देश निकाला दे देना चाहिए। अनीति-वार्ताओं और ग्राम्य-वार्ताओं के अंतर के संबंध में तथा ग्राम्य-वार्ता कहने में कोई आपत्ति नहीं है बल्कि प्रसंगोपात्त इन्हें कहने में लाभ है, इस संबंध में मैंने अन्यत्र लिखा है।

ग्राम्य-वार्ताओं को हमें अनीति-प्रेरक वार्ताएँ मानकर हटा देने की भूल कभी नहीं करनी चाहिए। किन वार्ताओं को अनीति-प्रेरक मानें और किनको न मानें, इस बाबत में कोई नियम बनाने की कत्तई जरूरत नहीं, यह बात हम भली-भाँति समझते हैं। फिर भी हमारी आज की दृष्टि में और भूतकाल की दृष्टि में, वर्तमान काल की और भविष्यकाल की दृष्टि में अनीति-प्रेरक वार्ता की व्याख्या को लेकर दृष्टिकोण तो बदलेगा ही। नीति के विषय में हमें आज जो अत्यंत विघातक और अनिष्ट लगता है, उनका प्रतिपादन करने वाली कहानियाँ आज हर्गिज न कहें। जो कहानियाँ मनुष्य को नैतिक-बल से नीचे गिराती हैं, ऐसी कहानियों को हमें छोड़ देना चाहिए। आज के नैतिक जीवन को परास्त करने वाली कहानियों का साथ नहीं करना चाहिए। वैवाहिक जीवन नैतिक जीवन का अंग होता है। वैवाहिक भावना का पोषण न करने वाली कहानियाँ किसी जमाने में भले ही निर्दोष मानी जाती होंगी, आज तो वे त्याज्य ही हैं। हमें आज विलास और भोग नहीं चाहिए। ऐसे में ब्रह्मचर्य के विरुद्ध कहानी के पक्ष में हम कैसे खड़े रह सकेंगे? बाल विवाह के नुकसान से हम गले-गले तक आ चुके हैं, ऐसे में बाल-विवाह में आनंद लेने वाली कहानियों पर निश्चय ही हम कान नहीं देंगे। अगर आज हमें उत्तम ब्रह्मचर्य के बल से शरीर, मन और आत्मा के क्षीण हुए बल को पुनः प्राप्त करने की इच्छा है तो हमें वैवाहिक जीवन, परिणीत जीवन तथा वर-वधू के जीवन की गाथाओं से बालकों को नितांत अलग रखना होगा।

इसी तरह हमें ठगाई की कहानियाँ भी दुत्कार कर निकाल देनी चाहिए। किसी जमाने में ठगाई और घोखाघड़ी को बहादुरी माना जाता था, जोर जबरदस्ती किसी पर डाका डाल करके माल लूटना पराक्रम माना जाता था। आज हमारा मानस ठगी के स्थान पर निर्मलता और डाकाजनी के स्थान पर आपसी मेल-जोल चाहता है, अतः ऐसी कहानियों की हमें जरूरत नहीं है। अगर हमारा मन लड़ाइयों से उकता गया है तो निश्चय ही हम ऐसी कहानियों को अनीतिपरक कथाओं की सूची में रखना चाहेंगे, जिनमें तथाकथित बहादुर और शूरवीर लोग युद्धभूमि में हजारों लोगों की हत्या करने के बाद सिर्फ जरा-सा भूमि-खंड अपने कब्जे कर पाते हैं। अगर हम निडरता के गुण को विकसित करने की इच्छा रखते हैं तथा भय से ग्रसित न होकर उसके समक्ष दृढ़ रहने की क्षमता प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें किसी डरपोक बनिये की युक्ति-प्रयुक्तियुक्त और प्रपंचपूर्ण कहानियों को अनीतिपरक कथाओं की सूची में सम्मिलित करना समीचीन होगा। अगर हम बोल्सेविज्म या सोशियलिज्म के पक्षधर हैं और बिना जरूरत अधिक सम्पत्ति रखने को सामाजिक अपराध व नैतिक पाप मानते हैं तो हमें किसी राजा की धन-दौलत की चर्चा वाली अथवा किसी धनाढ्य की अतुलित सम्पत्ति की बातों को अनीतिपरक-कथाओं के खाने में खौंस देनी चाहिए। किस बात को अनीतिपरक मानें और किसे न मानें, इसके निर्णय पर ही कहानी की नीतिमत्ता या अनीतिमत्ता निर्भर रहती है।

अनिष्टकारक विचारों को तिलांजलि देने में हम थोड़ी-बहुत अच्छाई मान कर चलते हैं, फिर भी हमारे द्वारा नीति या अनीति के बारे में निर्णय लेना एक तरह की घृष्टता ही है। नीति-अनीति की अलग-अलग कक्षाएँ विभाजित करके बालकों पर लादना एक तरह का अत्याचार है। अतएव बालकों के लिए वार्ताओं का चयन करते समय हमें उनकी दृष्टि को पर्याप्त अवसर देना चाहिए। साथ ही हमें इस बात का दृढ़ आग्रह रखना चाहिए कि हम किसी भी कहानी के द्वारा नीति का उपदेश देने का लोभ न रखें। यही नहीं, बालकों के वैचारिक-निर्माण का ठेका अपने हाथ में नहीं रखना चाहिए। हमें अपनी मति के अनुसार जो अच्छा लगे, उसे मात्र बालक के सामने रख देना चाहिए। चुनाव हमें नहीं कराना चाहिए अपितु बालक को स्वयं अपने स्तर पर चुनाव करने देना चाहिए। कहानी कहने वाले के सिर पर बालक के निर्माण की जिम्मेदारी नहीं है। भले ही यह जिम्मेदारी नीति-शिक्षणशास्त्री पूरी अपने ऊपर लें, और उसके कटु फल चखें। कहानी कहने वाले का काम तो महज कहानी

कहना है। वह अत्यंत उदार चित्त से जो कहानियाँ अच्छी समझे, उन्हें सुनाए। बालक पर उनका क्या असर होता है अथवा वह उन्हें किस तरह लेता है, यह बात उसे दूर बैठे देखना और आनंद लेना चाहिए।

अनीति और अनिष्टपरक कहानियों से मुक्ति पाने के पश्चात् नीतियुक्त, नीति-बोधक अथवा नीति-शिक्षण के उद्देश्य से ही खास तौर पर लिखी गई कहानियों को लेकर क्या किया जाए, यह एक गहन सवाल उपस्थित होता है। इस संबंध में 'कथा-कहानी और नीति-शिक्षण' शीर्षक अध्याय में आगे सविस्तार लिखा गया है। जो कहानियाँ खास तौर से नीति-शिक्षण के लिए कही जाती हैं तथा जो कहानियाँ नीति के परिधान से पूरी तरह ढँकी होती हैं, उन कहानियों को कहने से उन्हीं के अपने उद्देश्य को अर्थात् नीति-शिक्षण को गहरा धक्का लगता है। नीति-कथाएँ बहुधा इतनी अधिक अस्वाभाविक और इतनी अतिशयोक्तिपूर्ण होती हैं कि इन्हीं कारणों से श्रोता उन्हें लेकर उकताने लगते हैं। परियों की कहानियाँ लिखने वालों में जो स्वाभाविकता, भाव प्रवणता, सहानुभूति, न्यायबुद्धि और संतुलन आदि गुण होते हैं, वे नीति-कथाएँ लिखने वालों में देखने को मिलते ही नहीं। कई कहानियों में मनोविज्ञान संबंधी भयंकर अज्ञान देखने में आता है। नीति संबंधी कई कहानियों में बाल-स्वभाव विषयक ज्ञान का अंधकार होता है। कई कहानियों में मनुष्य के सत्-स्वभाव के प्रति अविश्वास देखने में आता है तो कइयों में कार्य-कारण संबंध का नितांत अभाव मिलता है। नीति का ज्ञान बधारने के लिए नीति-शिक्षणशास्त्री को कई बार अत्यंत विस्मयकारी तथा हास्य के संग घृणा उत्पन्न करने वाली कहानियाँ गढ़नी पड़ जाती हैं।

'एक नटखट बालक : जीवा जिसका नाम' शीर्षक कविता में नीति की एक कहानी है। बालक स्वभाव से जिज्ञासु और शोध वृत्ति का है। जब वह अपने स्वभावानुसार गतिविधि करता है तो नीति के पंडित उसे नटखट कहते हैं। बाल-स्वभाव के बारे में इस अज्ञान को तो कदाचित्त क्षमा किया जा सकता है, पर बुद्धिया की डिबिया में क्या होगा, इसे जानने के लिए अर्थात् डिबिया में रखी हुई चीज का भेद जानने के लिए जब जीवा डिबिया को खोलता है तो बेचारे की आँख में तमाखू (सूँघनी) उड़ कर गिर जाती है। ऐसे में उभरती आशा वाले उस कोमल

36 कथा-कहानी का शास्त्र

बालक की व्यथा के प्रति सहानुभूति दिखाने के बजाय कर्कश नीतिवेत्ता यों कहते हैं कि : 'ठीक ही हुआ। ऐसे शरारती लड़के के साथ तो यही होना चाहिए।' तब तो हमारे मन में ऐसी नीति-कथा के प्रति तिरस्कार के भाव ही पैदा होंगे। अपनी नाक पर चश्मा चढ़ाकर घूमने की बालक की क्रीड़ा देखने के जो सौभाग्यशाली लोग हैं, वे ही असली बात को समझ सकते हैं। बेचारा जीवा अपने पिता से डरता-डरता चुपके-से जरा नाक पर चश्मा चढ़ाने की निर्दोष क्रीड़ा करना चाहता है कि तभी निर्दयी, भावनाशून्य नीति-मीमांसक लोग उसके विनोद में सहभागी बनने की बजाय फटक् से उसका अपमान करने लगते हैं और 'यह तो इसी माजने का है' यों कहते हुए उस पर टूट पड़ते हैं।

अपने चारों ओर की चमत्कार भरी दुनिया को देखने, उसमें घूम-फिर कर मजा लेने के इरादे से जब मक्खी के नन्हें बच्चों का स्वाभाविक मन होता है तो उनकी माँ उन्हें समझदारी के साथ बताती है : 'देखो बेटे! उधर वहाँ हमाम में गरम पानी खोल रहा है। उधर मत जाना, नहीं तो मर जाओगे।' पर यह सीख उस नवचेतन बालक के सामने कितनी देर टिक सकती भला ? माँ घूमने जाती तो वह भी उसके पीछे-पीछे नयी दुनिया में नए प्रयोग करने निकल पड़ा। उसके लिए 'अनीति' या 'असाधारण' जैसा कुछ नहीं था। उसकी वृत्ति माँ का अनादर करने की भी नहीं थी वरन् माँ की आज्ञा से बढ़कर उसकी सहज वृत्ति अधिक जानने-देखने को आकर्षित हो रही थी। बच्चा उड़ता-उड़ता हमाम की तरफ आया और उससे निकलने वाली गरमा-गरम भाप की लपेट में आकर प्राणों से हाथ धो बैठा। किसी को भी नाजुक निर्बल बच्चे पर दया नहीं आई। किसी को ऐसा नहीं लगा कि : 'अरे रे! वह तो बेचारा इस दुनिया की नयी जानकारी हासिल करना चाहता था कि कुदरत के क्रूर नियमों के सामने उसे समाप्त हो जाना पड़ा।' पर नीति-शिक्षण के घमंड में कथाकार इस हद तक भावनाशून्य हो गए कि मृत बच्चे की कब्र पर शोक के आँसू बहाने के बजाय 'जो बच्चे माता-पिता का कहना नहीं मानते, उनकी यही हालत होती है जैसा कटु पंक्ति अपने कठोर हाथों से उसकी कब्र पर लिख आए। जो बच्चे या जो मक्खियाँ अपने माता-पिता का कहना नहीं मानती क्या वे सभी इसी तरह बेमौत मरती हैं ? अथवा ऐसी गरमा-गरम भाप की लपेट में भूल से उड़ने वाली मक्खियाँ क्या इसलिए मर जाती हैं कि वे माता-पिता का कहना नहीं मानती ? सच तो यह था कि मक्खी का बच्चा भाप के कठोर नियम से और उस

कहानी का चुनाव 37

शक्ति से बच जाने के अपने अज्ञान के कारण मरा था। मौं इनकार करे और बच्चा मर जाए तो इसमें माता के आदेश की अवज्ञा और मरने के बीच कोई संबंध नहीं है। ऐसा अर्थ निकालना अनुचित और तर्कहीन है।

मक्खी के बच्चे जैसे बालकों को अथवा 'बाड़े में से एक पाडा छूट कर भाग गया' शीर्षक कविता में पाडे जैसे बालकों को हम उद्धृत बालक कह डालते हैं। सचाई तो यह है कि ऐसे उद्धृत दिखने वाले बालक ही बलवान हैं, जो माता-पिता की समझदारीरहित आज्ञा का उल्लंघन करके, वर्तमान नैतिक शिक्षा प्रणाली में कितनी बड़ी चुट्टी और निरर्थकता है, यह बताते हैं। डॉ. मोटेसरी 'द सर्वे ऑव् मॉडर्न एज्युकेशन' शीर्षक प्रकरण में नैतिक शिक्षण से संबंधित विचार व्यक्त करती हुई लिखती हैं :

'सच्चे विद्रोही बच्चे कई बार ऐसे शिक्षण (नैतिक शिक्षण) की व्यर्थता को दर्शाते हैं। ऐसे मामलों में एक अच्छा शिक्षक उपयुक्त कहानियों का चयन करता है। इन कहानियों में विद्यार्थी के दोषों पर जोर देने के लिए कृतज्ञ न रहने की नीचता, अवज्ञा के खतरों और गंदे मिजाज के भोंडेपन को दर्साया जाता है। यह तो ऐसा ही हुआ जैसे किसी अंधे को अंधेपन के खतरों पर अथवा किसी अपंग को चलने की कठिनाइयों पर शिक्षाप्रद भाषण दिया जा रहा हो। भौतिक मामलों में भी यही होता है। जैसे नए-नए संगीत सीखने वाले बालक से कोई संगीत अध्यापक कहता है : 'अपनी उंगलियों की पकड़ ठीक तरह से रखो, यदि ऐसा नहीं करोगे तो तुम (वाद्य यंत्र) कभी नहीं बजा पाओगे। (ठीक इसी तर्ज पर) स्कूल के बेंचों पर दिन भर झुककर बैठने के लिए अभिशप्त और समाज के प्रचलन के हिसाब से निरंतर पढ़ने के लिए मजबूर बच्चे से मां कहती है : 'कुशलता से आगे बढ़ो, अपने साथियों में अनाड़ी बनकर मत रहो, तुम्हारी वजह से मुझे शर्मिंदा होना पड़ता है।' अगर बच्चा किसी दिन पलटकर यह कहे : 'लेकिन यह तुम्हीं हो जो मेरी इच्छा और चरित्र के विकास को रोकती हो। जब मैं शैतानी करता दिखाई देता हूँ तो इसका मतलब यह है कि मैं अपने बचाव का प्रयास करता हूँ। जब 'मेरा बलिदान' दिया जा रहा हो तो मैं 'भला अनाड़ी बने बिना कैसे रह सकता हूँ?' कइयों के लिए तो यह एक रहस्योद्घाटन

जैसा होगा जबकि कई अन्य लोगों को इसमें 'सम्मान की कमी' नजर आएगी।'

यह युग निकट भविष्य में बालकों और माता-पिता के लिए ही आने वाला है।

बालक का स्वभाव खराब है तो इसके लिए बालक उत्तरदायी नहीं है। हम लोग ही उस स्वभाव के कारण हैं। हमने ही वह स्वभाव अपने आचरण से या बालक पर नीतिगत आचरणों के अधिक दबाव से अथवा बालक द्वारा ली गई स्वतन्त्रता के परिणामस्वरूप उसे भेंट में दिया है। इसके बावजूद बालक के उस

* True, rebellious children occasionally demonstrate the futility of such teachings (moral teachings). In these cases a good instructor chooses appropriate stories showing the baseness of such ingratitude, the dangers of disobedience, the ugliness of bad temper, to accentuate the defects of the pupil. It would be just as edifying to discourse to a blind man on the dangers of blindness, and to a cripple on the difficulties of walking. The same thing happens in material matters, a music-master says to a beginner : 'Hold your fingers properly; if you do not, you will never be able to play.' A mother will say to a son condemned to sit bent double all day on school benches, and obliged by the usages of society to study continually : 'Hold yourself gracefully; do not be so awkward in company, you make me feel ashamed of you.'

If the child were one day to exclaim : 'But it is you who prevent me from developing will and character, when I seem naughty, it is because I am trying to save myself, how can I help being awkward when I am sacrificed ?' To many this would be a revelation, to many others merely a 'want of respect.'

स्वभाव को दूर करने के लिए उपदेशात्मक कहानियाँ सुनाने तथा उनके द्वारा उसके स्वभाव को सुधारने के प्रयास देखकर हँसी आती है।

स्व. पढ़ियार के द्वारा लिखी गई बाल-कहानियों में 'रोनी सूरत वाली लड़की' शीर्षक एक कहानी इस प्रकार है :

रोनी सूरत वाली लड़की

वहाली नाम की छः बरस की एक लड़की थी। वह बात-बात में रोती थी। कोई बालक उसे खेलने के लिए हाथ पकड़ कर ले जाना चाहे तो वह रो पड़ती। उसके सगे-संबंधी उससे कहते : 'वहाली! लो, तुम्हें खाने को कुछ देते हैं', तो भी वह रोने लगती। कोई अनजान आदमी उसे देखता तो वह रो पड़ती और अपनी माँ के पास जाकर खाने के लिए माँगते-माँगते भी वह रोने लगती।

किन्हीं सगे-संबंधियों के घर किसी काम से जाना पड़ता, तो रोती। कपड़े पहनते रोती। नहाते, बाल सँवारते समय रोती। विद्यालय जाते समय रोती। कोई जान-पहचान का व्यक्ति उसे लाड-दुलार से पास बुलाकर पूछता : 'कैसी हो वहाली!' तो भी वह रोने लगती। इस आदत के कारण बहुत सारे लोग उसे रोनी सूरत वाली लड़की कह कर पुकारते थे। मोहल्ले के लड़के उसे 'पगली वहाली, झगड़ालू वहाली' कहकर चिढ़ाते थे। इससे उस रोनी सूरत वाली लड़की को भी सुख नहीं मिलता था।

घर में तो वह रोती ही, विद्यालय में भी रोती। मोहल्ले के लड़के वहाँ भी उसे चैन नहीं लेने देते। पड़ौसी के घर जाती तो बात-बात में उसे रोना पड़ता। वह लड़की किसी को फूटी आँखों नहीं सुहाती थी। उसे कहीं से मान नहीं मिलता था, उल्टे सभी जगहों से उसका अपमान होता था। उसकी तारीफ कभी कोई नहीं करता, उल्टे उसे हर कोई चिढ़ाता। गन्ना, बेर, अमरूद, चने आदि खाने को उसे कोई नहीं देता, उल्टे अगर ये चीजें उसके पास होतीं और वह रोती रहती तो तत्काल कोई उठाकर खा जाता, या बिखेर जाता। इससे उसका स्वभाव जहर जैसा खारा हो जाता। मुँह उदास हो जाता। सिर के बाल बुरी तरह बिखर जाते। कपड़े मैले हो जाते। गालों पर आँसुओं के सूखे हुए रंगे दिखते। बार-बार रोने से उसकी

नाक से रेंट बहती और मुँह से लार टपकती। बहुत रोने से साँस भर आती। घबराकर वह खों-खों करने लगती। इस तरह वह किसी को अच्छी नहीं लगती थी, बल्कि भूतनी जैसी डरावनी लगती। ये तमाम खराबियाँ रोने की वजह से थीं।

हँसमुखी आनन्दी

इसी रोनी सूरत वाली लड़की की बड़ी बहन भी थी, जिसका नाम था आनन्दी। वह आठ वर्ष की थी। वहाली से जरा सांवली होते हुए भी अच्छी लगती थी, और इसका कारण था उसका नाम के अनुरूप आनन्दी स्वभाव। बिना कारण वह कभी नहीं रोती थी। खेलते समय कभी चोट भी लग जाती तो वह नहीं रोती थी। कोई मूर्ख आदमी उसे चिढ़ाता, तब भी वह नहीं रोती थी। कभी उसकी सहेली मजाक में तमाचा मार देती, बाल सँवारने की कंधी छिपा देती या उसकी पेंसिल की नोक तोड़ देती, तब भी वह नहीं रोती थी। कभी दो-चार दिनों के लिए उसे अपनी माँ से अलग घर के अन्य सदस्यों के साथ रहना पड़ता, तब भी वह नहीं रोती थी।

दोनों बहनों में समानताएँ

वहाली को जब उसकी माँ नहलाती थी, तो वह रोती थी, पर आनन्दी तो अपने आप मल-मल कर नहाती थी। जब माँ वहाली के बाल सँवारती थी तो वह रोती थी, सँवारने नहीं देती थी। इससे उसके सिर में जुएँ भरी रहती थी, जो उसे काटती थी और वह सिर खुजलाती रहती थी। इस तरह वह गंदी दिखती थी। लेकिन आनन्दी अपने आप बाल सँवारती थी। उसके बालों में चमक रहती थी। वहाली को जब कोई बुलाता था, तो वह जवाब देने की बजाय रोने लगती थी। लेकिन जब आनन्दी को कोई प्यार से बुलाता था, तो वह खुश होती थी और जो कुछ पूछा जाता, उसका अच्छा जवाब देती थी। सगे-संबंधियों में वहाली को जाना पड़ता था तो वह रोती थी लेकिन आनन्दी को कहीं जाना पड़ता, तो वह उल्टे प्रसन्न होती थी। वहाली विद्यालय जाते समय भी रोती थी और पाठ पढ़ते समय भी। इस तरह रोने में ही उसका ज्यादातर समय बीत जाता था। पाठ उसे याद होता नहीं था। लेकिन आनन्दी तो खुशी-खुशी विद्यालय जाती थी, ध्यानपूर्वक पाठ पढ़ती थी, इस कारण कक्षा में अव्वल रहती थी, जबकि वहाली कक्षा में सबसे पीछे रहती थी।

आनंददायी स्वभाव रखने के लाभ

आनंदी का ऐसा आनंददायी स्वभाव होने के कारण उसे सभी जगह आनंद मिलता था। घर में वह आनंद से रहती ही थी, विद्यालय में भी उसे पहला नंबर मिलता था अर्थात् वहाँ पर वह गुरुजी की प्रिय छात्रा थी और अन्य लड़कियों से ऊपर थी। पड़ोस में भी उसका उदाहरण दिया जाता था। पड़ोसिनें अपनी पुत्रियों से कहती थीं : 'छोरियो! आनंदी के जैसी बनों।' सगे-संबंधियों में वह जहाँ भी जाती, उसी के स्वभाव की चर्चा होती थी और उसे इज्जत दी जाती थी। यह सब क्यों? उत्तर स्पष्ट है—उसके आनंदी स्वभाव के कारण। इसलिए हमें भी अपना स्वभाव आनंदी रखना चाहिए।

आनंदी को जहाँ सौ जगहों से ऊपर लिखे मुजब आनंद मिलता था, तो रोनी सूरत वाली वहाली से सौ जगहों पर मजाकें की जाती थीं तथा उसकी उपेक्षा होती थी। उसकी माँ भी उसके रोने स्वभाव से उकता जाती थी और कहती थीं : 'यह रोंड मर जाए तो अच्छा!' यह सब क्यों होता था? उत्तर स्पष्ट है—उसके रोने वाले स्वभाव के कारण।

मेरे प्रिय बालको! बताओ, तुम्हें क्या पसंद है? आनंदी के जैसा हँसमुख स्वभाव पसंद है या वहाली जैसी रोनी सूरत? अगर तुम्हें रोनी सूरत पसंद नहीं है, तो खास कारण के बिना तुम कभी मत रोना, बल्कि हमेशा आनंदपूर्वक रहने की कोशिश करना।

सच मानें तो रोनी सूरत वाली लड़की को किसी डॉक्टर या मनोवैज्ञानिक के पास ले जाना चाहिए था। स्व. पट्टियार ने उपर्युक्त कहानी में उस बालिका के साथ जबरदस्त अन्याय किया है। रोना स्वभाव शारीरिक अथवा मनोवैज्ञानिक रोग का परिणाम है। जिन लोगों को इस बात की जानकारी है वे ऐसे रोने वाले बालकों के प्रति सहानुभूति रखते हैं, इस तरह उनकी बुराई नहीं करते। अगर रेतल स्वभाव वालों को सुधारने के लिए ऐसी कहानी का प्रयोग उपयुक्त है, तो फिर अंधों को अंधता से और लंगड़ों को अपंगता से मुक्त करने के लिए उनके उस दोष की निंदा करने वाली कहानियाँ क्यों न सुनाई जाएँ?

वीभत्स रस से युक्त कहानियाँ हर्गिज नहीं कहनी चाहिए। ऐसी कहानियाँ न तो अध्यापक कहते, न माता-पिता, वरन् गली-मोहल्लों के खराब लड़के ही ऐसी

कहानियाँ चलाते हैं। नवीनता की वजह से अथवा विषयगत-समझ की जानकारी न होने की वजह से बालक ऐसी कहानियाँ सुनने को प्रेरित होते हैं और उनसे उनकी आत्मा की स्वच्छता पर दाग लग जाते हैं। इन दागों को मिटाने के लिए फिर अगर जीवन भर कोशिश की जाए, तब भी ये दाग नहीं मिटते। अश्लील कहानियों का हम हर्गिज चयन न करें, यह सुस्पष्ट है, पर ग्राम्यतायुक्त कहानियों का चयन किया जाए या नहीं, यह एक विचारणीय प्रश्न है। इस संबंध में आगे लिखा गया है। ग्राम्यतायुक्त कहानियों को हटा देने की हिमायत मैं नहीं करूँगा। बस, इतना ध्यान में रखने का आग्रह अवश्य करूँगा कि अगर ग्राम्य वातावरण और सभी दृष्टियों से निर्दोष हों तो उन्हें सुनाने में कोई एतराज नहीं है। ग्राम्य कथाओं के द्वारा हमें उच्च विनोद कथाएँ प्रकट करने के विचार से ग्राम्य कथाएँ कह कर सुनानी चाहिए। संक्षेप में, अनीतियुक्त, वीभत्सरस युक्त एवं अश्लील कहानियाँ त्यागनी ही चाहिए। नीतियुक्त कहानियाँ भी कहानियों के बतौर कही जाएँ, पर उनमें कहानियों जैसा कुछ हो। कलात्मकता हो, स्वाभाविकता हो तभी कही जाएँ। ग्राम्य कथाओं को ग्राम्यता के दोष से मुक्त करने तथा उनके द्वारा लोगों का मनोरंजन करने के लिए ही कहें।

अभी हमें बालकों को भूत-प्रेत जैसी या डाकिनी-शाकिनी जैसी कहानियाँ नहीं कहनी चाहिए। कहानियाँ सुनाने का उद्देश्य बालकों को आनंद देना होता है। भूत-प्रेतादि की कहानियाँ ऐसी हैं कि जिनके श्रवण से बालकों में भय का संचार होता है और परिणामतः कहानी सुनाने का मुख्य प्रयोजन ही मारा जाता है। सिर्फ इतना ही नुकसान नहीं होता, वरन् बच्चे ऐसी कहानियाँ सुनकर कल्पित भय के शिकार हो जाते हैं। यह नुकसान बहुत गंभीर और भयंकर होता है। ऐसा माना जाता है कि बालक में स्वभावतः भय का तत्त्व रहता है। बालक मनुष्य समाज का प्राथमिक पुरुष है। जब समाज बाल्यावस्था में था, तब समाज के प्रत्येक व्यक्ति को निरंतर अपने चारों ओर अनेक प्रकार के भयों का सामना करना पड़ता था। उस समय का मानव वन्य प्राणियों के साथ सदैव जूझता था। उनसे विजय प्राप्त करने के बावजूद वह उनके भय से मुक्त नहीं था।

फिर, उस अज्ञान के युग में कितने ही प्रकार के प्राकृतिक चमत्कार थे, जिनका रहस्य आज हमारे सामने प्रकट हुआ था। चमत्कार की वे बातें आदिमकाल के मनुष्य की बुद्धि से दूर थीं, अतएव उसे उनसे भय लगता था। आज मेघ गर्जन

या भूकम्प से हमें भय नहीं लगता, लेकिन उस युग के मनुष्य के लिए तो इन घटनाओं के पीछे देवताओं अथवा अन्य शक्तियों के भयंकर कोप का तत्त्व प्रमुख था, अथवा ऐसा ही कुछ था कि वह डर कर मर जाता था।

बालकों के अवलोकनकर्ताओं का कथन है कि बालक के हृदय में विद्यमान भय समाज के प्राथमिक पुरुष का भय है। यह भय उसे समाज के उत्तराधिकार स्वरूप प्राप्त हुआ है। जैसे-जैसे मनुष्य विकास की अवस्था में आता गया है, जैसे-जैसे उसका ज्ञान अधिक से अधिक व्यापक होता गया है, जैसे-जैसे उसने अगम्य विषयों के रहस्य को जान लिया है और जैसे-जैसे उसने भयंकर से भयंकर प्राकृतिक शक्तियों को अपने कब्जे में कर लिया है, वैसे-वैसे उसका भय क्रमशः कम होता गया है। विज्ञान की शक्ति ने तो मनुष्य को अनेक प्रकार के वहमों और उनसे उत्पन्न होने वाले भय से अनेक प्रकार से बचाया है। आज मनुष्य की वृत्ति दिन-प्रतिदिन भय से मुक्त होने की है, हालाँकि वह अभी भय से मुक्त हो नहीं सका है। बालक को भी ऐसे भय से मुक्त करना हमारा दायित्व है। अतः हमें उसे भयप्रद कथाएँ नहीं सुनानी चाहिए।

कहानियाँ कहने वाले दक्षजनों का अनुभव है कि जब ऐसी भयप्रद कहानियाँ कही जाती हैं तब डरने वाला नन्हा बालक माँ की गोदी में छिप जाता है, या वह आँखों के ऊपर हाथ ढँक लेता है या फिर 'ऐसी कहानी नहीं सुननी' ऐसा भाव प्रकट करता हुआ सोने की कोशिश करता है। भयप्रद कहानियाँ सुनाने से बालक के अंदर विद्यमान भय को समाप्त करने के बजाय पोषण ही मिलता है। ऐसी कथाओं से बालक का स्वास्थ्य और मस्तिष्क विकृत होता है। अन्य प्रकार के भय से जो नुकसान स्वाभाविक हैं वे ही नुकसान बालक को कहानी सुनाने से पैदा होने वाले भय द्वारा होते हैं। भय के प्रभाव को लेकर डॉ. गोडार्ड लिखते हैं :

'(इससे) श्वसन-क्रिया प्रभावित होती है और हम या तो बहुत तेजी से साँस लेते हैं या हमारी साँस बहुत धीमे-धीमे चलने लगती है। ये प्रभाव और ऐसे ही अन्य प्रभाव अत्यंत सुस्पष्ट परिणामों में सम्मिलित हैं। लेकिन इनके अलावा भी कुछ प्रभाव हैं। भयग्रस्तता की स्थिति में भूख पर प्रभाव पड़ सकता है और पाचन-क्रिया में बाधा आ सकती है।

पसीने की क्रिया सक्रिय हो सकती है और ठंडा पसीना आ सकता है। उत्सर्जन के अंग अनियंत्रित हो जाते हैं और हमें अनिच्छा से अधिक मल-मूत्र त्याग करना पड़ सकता है। अश्रु-ग्रंथियाँ दुष्प्रभावित होने के कारण भी आँसू बहने लगते हैं।'

बाल्यावस्था में भयप्रद वार्ताएँ सुनने से बालक बिल्कुल डरपोक बन जाता है। डरपोक बनने के बाद तो उसे कल्पना में ही जहाँ-तहाँ भय ही लगता रहता है। बुद्धि-बल और वैज्ञानिक-ज्ञान के अभाव के इन दिनों में बालक किसी जले हुए पेड़ के टूँठ को भूत मान कर डर जाता है। गाय, गधा या कपड़े की ढेरी, चाहे जो हो, अगर बालक एकाएक यह निर्णय नहीं कर लेता कि वह कौन है, तो उनकी सरसराहट या आकार से वह उन्हें भूत-प्रेत या कोई भयप्रद वस्तु मान बैठता है। भूत-प्रेत की बातें बालक के दिमाग में महज कल्पना होने से बालक चाहे जहाँ भूत-प्रेत की कल्पना करने लगता है। ऐसे समय डॉ. गोडार्ड के अनुसार बालक टूटी-पेशाब कर देता है, या उसका कलेजा धड़कने लगता है या उसका मुँह सूख जाता है या पूरे शरीर पर पसीना छूटने लगता है, साँस अटक जाती है और गले से बोल तक नहीं फूटते।

मैंने बाल्यकाल में भूत-प्रेत और राक्षसों की अच्छी-बुरी अनेक कहानियाँ सुनी हैं। उनका अच्छा-बुरा प्रभाव बचपन में जबरदस्त था, और आज भी मैं उनके प्रभाव से मुक्त नहीं हुआ। छुटपन में मैं अकारण डरता था। एक बार तो बड़ा मजेदार किस्सा हुआ। आज मैं उसे मजे की बात मानता हूँ, पर उस समय तो मेरे साथ जबरदस्त चोट हुई थी।

* 'Respiration is affected and we breath rapidly or else the breath comes slowly. These and other effects are among the most noticeable results. But besides these there are others. A state of fear may destroy the appetite and interfere with indigestion. Sweat glands may become active and we have the cold perspiration. Organs of excretion are uncontrolled and we may have involuntary urination or defecation. The lachrymal glands may be affected and tears flow.'

मैं अपने पिता के साथ सोया हुआ था। रात में मुझे पेशाब की हाजत हुई। झांझरका होने को था। मैं खाट से उठा, लेकिन ज्यों ही खाट से नीचे पैर रखने वाला था कि कमरे की सीढ़ी पर मुझे मोट-मोट, काला-काला कुछ दिखाई दिया। मैं सोच ही नहीं पाया कि वह क्या था। ज्यों ही विचार शक्ति मंद पड़ी त्यों ही भूतों की बातों ने दिमाग के पर्दे उघाड़ दिए। वह जो कुछ दिखाई दे रहा था, उसमें मुझे भूत का आभास नजर आया। जब एक बार भूत से डर लगने लगता है तो चारों तरफ भूत ही भूत नजर आता है। मैं तो डर गया। वापिस आकर बिस्तर में लेट गया और इतनी सुरक्षा से पूरे शरीर को रजाई से ढँक कर लेटा कि साँस लेने के लिए हवा की हल्की-सी लहर तक अंदर न आ सके। पेशाब की बात तो आई-गई हुई। कलेजा धड़कने लगा और मैं राम-राम करने लगा।

जब सवेरे उठा तो सीढ़ियों पर पिताजी की जूतों की जोड़ी पड़ी देखी। मुझे बात समझ में आ गई थी कि रात को मैं उन्हें ही देखकर डरा था। फिर तो मुझे अपने पर बहुत हैसी आई। इसके बावजूद मेरी डरने की वृत्ति गई नहीं। जैसे-जैसे हम बड़े होते जाते हैं, वैसे-वैसे हमारा बुद्धि-बल और साहस दिखाने का हौसला बढ़ता जाता है, परिणामतः हमारा मिथ्या भय समाप्त होने लगता है। फिर भी इस भय को निकालने के लिए हमें अपने डरपोक-मन से लड़ना पड़ता है। अब हम नहीं डरते, अपने मन में निश्चित रूप से यह बात बिठाने के लिए हम लोग श्मशान में, जहाँ भूत-प्रेत थे, उन पीपल और इमली के पेड़ों तले जाने लगे। खंखारते हुए हम श्मशान की राख पर चलकर यह साबित करने लगे कि अब नहीं डरते। लेकिन उन सब प्रयासों से छुटपन में दिमाग में घुसी भय की बात निकल नहीं सकी।

युवावस्था में व्यक्ति कम से कम डरता है और इसका कारण होता है बौद्धिक विकास तथा साहसिकता की वृत्ति। लेकिन जब वृद्धावस्था आती है, जब बुद्धि-शक्ति क्षीण होने लगती है और जब साहसिकता के बजाय भीरुता और बनिया वृत्ति उद्भूत होती है तब मनुष्य फिर से भय का शिकार बन जाता है। तब बचपन में भय के कारण बालक में जिन मानसिक दुर्बलताओं ने घर किया था, वे फिर से दिखाई देने लगती हैं और तब वृद्ध भी यों डरने लगता है जैसे बालक। इस हकीकत का अनुभव वृद्धों के परिचय से और उनकी मानसिक दशा से किया जा सकता है। कुछ वृद्ध ऐसी दशा के अपवाद होते हैं। यह बात मेरे कथन की साक्षी स्वरूप है।

एक तो बालक में भय की वृत्ति स्वभाव से ही रहती है, मनोविज्ञान की ऐसी मान्यता है। भूत-प्रेत के भय से या ऐसी ही भयप्रद बातें कह कर अथवा ऐसी चीजों से और शिष्यार्थी-बालक को डरा कर माता-पिता बालक में डर की वृत्ति पैदा करते हैं, उसे दृढ़ करते हैं। विद्यालयों से अपेक्षा है कि वे इन क्रियाओं में मददगार न बनें वरन् इनका विरोध करें। विद्यालयों में भूत-प्रेत की कहानियाँ नहीं कही जानी चाहिए, तथा समझदार माता-पिता को भी बच्चों को ऐसी कहानियों से बचाना चाहिए।

भय की वृत्ति का हमारे बालकों के दिलों से सर्वथा नाश होना जरूरी है। जिस वस्तु से डरने की कतई जरूरत नहीं, उससे बालक कभी न डरे, ऐसा प्रबंध किया जाना चाहिए। सिंह से डरना पड़ता है, इसमें अर्थ है, लेकिन अँधेरे से डर लगता है तो यह अज्ञान है। सिंह से भय न लगे, ऐसी शक्ति अथवा वृत्ति हमें बालकों में विकसित करनी चाहिए, इसी भाँति बालक अँधेरे से डरना छोड़ दे, इसके लिए हमें बालक के हाथ में ज्ञान-प्रदीप देना चाहिए। मूर्ख अध्यापक ही बालक की भयवृत्ति का लाभ लेकर अनुशासन व्यवस्था चलाता है, नासमझ माता-पिता ही इससे लाभ लेकर घर का तंत्र चलाते हैं और भय का आश्रय लेकर जुल्मी राज्य ही अपना शासन-तंत्र चलाते हैं। सचाई यह है कि जब बालक निर्भय होगा तभी शाला में व्यवस्था आएगी, माता-पिता का गृह-तंत्र चलेगा और राज्य का शासन-तंत्र स्वाभाविक रीति से चल सकेगा। परिणामतः अध्यापक, घर और राज्य के समक्ष बहुत कम शिकायतें उपस्थित होंगी। अगर हम कहानियाँ सुना कर बालक में बैठे भय को निकाल सकें तो यह हमारा बहुत बड़ा योगदान माना जाएगा।

भूत-प्रेतादि की कहानियों की भाँति हमें दोनों-टोनों और तंत्र-मंत्र-जंत्र से जुड़ी कहानियों का भी प्रतिकार करना चाहिए। ऐसी बातें बालक में भय तो पैदा करती ही हैं, उन्हें वहमी भी बनाती हैं। जादू-टोनों की दुष्टपूर्ण कहानियाँ तथा जंतर-मंतर की मलिन, मिथ्या, कपोलकल्पित कहानियाँ हमें छोड़ देनी चाहिए। इस तरह की कहानियों पर लिखते समय मैंने यह चर्चा नहीं की कि ये चीजें सच हैं या झूठ! भले ही सच हों या झूठ, पर यह तय है कि ये कहानियाँ किसी भी तरह से बालकों के लिए उपकारक नहीं हैं अपितु अनिष्ट-कारक ही हैं अतः इन्हें छोड़ देना ही श्रेयष्कर है। जिस प्रकार अभी विज्ञान के प्रसार से हम अनेक मिथ्या मान्यताओं से मुक्त हुए हैं अथवा उनके भय से बच गए हैं, वैसे ही भूत-प्रेतादि के बारे में जब

विज्ञान ऐसा प्रकाश डालेगा कि उनसे भयभीत होने जैसी कोई बात ही नहीं है, तब निश्चय ही उनकी कहानियाँ कही जाएंगी। लेकिन उस समय प्रधान रस भय नहीं, कुछ और होगा। भय की कहानियों को किस प्रकार शिक्षण में प्रयुक्त किया जाए, इस संबंध में मैंने अन्यत्र विस्तार से चर्चा की है।

जिस बालक को माता-पिता ने पहले से ही भयभीत बना रखा है, उसे भय की कहानियाँ और ज्यादा डराती हैं। ऐसे बालक के लिए भय की कहानियाँ त्याज्य हैं। लेकिन जो बालक भय जैसी बात को समझता ही नहीं, उसे भय की कहानियाँ सुनाई जा सकती हैं, यही नहीं उससे विवेकपूर्ण चर्चा भी की जा सकती है।

और भी कई बातें हमें त्याग देनी चाहिए। कहानियाँ कल्पित भले ही हों, पर कल्पना में भी विवेक, मर्यादा, नीतिमत्ता, सदाशयता आदि गुण तो होने ही चाहिए। जहाँ दुष्ट लोगों की जीत होती हो और भले लोगों को दुःख झेलने पड़ें, जहाँ आलसी लोगों को बिना परिश्रम किए वैभव के खजाने हाथ लगें और उद्यमशील लोग जीवन भर गरीबी की व्यथा झेलें, जहाँ ईमानदार लोग जीवन पर्यन्त हैरान-परेशान रहें और बेइमानों को किसी तरह का दंड न मिले—ऐसी विचारधारा पनपाने वाली कहानियों को हमें बाल-साहित्य से निकाल देना चाहिए। ‘सत्य की जय’ का सिद्धांत हमारी कहानियों में होना चाहिए। ‘धर्म की जय और पाप के क्षय’ का विचार हमारी कहानियों में रहना चाहिए, ‘सांच उबरे और झूठ डूबे’ की कहावत हमारी बाल-कहानियों के रक्त में प्रवहमान होनी चाहिए। अधिकांशतः हमारी कहानियों में यही तत्त्व मुखर रहता है। आखिरकार रावण और दुर्योधन का नाश ही होता है। फिर भी कई कहानियाँ पापी मनुष्य को इतनी स्पष्टता से प्रकट करती हैं और हमारे भीतर उनके प्रति इस कदर घृणा पैदा करती हैं कि पापी व्यक्ति को पापी बताये बिना ही हम उसके अधःपतन को समझ जाते हैं तथा कहानी के आंतरिक मर्म को जान लेते हैं। बुद्धिमान लोगों और मूर्खों की कहानियों में भी कुछ ऐसी ही बात होती है। उसमें मूर्खों का मात्र मनोविनोद होता है, अज्ञानियों के अज्ञान का मात्र प्रदर्शन होता है, बुद्धिमान मनुष्यों की विजय के बिन्दु पर बल नहीं दिया जाता। संक्षेप में, जो कहानियाँ दुष्टता आदि मनुष्य की हल्की वृत्ति की विजय पर बल देती हैं, ऐसी कहानियाँ हमें नहीं चाहिए। इसका यह अर्थ नहीं कि प्रत्येक कहानी नीतिपरक हो। तत्त्व की बात यही है कि कहानी में अनीति का खुला प्रदर्शन अथवा उत्कर्ष नहीं होना चाहिए। नीतिपरक बातों के बगैर निर्दोष बातों का कहीं

टोटा नहीं है, यह हम भलीभाँति जानते हैं। कहानी की रचना ऐसी होनी चाहिए कि जिसमें सद्बिचारों का पक्ष लिया जाए और बुरे विचारों का खुला विरोध हो। यह नियम बाल्यकाल की अर्थहीन कहानियों (नर्सरी टेल्स अथवा नॉनसेंस टेल्स) पर लागू न हो, यह स्पष्ट है।

अभी हमने यह विचार किया है कि कहानियाँ कैसी होनी चाहिए। अब हम कहानियों की भाषा पर विचार करेंगे।

बेशक, कहानी का प्रथम उद्देश्य आनंद प्रदान करना है। पर वह आनंद निर्दोष रहे, क्षुद्र न बने, इसके लिए हमें अनीतिपरक, वीभत्स एवं ग्राम्य कहानियों को लेकर चर्चा करनी पड़ी। इसी भाँति कहानी का उद्देश्य अधिक सफल हो और भाषा के विकास को पोषण मिले—इसके लिए हमें कहानी की भाषा पर विचार करना जरूरी है।

कहानी कहने से भाषा ज्ञान में वृद्धि होती है, लेकिन हमें यह समझना चाहिए कि भाषा और घरेलू बोली के बीच गहरा अन्तर होता है। मनमानी भाषा में कहानी कहने से कहानी का असर कम होता है और उसका उद्देश्य मारा जाता है। सुंदर, सुगठित, सुव्यवस्थित और शुद्ध भाषा में ही कहानी कही जानी चाहिए।

गाँव के अनपढ़ लोग कहानियों के भंडार होते हैं। कहानी कहने की कला उन्हें कुदरती तौर पर प्रदत्त होती है। पर उनकी भाषा एकदम अशुद्ध और खड़ी-उखड़ी होने से बालकों को सुनने में मजा तो आता है, पर वस्तुतः पूर्ण लाभ नहीं मिल पाता। अगर वही कहानी कहानी-कौशल में दक्ष किसी अध्यापक के हाथ में आए तो उसकी प्रस्तुति में जबर्दस्त अन्तर पड़ जाता है। ऐसे कुशल कारीगर के हाथ में आत्मा का असली प्राण अधिक तेजस्वी और चमकदार बनता है। ऐसा कारीगर खान से निकलने वाले कच्चे सोने को शुद्ध करके उसको वास्तविक चमक देता है। जिन्हें भाषा का सही ज्ञान नहीं होता ऐसे लोगों के हाथों कहानी की देह और आत्मा को गहरा नुकसान होता है।

कहानी की भाषा में साहित्य की दृष्टि की अपेक्षा रहती है। पर वह अपेक्षा इतनी अधिक नहीं बढ़ जानी चाहिए कि गाँव की स्त्री बदल कर केवल नगर की रमणी बनी रहे। ग्रामीण नारी का नैसर्गिक सौंदर्य और उसकी निर्व्यजिता बनी रहे, फिर भी वह शहरी संस्कारों को ग्रहण कर सके तभी ग्रामीण नारी को शहरी संस्कारों का लाभ मिल पाना संभव है। इसी भाँति कहानी को भाषाई संस्कार देने में उसके

प्राणों को क्षति नहीं पहुँचनी चाहिए। तुकबंदी भी कविता होती है और रस सिद्ध काव्य भी कविता होती है, पर दोनों में फर्क होता है। जहाँ कवित्व होता है वहाँ काव्य होता है। यही बात कहानी के साथ है। जहाँ कहानीपन होता है वहाँ कहानी होती है। ऐसा होते हुए भी काव्य के साथ पिंगलशास्त्र के नियम लगे होते हैं, भाषा की मर्यादा होती है। इसी भाँति कहानी के साथ भी भाषा की मर्यादा होती है। हम सुंदर से सुंदर भाषा में बोल कर खराब से खराब कहानी कहें, इसके बजाय अशुद्ध और कम व्यवस्थित भाषा बोलकर भी यदि सुंदर से सुंदर कहानी कहते हैं तो उसे अच्छा कहना चाहिए। कहानी की कला, कहानी की वस्तु और कहानी की भाषा—हमें इस क्रम को अंगीकार करना चाहिए। लेकिन इन प्रथम दोनों के भरोसे तीसरी की समृद्धि का कोई अर्थ नहीं है, यह हमें दृढ़ता के साथ स्वीकार करना चाहिए।

आखिर में, हम जान लें कि कहानी सुनाना एक प्रकार की मानसिक खुराक है। जितना ध्यान शरीर की खुराक के लिए रखते हैं, उतना ही ध्यान मानसिक खुराक के लिए भी रखें। सभी तरह का आहार लाभदायक नहीं होता, वैसे ही सभी तरह की कहानियाँ हितकर नहीं होतीं। ऐसे में कहानी के चयन के नियम त्यागने पड़ते हैं। प्रत्येक कहानी का चयन करते समय हमें अपने आप से निम्न तीन सवाल पूछ लेने जरूरी हैं :

1. क्या कहानी बालकों को आनंद देगी ?
2. क्या कहानी भाषा की दृष्टि से योग्य है ?
3. क्या कहानी हितकारी है ? अर्थात् कहानी सुनने से बालक के जीवन को निर्दोष एवं स्वस्थ मार्ग मिलेगा ?

एक अमेरिकी महिला के शब्दों में यह तीसरा सवाल इस तरह रखा गया है :

‘Will what it adds to his life be for his good ? Is its underlying idea true, does it present sound standards, is its spirit fine, its atmosphere healthy ?’

इन तीनों कसौटियों पर जो खरी उतरें उन कहानियों को ही यदि चुना जाएगा तो कहानियों के चयन में किसी भी तरह की त्रुटि से उबरा जा सकेगा। □

तीसरा प्रकरण

कहानियों का क्रम

कहने योग्य कहानियाँ तय करने और उन्हें इकट्ठी करने के बाद यह नक्की करना जरूरी है कि उन्हें किस क्रम में कहा जाए। कहानी सुनाने के लिए कहानी का क्रम तय करना जितना आवश्यक है उतना ही यह काम कठिन है। तथापि जब तक क्रम नक्की नहीं किया जाता है तब तक कहानी कहने का उद्देश्य आधा-अधूरा ही पार पड़ता है और शेष सभी विधियों से कहानी कहने वाले द्वारा की गई तैयारी बेकार जाती है।

कहानी कहने में क्रम जैसा कुछ तो होना ही चाहिए, यह बात तो हम सीधे-सादे विचारों से भी समझ सकते हैं। तीन बरस के बालक को हम ऐतिहासिक कहानी या अद्भुत कहानी नहीं कहते। चाहे हम कितने ही सुंदर ढंग से कहानी कह सकते हों, पर इस उम्र के बालक को प्रेम की कहानी, धर्म की कहानी, बहादुरी की कहानी या विनोद वार्ता में मजा नहीं आएगा। इसी प्रकार दस-बारह वर्ष के बालकों को बाल-स्वभाव को अत्यंत प्रिय लगने वाली तुकबंदियों, यथा—

कहानी कहूं भैया। सुन मेरे कहैया ।।

कहैया ने मांडी हाट। उसमें से निकला भाट ।।

अथवा

एक बात की बात। सवाया की सात ।

बोरड़ी का कांटा देखा, साढ़े अठारह हाथ ।।

आदि बिना अर्थ वाली कहानियाँ सुनाने हर्गिज नहीं बैठेंगे, और अगर उनको नन्हें बालक मान कर ऐसी तुकबंदियों वाली कहानियाँ सुनाने लगेंगे तो वे खुद हमें एहसास दिला देंगे कि ये कहानियाँ उनके लिए नहीं हैं। जिस प्रकार बालकों की स्वाभाविक उम्र के अंतर से कहानी सुनने के शौक में फर्क आ जाता है, उसी प्रकार बालकों की अस्वाभाविक उम्र के अंतर से भी कहानी सुनने के शौक में फर्क पड़ जाता है। बालक की स्वाभाविक उम्र तो होती ही है, उसकी मानसिक उम्र भी होती है। कई बालक जिन्हें हम चालाक या समझदार या परिपक्व-बुद्धि कहते हैं, वे

शारीरिक उम्र से नन्हें होने पर भी मानसिक उम्र से बड़े होते हैं। इसी प्रकार ठीक विपरीत देखें तो कई अघेड़ उम्र के लोग मानसिक उम्र से बिलकुल नन्हें बालक जैसे होते हैं। अतः इस तरह के मानसिक उम्र के अंतर से कहानी कहने का क्रम-निर्धारित करने में एक अधिक विचार को ध्यान में रखना पड़ता है तथापि सामान्यतया बालकों की स्वाभाविक उम्र ही उनकी मानसिक उम्र होनी अधिकांशतः संभव है और उपर्युक्त दृष्टांत अपवाद स्वरूप होने के कारण कहानी के क्रम की योजना को हम ऐसे दृष्टांतों से अबाधित ही रखेंगे। इस तरह के अपवादों को हमें सदैव ध्यान में तो रखना ही होगा और ऐसे बालकों के उनकी पसंद की कहानियाँ सुनने के विचार को स्वीकार करना ही पड़ेगा।

एक बात और। एक ही स्वाभाविक उम्र के बालकों में बुद्धि, रसवृत्ति और परिस्थिति के अंतर से एक ही प्रकार की फिर भी अलग-अलग रचना की और अलग-अलग वस्तु की कहानियाँ सुनने का शौक देखने में आता है। उदाहरण के लिए हम बाल-कहानियाँ सुनाने बैठते हैं तो किसी को चूहे की कहानी पसंद होगी तो किसी को चिड़ी-चिड़े की, कोई कौआ और तोते पर मरने लगेगा तो कोई धनिया हज़ाम पर फिदा होगा; किसी को मेंढक-मेंढकी की कहानी हिला देगी तो कोई हटीले हज़ाम पर विमोहित होगा। इन तमाम रुचियों को अवकाश तो रहना ही चाहिए। यह भिन्न-भिन्न रुचि कहाँ से आती है, यह सवाल कहानी सुनाने वाले के लिए आसान नहीं है। कहानी सुनते समय बालक की कौनसी वृत्ति प्रधान है, यह जान पाना बहुत कठिन है। सामान्यतया इतने युगों के अनुभव से हमने यह जान लिया है कि अमुक-अमुक कहानियाँ बालकों को प्रिय हैं और वे कहानियाँ सुनाकर हमने संतोष अनुभव किया है। पर अगर बालकों की कहानी चयन की वृत्ति के पीछे जाकर हम देख पायें और उस वृत्ति का कारण जान पायें तो हम सफलतापूर्वक नई-नई कहानियाँ गढ़ सकते हैं, यही नहीं हम कहानी के क्रम को अधिक व्यवस्थित और स्थिर कर सकते हैं। बाल-मन का प्रदेश अत्यंत विशाल है। इस प्रदेश में रुचियों-अरुचियों की खोज कर पाना कठिन है। तथापि क्रम नक्की करने के लिए हम यथासंभव उन रुचियों के पीछे जाते हैं। बालक कहानी को सुनता है, यह अचरज की बात नहीं, लेकिन क्यों सुनता है, यह अचरज की बात है। इससे भी ज्यादा अचरज की बात यह है कि अमुक उम्र का और एक ही उम्र में अमुक प्रकार का बालक अमुक कहानियाँ ही क्यों सुनता है!

52 कथा-कहानी का शास्त्र

बालक तुकबंदियों वाली कहानियाँ सुनता है, बालक को कल्पित बातें पसंद हैं, बालक ऐतिहासिक और प्रेम कहानियाँ सुनता है, बालक बहादुरी की और भक्ति की कहानियाँ भी सुनता है, लेकिन क्यों? क्या कारण है?

बच्चे कहानियाँ क्यों सुनते हैं, इसका कारण हम किसी भी तरह नहीं जान सकते। फिर भी बच्चे कहानियाँ सुनते हैं। क्या कहानियाँ सुनने का यही बड़े से बड़ा और मजबूत कारण नहीं है? वे अमुक उम्र में अमुक कहानियाँ सुनते हैं, यदि यही हमारा अनुभव है तो यही उन्हें कहानियाँ सुनाने का क्रम तय करने का मजबूत और सुरक्षित साधन है।

फिर भी हम उस कारण को ज्ञात करने का प्रयत्न करेंगे।

बालक तुकबंदियाँ क्यों सुनना चाहता है? जिन तुकबंदियों में कोई अर्थ ही नहीं होता, ऐसी तुकबंदियाँ सुनते हमने बालकों को देखा है। उनके उस समय के आनंद का वर्णन ही नहीं किया जा सकता। उनकी तल्लीनता तो बड़े-बड़े शोधकर्ताओं की तल्लीनता से भी बढ़-चढ़ कर होती है। उनकी कहानी को बार-बार सुनने की धुन किसी अच्छे से अच्छे काम करने वाले बड़े आदमी की धुन से भी ज्यादा बलवान होती है। बालक खाना-पीना, खेलना-कूदना, मौज-मजे करना भूल कर ऐसी कहानियाँ क्यों सुनना चाहते हैं; यह प्रश्न स्वाभाविक है, पर इसका उत्तर आसान नहीं। क्या कहानी सुनने-कहने की परंपरा ने बालकों के मन में यह रुचि जागृत की है? क्या बालक नई भाषा सीखने का इच्छुक होने से भाषा के अलग-अलग प्रयोगों को अपना बनाने के लिए कहानियाँ सुनता है? अथवा क्या कहानी में आने वाले प्राणी एवं पदार्थों, जिन्हें वह अपने आसपास देखता है, के बारे में कहानी में कुछ कहा गया है जिसे वह समझ नहीं पाता अतः उनको भली-भाँति समझने, उनका रहस्य ज्ञात करने के लिए वह कहानियाँ सुनता है? क्या हम उन्हें कहानियाँ कह कर ही उनमें कहानियाँ सुनने का कृत्रिम रस पैदा करते हैं?

कहानियाँ कहने वालों की ऐसी मान्यता है कि बालक एकाएक इस दुनिया की कृतियों के मध्य और अपनी भाषा के मध्य नया-नया (नवागत) होने से भाषा के द्वारा दुनिया का परिचय प्राप्त करने की उसकी उत्कंठा रहती है। कहानियों के द्वारा उत्कंठा शांत होती है अतः बालक इनमें रस लेता है। वह अपने आसपास की स्थूल दुनिया और इसकी बातों को ठेठ अल्पायु में सुनने के लिए प्रेरित होता है। कइयों की ऐसी मान्यता है कि बालकों का जीवन क्रिया के प्रदेश में विचरण करने की

शुरुआत होता है अतः उन्हें क्रिया-प्रधान कहानियाँ पसंद आती हैं। कुछ और लोग मानते हैं कि बालक को एकाध घटना, एकाध वस्तु, एकाध प्राणी या एकाध अनुभव, जो उसकी स्मरण-शक्ति में बैठ जाते हैं और जिनका स्मरण उसे आनंददायी लगता है अथवा जिनके स्मरण से उसे अन्य मधुर स्मरण याद आते हैं—ऐसी सामग्री से युक्त कहानियाँ अच्छी लगती हैं। इन तमाम कल्पनाओं में बहुत सत्य है। इस तमाम कल्पना के पीछे कहानी कहने वाले का लंबा अनुभव है। मेरे अपने अनुभव द्वारा मैंने कितनी ही कल्पनाएं की हैं, जिनका मैं यहाँ उल्लेख कर रहा हूँ।

मेरा ऐसा सोच है कि सभी बालकों को कहानियाँ सुनना अच्छा लगता है, ऐसी अनेक लोगों की मान्यता गलत है। इसके विपरीत ऐसा देखने में आया है कि कई बालकों को कहानियाँ सुनना अच्छा ही नहीं लगता। अलग-अलग रुचियों के बालक अलग-अलग कारणों से अलग-अलग कहानियाँ सुनते हैं, ऐसा मेरा अनुभव है। कई बालक ऐसे होते हैं कि जो स्वभाव से वांछित ज्ञान मुख्यतया आँखों से ग्रहण करते हैं, तो कई बालक स्वभावतः वांछित ज्ञान प्रमुखतः कान से लेते हैं। इस तरह कान से ज्ञानार्जन करने वाले बालकों के लिए अंग्रेजी में 'ईयर-माइंडेड' अर्थात् 'कर्ण-मन वाला' शब्द है।

कान से ज्ञान ग्रहण करने वाले बालकों में दो सामान्य कोटियाँ होती हैं : एक कोटि है ध्वनि-प्रिय बालकों की और दूसरी कोटि है शब्द-प्रिय बालकों की। ध्वनि-प्रिय बालक संगीत-प्रधान निकलते हैं, जबकि शब्द-प्रिय बालक साहित्य-प्रधान निकलते हैं। ऐसे साहित्य-प्रिय बालकों को कहानी सुनना अच्छा लगता है। ठेठ बचपन से ही उनको कहानी सुनने में बहुत मजा आता है। जो बालक अत्यधिक दर्शन-प्रिय होते हैं वे कहानी सुनने में कम रुचि लेते हैं, उनको जीती-जागती दुनिया का जीवंत अनुभव करने में अधिक मजा आता है। एकाकी अथवा अत्यधिक कलाप्रेमी और कम साहित्य रसिक बालकों को कहानी सुनना प्रिय नहीं लगता, ऐसा कहा जा सकता है। सिद्ध सूत्र के रूप में नहीं अपितु अनुभव से काम-चलाऊ सूत्र के रूप में कहा जा सकता है कि कहानी सुनने वाले अत्यधिक रसिक बालक अधिकांशतया साहित्य-प्रेमी बनते हैं।

बालक क्यों तुकबंदियों और अर्थविहीन कहानियों को सुनने हेतु तत्पर रहता है, यह उसका स्पीकीकरण है। बिलकुल छोटे बच्चे तुकबंदियों वाली और अपने

आसपास की दुनिया का जिसमें क्रियात्मक प्रतिबिम्ब पड़ता है, ऐसी कहानियाँ सुनते हैं। इसका एक और कारण भी है। बालक जो कुछ अपनी नजरों से स्वयं देखता है, अनुभव करता है, वह भाषा के रूप में बदल जाता है। बालक के लिए यह नया अनुभव होता है और ऐसा-वैसा नहीं होता। यह अनुभव उसे चमत्कार-युक्त लगता है अतएव वह अनुभव की मिठास बार-बार लेना चाहता है और इसी से वह कहानी को सुनने में आनंद लेता है। क्रिया मात्र के पीछे भाषा है, वस्तु मात्र में संज्ञा और गुण है—यह कल्पना और ज्ञान बालक को कहानी जहाँ-जहाँ देती है वहाँ-वहाँ कहानी बालक को स्वागत-योग्य लगती है।

एक तीसरा कारण भी है। बालक अपनी अल्पायु में ही अनेकानेक इन्द्रियगम्य और मानसगम्य अनुभव करता है। इन अनुभवों में कितने ही मीठे होते हैं, कितने ही खट्टे। मधुर वस्तु की यादें संग्रहीत करना मनुष्य का स्वभाव होता है, जब-जब हम एक बार हुए मीठे अनुभव को सीधे तौर पर बार-बार ताजा नहीं कर पाते, तब-तब हम उसका स्मरण करके ताजे हो जाते हैं। वास्तविकता के अभाव में, वास्तविकता दूर होने से अथवा नष्ट होने से हम उसका अधिक से अधिक स्थूल मूर्ति के रूप में स्मरण करने की योजना बनाते हैं। बालक के जीवन में, उसे पसंद आने वाले अनेक सुंदर प्रसंग बनते हैं, पर वे वापिस लुप्त हो जाने से बालक उन्हें ढूँढ़ पाने में असमर्थ रहते हैं। ऐसे समय उस स्थूल घटना को कलमी के रूप में साकार होते देखकर वह कहानी का भक्त बन जाता है। दूर-दिसावर गए हुए या मृत मित्र की फोटो जिस प्रकार हमारे मन का एक प्रकार से समाधान करके मधुर आनंद का मधुर-स्मरण कराती है, उसी प्रकार कहानियाँ विगत अनुभवों को ताजा करके मधुर आह्लाद प्रदान करती हैं।

मान लें कि किसी बालक ने एक कुतिया को अपने कुक्करियों के साथ क्रीड़ा करते देखा और वह दृश्य उसे बहुत अच्छा लगा। हर वक्त तो बालक को ऐसी सुविधा नहीं मिल सकती कि वह कुतिया को अपने बच्चों के साथ क्रीड़ा करते देखे। यह जानी-समझी बात है। जब बालक को कुतिया की क्रीड़ा साक्षात् देखने को नहीं मिलेगी तो जाहिर है कुतिया की क्रीड़ा को ताजा करने वाली किसी कहानी को सुन कर वह उसमें सहज से आनंद लेगा।

चौथा कारण एक और है, जिससे बालक को कहानी सुनना अच्छा लगता है और उसे सुनने से उसे लाभ होता है। कई प्रवृत्तियाँ ऐसी होती हैं, जिन्हें बालक

पसंद करता है, पर उसके हित को देखकर कोई भी उसे करने नहीं देता। इसी प्रकार कई प्रवृत्तियाँ ऐसी हैं कि जिन्हें बालक पसंद करता है और उसे करना आता भी है पर अज्ञानवश अथवा अन्य क्षुद्र कारणों से माता-पिता या अध्यापक उन्हें करने नहीं देते। बालकों की सहज वृत्तियों को रोकने से उनकी इच्छाएँ अतृप्त रहती हैं। उन इच्छाओं को बाद में बालक को वास्तविक रूप में नहीं तो कल्पना द्वारा तृप्त करना पड़ता है। कल्पना द्वारा इसलिए क्योंकि अकेली कल्पना करने से ही बालक की अतृप्त इच्छा को अत्यधिक तुष्टि मिल जाती है। जिस प्रकार किसी मित्र से मिलने की हमारी इच्छा हो और कोई हमें उससे मिलने न दे तो आखिरकार उसकी तस्वीर देखकर ही हम आधा-अधूरा आनंद प्राप्त करना स्वीकार कर लेते हैं। इसी प्रकार बालक अर्ध-तृप्त या अतृप्त इच्छा को वास्तविकता द्वारा नहीं तो कल्पना के द्वारा तुष्ट करने हेतु प्रेरित हो जाता है। कल्पना द्वारा तुष्ट होने की यह रीति कहानी सुनना ही है।

जब कहानियों से बालक को अपनी अतृप्त इच्छा तुष्ट करने का अवसर नहीं मिलता तो उसे कितना बड़ा नुकसान होता है, यह विचार यहाँ अप्रासंगिक है, अतः इसे छोड़ देते हैं। बालक की कहानी सुनने की इच्छा होती है, इसका एक बड़ा कारण यह है कि कहानी सुनने से बालक को जिस तरह के विकास की अपेक्षा रहती है, वह सब मिलता है। किस तरह का विकास बालक कहानी के द्वारा दूँदता है, यह प्रत्येक प्रसंग परख पाना बहुत कठिन है, पर इतना तय है कि जिस कहानी को बालक अपने लिए उपयोगी नहीं समझता, वह उसे सुनने की रुचि ही प्रकट नहीं करता। यहाँ कहानी सुनना, न सुनना बालक की इच्छा पर निर्भर है, ऐसा माना गया है।

जिन-जिन कारणों से बालकों को कहानियाँ अच्छी लगती हैं, उनके बारे में इतने विवेचन के उपरान्त अब हम कहानियों के क्रम पर आते हैं। ऊपर की चर्चा के बाद इतना तो तय है कि बालकों को निम्न प्रकार की कहानियाँ खास तौर पर अच्छी लगती हैं :

1. छोटी-छोटी तुकबंदियों वाली कहानियाँ,
2. छोटी-छोटी तुकबंदियाँ जिनमें प्रमुख हों ऐसी कहानियाँ,
3. प्राणियों की कहानियाँ,

4. अपने आसपास बनने वाली परिचित वस्तुओं और प्राणियों की घटनाओं वाली कहानियाँ, और

5. जिनमें क्रियाओं का भाग अधिक हो, ऐसी कहानियाँ।

ऐसी कहानियों को सामान्यतया 'बाल-कहानियाँ' शीर्षक दिया गया है।

प्रथम वर्ग में हम 'कहानी कहूँ भैया', 'एक बात की बात' और 'नको नको राजा' नामक कहानियों को रखेंगे।

द्वितीय वर्ग में 'बुढ़िया की कहानी', 'एक चिड़िया की कहानी', 'कौआ और कोडिम्बा', 'मुर्गा पड़ा रंग में', 'चिड़िया पड़ी दूध में', 'जूँ का पेट फटा', 'नदी लहू-लुहान' आदि को शामिल करेंगे।

तृतीय वर्ग में 'बिल्ली की तीर्थ यात्रा', 'कौआ और मैना की कहानी', 'भट्ठी बकरी की कहानी', 'कचहरी में जाऊँगा' आदि को सम्मिलित करेंगे।

चतुर्थ वर्ग में 'कौआ और बनिया' तथा ईसप की कुछ कहानियों को शामिल करेंगे।

पंचम वर्ग में 'पायली में पांच चूहे', 'टशुक भाई', 'ठंडा टपका' आदि कहानियों को रखा जा सकता है।

हमने प्रथम वर्ग के रूप में कुछ कहानियाँ रखी हैं, पर उन्हें सुनना या न सुनना बालकों की मरजी पर निर्भर है। अगर कोई कहानी बालक को पसंद आती है तो वह उसे दोहराना मांगता है। उस समय हमें यह तय कर लेना चाहिए कि वह कहानी उस आयु वर्ग के बालक के लिए सुनने योग्य है। बालक के दिमाग या मन में किसी एकाग्र मनपसंद कहानी को सुनने का विचार आए तो उसे एक तरह का और आनंद अनुभव होता है। उस अनुभव के लिए ही बालक हमसे कहानियाँ कहलवाता है; संभव है बालक के ध्यान में कहानी की तमाम बातें हों या न भी हों।

एक बालिका को लड्डू खाने का बड़ा शौक था। मैंने उसे एक बार 'कहानी कहूँ भैया' वाली तुकबंदी सुनाई। वह उसे बहुत पसंद आई। पसंद आने का कारण तुकबंदी का होना या भाषा-रसिकता का होना नहीं था अपितु तुकबंदी में आठ बार लड्डू शब्द का आना था। इसीलिए उसे बहुत मजा आ रहा था। देखिए :

‘महादेवजी ने मुझे लड्डू दिये
लड्डू मैं घर लेकर आई
एक लड्डू मैंने खाया
एक लड्डू माँ ने खाया
एक लड्डू भैया ने खाया
एक लड्डू बापू ने खाया
एक लड्डू बहन ने खाया
एक लड्डू मामा के लिए रखा
आया चुपके काला कुत्ता
चप-चप करता खा गया लड्डू।’

बालिका पूरी कविता सुनना नहीं चाहती थी। उसे तो कविता का आखिरी भाग ही पसंद था और उसे सुनने के लिए वह इतनी अधीर बन जाती थी कि क्या कहने! मुझे ‘महादेवजी ने मुझे लड्डू दिये’ से लेकर ‘आया चुपके काला कुत्ता चप-चप करता खा गया लड्डू’ के प्रसंग को उसे बार-बार सुनाना पड़ता था।

एक बालक को मैंने भगवान बुद्ध के पूर्वजन्म की लगभग पचहत्तर कहानियाँ सुनाई, लेकिन उसे जो कहानी पसंद आई वह थी ‘बुद्ध थे पूर्व जन्म में कुत्ते’। यह कहानी उसने मुझसे कितनी ही बार कहलवाई। इस कहानी का बुद्ध कुत्ता रौब से चलकर कचहरी पहुँचा और राजा को उपदेश देने लगा। यह भाग उस बालक को इतना पसंद था कि सिर्फ इसी प्रसंग के लिए उसने कितनी ही बार सुनी। मैं उसे वह कहानी सुनाते-सुनाते थक गया, पर वह नहीं थका, ऐसा रसिक निकला। इस तरह के लोग हमें नाट्यशाला या सिनेमागृह में मिल जाते हैं। कई ऐसे शौकीन होते हैं कि मात्र एकाध गीत सुनने, एकाध नाच देखने, एकाध टेब्लो जैसे नाटक या सिनेमा में पैसे खर्च करते हैं, और जब उनका मनपसंद प्रसंग आ जाता है तो नाट्यशाला या थियेटर छोड़ आते हैं। वे कहते हैं : ‘बस! इसी के लिए पैसे कुर्बान!’ बालक भी इसी प्रकार एकाध आनंद का अनुभव बार-बार करने के लिए बार-बार कहानी पर कुर्बान जाते हैं!

एक बालिका थी, जिसे कहानी सुनना अच्छा नहीं लगता था। स्वभाव से वह बालिका साहित्य-प्रेमी नहीं निकली, अपितु कला-प्रिय बनी। पर कहानी सुनाते

समय उसे एक कहानी बहुत पसंद आई। इतनी पसंद आई कि वह सुनते-सुनते थकती ही नहीं थी। वह कहानी थी शिव-पार्वती की। जब शंकर तपस्या करने गए थे तो पीछे से पार्वती माता ने अपने मैल से गणपति और ओखा को उत्पन्न किया। जब शंकर लौटे तो गणपति की गर्दन काट डाली और ओखा नमक के कोठार में छिप गई। उस कहानी में तपस्या के बाद जब शंकर लम्बी दाढ़ी बढ़ाकर आते हैं तो गणपति उनसे कहते हैं : अरे जोगी। तू कौन है? भाग जा, चला जा यहाँ से। जब शंकर नहीं मानते तो युद्ध होता है और शंकर खटाक्ष से गणपति की गर्दन काट डालते हैं। तब ओखा उछलती-कूदती भाग जाती है। जब यह प्रसंग आता तो वह बालिका आनंद में एकाकार हो जाती। मानो वह खुद ओखा हो और उसका भाई गणपति हो, ऐसा लगता। अपने घर में जिस चौकी पर वह बैठती थी, वह चौकी उसे शंकर के कैलाश-भवन जैसी लगती थी और उसकी माँ का नहानघर ऐसा लगता था मानो पार्वतीजी अपने नहानघर में नहाने बैठी हों। इस कहानी में कौनसे तत्व बालिका को आकर्षक लगे हों, यह कह पाना कठिन है। बाल्यकाल से किसी एकाध कहानी के लिए पक्षपात बँध जाना ऐसी आनंदानुभूति के कारण ही संभव है।

मैंने बचपन में कितनी ही कहानियाँ सुनी थीं, परन्तु मेरी माँ के द्वारा कही गई ‘तीन जूँओं की कहानी’ अभी तक मेरी स्मृति से गई नहीं। कहानी को मैं भूल गया हूँ, पर एक जंगल में एक जूँ रहती थी, दूसरी चक्की के धाले में और तीसरी गाँव के गौरवे में रहती थी। यह कहानी सुनते समय मेरे मन में जंगल की और गाँव के गौरवे की जो कल्पना थी उसका, और जंगल में रहने वाली जूँ जब अपने माथे पर गड्ढर रखकर सुर निकालती हुई चक्की के धाले वाली जूँ से मिलने आती थी, तब मेरी आँखों के आगे गाँव की कौकड़ से घास का गट्ठर लेकर आने वाली किसी कृषक-महिला का दृश्य तैरने लगता था। उस कहानी के साथ हुई दोस्ती की वजह से आज मैं उसे चारों ओर ढूँढ़ रहा हूँ।

एक अन्य कहानी मेरी स्मृति में मानो उत्कीर्ण है। वह कहानी ‘साँढ़िया पग सड़े’ वाक्य से शुरू होती है। कहानी को मैं भूल गया था, कई वर्षों बाद जब यह कहानी पूरी की पूरी मेरे हाथ लगी तो पुराने मित्र के मिलने जैसा आनंद मिला।

‘सात पूँछों वाला चूहा’ और ‘आनंदी कौआ’ नामक कहानियाँ मुझे अच्छी तरह से कहानी आती हैं या यों कहें कि इन्हें कहने में मुझे मजा आता है। इसका

कारण यह है कि ये मेरी पुरानी मित्र हैं। प्रथम वर्ग की कहानियों के संबंध में इतना पर्याप्त है।

अब द्वितीय वर्ग पर विचार करें। इस वर्ग की कहानियाँ कल्पित हैं। कल्पित होते हुए भी इनका अर्थ जरा विशिष्ट है। बाल-कहानियों में बालक के आसपास की दुनिया का प्रतिबिम्ब होता है, जबकि कल्पित कहानियों में वास्तविक दुनिया का प्रतिबिम्ब होना जरूरी नहीं। बाल कहानियों में एक प्रकार की अशक्यता होती है, जबकि कल्पित कहानियों में दूसरी तरह की अशक्यता होती है। यह दूसरे प्रकार का कल्पित-पन 'मूलं नास्ति कुतः शाखा' जैसे प्रकार का है। पर कल्पित कहानी की व्याख्या करके बताने का निष्फल प्रयत्न करने अथवा उसका अधूरा वर्णन करने की बजाय कल्पित कहानी के प्रदेश को उगाड़ देना ज्यादा अच्छा रहता है। अंग्रेजी लेखक परी-कथाओं को इस तरह की कहानियों में शामिल करते हैं। पौराणिक कथाओं, दंतकथाओं और लोककथाओं को भी इसी वर्ग में रखा जाता है। हमारे यहाँ खास तौर पर परियों की कहानियाँ नहीं हैं, ऐसा मैं एक बार कह चुका हूँ। हमारे यहाँ कल्पित कहानियों के निम्न प्रकार हैं :

1. प्राकृतिक घटनाएँ और प्राकृतिक दृश्य संबंधी कहानियाँ
2. पौराणिक कहानियाँ
3. भूत-प्रेतों की कहानियाँ
4. लोक कथाएँ
5. दंत कथाएँ
6. परियों की कथाएँ

हमारे यहाँ परियों की कहानियाँ नहीं हैं, इसका यह अर्थ है कि गुजरात के प्राचीन लोककथा भंडार में यह रत्न नहीं है। हाल के लेखकों ने परियों की कहानियाँ गुजराती भाषा में संग्रहों द्वारा लाने की शुरुआत की है। ऐसा एक सफल प्रयत्न श्री झवेरचंद मेघाणी का है। 'बुढिया माँ की कहानियाँ' नामक पुस्तक पूरे गुजरात की नहीं अपितु बंगाल की और परदेश की है। इस संग्रह से हमारे द्वितीय वर्ग में परियों की कहानियाँ बढ़ जाती हैं। इन परिस्थितियों में हम परी कथाओं को द्वितीय वर्ग की सूची में खुशी-खुशी गिना सकते हैं।

60 कथा-कहानी का शास्त्र

उपर्युक्त सभी कहानियाँ जब बालक वास्तविकता से कल्पना के प्रदेश में विचरण करने लगता है, तब उसे सुननी अच्छी लगती हैं। 'बाल कहानी' की श्रेणी के योग्य बालक कल्पित कहानी में रस नहीं ले सकता, ऐसा अनुभव बाल कहानी कहने वालों का है। लेकिन अमुक उम्र में बालक कल्पित बातों में क्यों रस लेता है, यह हमें जानने का प्रयत्न करना चाहिए।

ऊपर मैंने कहा था कि कई बालक शब्द-प्रिय होते हैं। शब्द-प्रिय बालक कहानियाँ सुनना अधिक पसंद करते हैं। ये बालक वास्तविक कहानी सुनने के शौकीन होते हैं, साथ ही वे कल्पित कहानियों के भी शौकीन होते हैं। चाहे वास्तविक बातें हों या कल्पित, शौर्य की बातें हों या अद्भुत, सभी तरह की कहानियाँ शब्द चित्र होती हैं, और जो बालक शब्द-चित्र-प्रिय होते हैं वे हर उम्र में कहानियाँ सुनने के शौकीन होते हैं। शब्द-प्रिय बालक शब्द के बल को अनुभव करने की इच्छा रखते हैं। शब्द से हमारे सामने चित्र खड़ा होता है, उसमें शब्द की शक्ति विद्यमान रहती है। जितना प्रभावकारी शब्द-चित्र वास्तविक कहानी उभार सकती है, उससे अधिक प्रभावशाली चित्र कल्पित कहानी उभार सकती है। यही एक कारण है कि जिससे बालक कल्पित कहानियाँ सुनने हेतु प्रेरित होते हैं।

ऐसी कहानियाँ बालक सुनते हैं, इसका एक दूसरा कारण भी है। इस सम्बन्ध में मैं कैथर के शब्द उद्धृत करना चाहूँगा :

'Primitive man through fear and fancy personified the forces of nature and gave them human attributes, and because they were less tangible than the creatures of the jungle and plain that figured in his earliest fables, his mind visualized them as fantastic beings, sometimes lovely and some times grotesque, fairies and goblins, destructive monsters and demons and avenging giants who preserved him from that which he feared. This originated the fairy story that was the expression of this religion. The child enjoys these tales.'

इसका सारांश यह है कि समाज के बाल्यकाल का मनुष्य अगम्य प्राकृतिक बलों में मानवीय भावों का आरोपण करता था। प्रकृति के भिन्न-भिन्न बलों की

कहानियों का क्रम 61

भिन्न-भिन्न सृष्टियों—यथा भूत-प्रेत सृष्टि, गंधर्व-किन्नर सृष्टि, परियों की सृष्टि, राक्षसों की सृष्टि की वह इन प्राकृतिक बलों में कल्पना करता था और उनकी बातें बनाता था। यही बातें कल्पित कहानियाँ हैं। हम बालक की तुलना समाज के प्राथमिक मनुष्य के साथ करते हैं। समाज के प्राथमिक मनुष्य की बुद्धि बालक में जितनी मात्रा में विद्यमान है, उतनी मात्रा में उसे ये कल्पित कहानियाँ पसंद आती हैं।

बालक कल्पित कहानियाँ सुनता है, इसका एक तीसरा कारण भी है। अपनी कल्पना-शक्ति को विकसित करने और उसे तृप्त करने के लिए कल्पनाशील बालक ऐसी कहानियों में रुचि लेता है, यह स्वाभाविक है। वास्तविकता युक्त कहानियाँ सुनने के बाद वास्तविकता के आधार पर रची हुई कल्पना में विचरण करने की कल्पनाशील बालक की वृत्ति को ऐसी कहानियाँ सुनने से ही संतुष्टि मिल सकती है। जिन कहानियों में मनुष्य स्वभाव और लक्षण के, मनुष्य के व्यवहार की विलक्षणता के, मनुष्य के भाव-अभाव के, मनुष्य की निर्बलता-सबलता के प्रतिबिम्ब हैं, उन्हें वास्तविकता की आधार-भित्ति पर रचित कहानियाँ मानने में एतराज नहीं होना चाहिए, ऐसी मेरी मान्यता है। ऐसी कहानियाँ सुनने से बालक अपनी कल्पना-शक्ति को संस्कारित करता है। यह एक सचाई होने से हमें पुनः इस बात का स्पष्टीकरण मिल जाता है कि बालक ऐसी कहानियाँ क्यों सुनता है।

ऐसी कहानियाँ सुनने का एक चौथा कारण भी है। अगर ऐसी कहानियों को वास्तविकता के आधार पर रचित न मानें और नितांत हवाई या मन से गढ़ी हुई मान लें अर्थात् 'मेक-बिलीव' मान लें तो हमारे पास एक और खुलासा है। जिन बालकों को माता-पिता या शिक्षक वास्तविक जीवन जीने से मना करते हैं, या बाधक बनते हैं, उन बालकों पर एक प्रकार का दबाव होने से उनकी वास्तविक जीवन जीने की वृत्ति को किसी दूरस्थ कोने में छिपाकर बैठना पड़ता है। यह दबाई हुई वासना किसी न किसी रूप में बाहर निकलने का प्रयत्न करती है। अगर इस वासना को बाहर निकलने, तृप्त होने का कोई मार्ग नहीं मिलता तो वह भयंकर रोगों अथवा नीति-भंग के रूप में फूट कर बाहर निकलती है। सामान्यतया बालक में इतनी अधिक चेतना भरी होती है और वह इतनी अधिक स्थिति-स्थापक है कि बालक पर डाले गए दबाव को वह अन्य-अन्य साधनों से दूर कर देती है। इसी से वास्तविक जीवन से दुत्कार कर निकाले जाने वाले बालक कल्पित खेल खेलकर अपनी वासनाओं को एक हद तक तृप्त कर लेते हैं। और इसीलिए ऐसे बालक

कल्पित कहानियाँ सुनकर वास्तविक जीवन की बेचैनी टाल सकते हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि कल्पित कहानियाँ वास्तविक जीवन के बदले दाखिल की जानी ठीक हैं। उच्च पोषण और प्रथम दर्जे का पोषण तो वास्तविक जीवन ही प्रदान करता है। लेकिन जहाँ कुदरती खुराक नहीं मिल सके, वहाँ कृत्रिम खुराक से ही चलाना है, इसी भाँति जहाँ वास्तविकता नहीं मिलती, वहीं ऐसी कहानियाँ अर्थ रखती हैं और ऐसी कहानियाँ बालकों को सुनाने का प्रबंध करना हमारा दायित्व बन जाता है। ऐसी कहानियाँ सुनने से कदाचित वास्तविकता से बालक के मानस को जो विकास मिलता है, वह न मिले, पर इतना तो निश्चित है कि ऐसी कहानियाँ सुनने से बालक की दबी हुई वासनाएँ समाप्त हो जाती हैं।

प्रत्येक बालक कल्पित कहानियाँ सुनने के लिए खुश रहता हो, ऐसा नहीं है। लेकिन जहाँ-जहाँ बालक कल्पित कहानियाँ सुनता है, वहाँ-वहाँ ऊपर लिखे चार कारणों में से कोई न कोई कारण होना संभव है। पर कारणों का प्रदेश मर्यादित नहीं हो सकता क्योंकि मनुष्य के मन का प्रदेश अमर्यादित है। फिर भी यदि कोई बालक कहानी सुनता है, तो समझना चाहिए कि उसकी कुछ न कुछ जरूरत है, जिसकी वजह से वह सुनता है। हमें उसकी जरूरत पूरी करनी चाहिए, यह विचार हम अपने पास गाँठ बाँध कर रखें।

अब हम तृतीय वर्ग पर विचार करें। अंग्रेज लेखक इस वर्ग को शूरता-प्रधान (हिरोइक पीरियड) समय कहते हैं। हमारे यहाँ कहानियों को अलग-अलग श्रेणियों में रखने का शास्त्रीय प्रयोग अभी तक हुआ ही नहीं है, इसीलिए हमें वर्गीकरण करके वर्गों-श्रेणियों में सजाने का काम कठिन लगता है। भविष्य में कहानी कहने के लिए श्रेणियाँ सही रीति से बनाई जाएँ और बालकों को जिस समय जैसी कहानी कही जानी चाहिए उस समय सही कहानी सुनाने की सुविधा रहे, अतएव इस बिन्दु पर कुछ विचार करने की शुरुआत आवश्यक है। श्रेणी का विचार तो जरूर किया जाना चाहिए। हर तरह की कहानी हर तरह के बालक को हर उम्र में नहीं कही जा सकती, चाहे बालक को उसमें मजा आए या नहीं, चाहे वह कहानी का बराबर लाभ उठा सके या नहीं।

एक बार कहानी कहने में कुशल एक गढ़वी को कुछ बालकों को कहानी सुनाने हेतु बुलाया गया। गढ़वी की कहानी सुनने के लिए सभी उत्सुक थे। हमारी धारणा थी कि गढ़वी मजेदार कहानी सुनाएगा और बड़ा मजा आएगा। गढ़वी ने

कहानी शुरू की। कहानी आगे बढ़ने लगी, पर किसी को भी रस नहीं आया। गढ़वी बड़ी ही सुंदर लोकभाषा में दूहों-सोरों का प्रयोग करने लगा, हावभाव करने लगा तथा कहानी को रोचक बनाने के लिए अपने सभी हथियारों का प्रयोग करने लगा। पर बालकों के चेहरों पर आलस, ऊंध और उकताहट के सिवाय कुछ और देखने में नहीं आया। फिर तो गढ़वी की अपनी रुचि भी कम होने लगी और जैसे-जैसे बच्चे कहानी से उठते गए वैसे-वैसे कहानी की चमक भी कम पड़ती गई। आखिर कहानी पूरी हुई।

इसी कहानी को अगर गढ़वी ने चौपाल में पड़े रहने वाले आलसी लेकिन रसिक गरासिया युवकों को सुनाया होता तो गढ़वी को बहुत प्रशंसा मिली होती, जबकि यहाँ तो उल्टे लोगों ने यह महसूस किया कि गढ़वी की कहानी में कतई कोई दम नहीं। इसका कारण यह था कि कहानी के चयन को लेकर गढ़वी से बहुत बड़ी गलती हो गई थी। जो बालक कहानी सुनने के लिए बैठे थे वे जोशीले किशोर थे, किशोरावस्था का उनका लहू उफान पर था, उनके शरीर और मन का वेग अपने घरों, गलियों, गाँव की सीमाओं को लौंघ कर कहीं दूर उड़ा जा रहा था, उनकी रगों में उस अवस्था का रक्त नए-नए अनुभव करने, नयी-नयी खोजें करने तथा नई-नई शक्तियों को आजमाने के लिए धबक रहा था; उन्हें साहस, पराक्रम, शूर-वीरता की कहानियों की जरूरत थी; बहादुरी, निखालिस उदारता तथा दूसरों के लिए बलिदान करने वाले युद्धों की कहानियों की जरूरत थी; उन्हें सिर्फ प्रेम की ही कहानियाँ नहीं चाहिए थी क्योंकि प्रेम अर्थात् युवावस्था ने अभी उनमें प्रवेश नहीं किया था। गढ़वी की कहानी प्रेमकथा थी, इसीलिए वह सफल नहीं हो पाई। इससे बाल कहानी के वर्गीकरण की जरूरत रेखांकित होती है। बाल मंदिर में जब-जब अच्छे मेहमानों से कहानी सुनने का प्रयोग किया गया है तो हमारा पक्का अनुभव रहा है कि कहानी सुनने में विषयगत वर्गीकरण पर ध्यान देना परमावश्यक होता है।

अब हम यह विचार करेंगे कि तृतीय वर्ग में कैसी कहानियाँ कही जानी चाहिए। किशोरावस्था में तो ऐसी ही कहानियाँ चुनी जानी चाहिए जो उनकी किशोर जिज्ञासाओं-इच्छाओं का पोषण करें। इसमें निम्न प्रकार की कहानियों को लिया जा सकता है :

1. ऐतिहासिक कहानियाँ
2. ऐतिहासिक दंत कथाएँ

3. बागी-लुटेरों-विद्रोहियों की कहानियाँ

4. वीररस काव्य का सार : कथा रूप में।

इस अवस्था में मूला-माणक और जोधा-माणक की कहानी बालकों को नया जीवन प्रदान करती है; इस अवस्था में सुनी हुई रामायण और महाभारत की कहानियाँ बालकों के दिमाग से कभी नहीं मिटती; इस अवस्था में सुनी अभेठ वाले की और मोखड़े जी की; जगदेव परमार और वीरमती की कहानियाँ जीवन-पर्यन्त वैसी की वैसी ताजा बनी रहती हैं। इस अवस्था में बालकों की दुनिया विशाल हो जाती है। वे गाँव की चौपाल देख आते हैं; गाँव के सीमांत पर स्थापित स्मारकों, वीरों की मूर्तियों-स्तंभों की गिनती कर आते हैं; माता-पिता से डरते-डरते चुपके से घर के किसी कोने में म्यान में सड़ती छुरी-तलवार को निकाल कर देख आते हैं। इस अवस्था में उन्हें ऐसी ही कहानियों में मजा आता है। बचपन में मैंने एक गढ़वी से शूर-वीरता की कहानी सुनी थी। कहानी के और तथ्य तो मैं भूल गया हूँ पर गढ़वी ने घोड़े पर चढ़े एक राजपूत का भरी दुपहरी पहाड़ों की घाटियों में से होकर अकेले जाते हुए का जो वर्णन किया था, वह आज भी मेरी स्मृति में वैसा का वैसा तरोताजा है। खंखारते हुए उसने कहा : 'पहाड़ तो पास-पास सटे हुए बैठे हैं, ऊपर से आग बरस रही है और राजपूत अपना घोड़ा दबड़क-दबड़क दौड़ाये चला जा रहा है। क्या मूँछें हैं राजपूत की ! उन पर नींबू रख दो तो क्या मजाल कि गिर जाए !'

जब हम किशोरावस्था में थे, तब कहानियाँ सुनने के बजाय हमने सचमुच छोटे-बड़े साहसिक काम किए थे। अँधेरा, श्मशान, एकांत जगहें हमारे लिए सुपरिचित थीं। बहादुरी के वेग को हम आमने-सामने की टोलियों द्वारा लड़कर बहाते थे। लड़ाई के हम जबर्दस्त शौकीन थे। गाँव में जब कथा वाचक महाभारत की कथा सुनाते थे, तब रात को दो बजे तक सुनते थे और दिन के समय योद्धा बनकर युद्ध लड़ते थे। एक बार तो बाईस लड़कों की हमारी टोली ने जाळ के पेड़ की डालियाँ काट कर गदाएँ बनाई और उन्हें विश्व-विजयी बनाने के लिए हम में से एक लड़के की ऊंगली काट कर उसका लहू चढ़ाया ! माता-पिता जब हमें नितांत नन्हें छोकरे समझते थे, तब हम बड़े-बड़े पराक्रम रचते थे।

यह एक स्वाभाविक वृत्ति है। इस वृत्ति को पूरी तरह से तृप्त किया ही जाना चाहिए। बाँय स्काउट प्रवृत्ति से इस वृत्ति को तृप्ति मिलनी संभव है। यह नहीं

तो किशोर-प्रवासों, खेलों, भ्रमणों से भी इस वृत्ति को पोषण मिलता है। अगर किसी भी तरह से इस वृत्ति का पोषण न हो सके तो फिर कहानी तो कहनी ही चाहिए। वास्तविकता के अभाव में किशोरों को इसमें आनन्द आएगा ही और वास्तविकता के अभाव में हुए नुकसान की थोड़ी-बहुत भरपाई होगी ही।

बालकों को कहानी की काल्पनिकता में जाने की तभी जरूरत पड़ती है, जब उन्हें वास्तविक दुनिया में जाने से रोका जाता है। इस सत्य की चर्चा ऊपर हो चुकी है, अतः एक लेखिका के शब्दों में अपने विचार व्यक्त करते हुए इस वर्ग के चिंतन को यहीं समाप्त करता हूँ। कैथर लिखती हैं :

'They (grown-up Children) want to live through night of danger and days of daring, and since authority (of parents and teachers) hovers argus-eyed about them, ready to swoop down upon every lad who would go pirating or path finding, the nearest approach to the experience consists in listening to and in reading tales of adventure.*

मनुष्य के जीवन में वह अवस्था अत्यंत महत्वपूर्ण होती है जब किशोर किशोर न रहकर युवा बन जाता है। युवावस्था में मनुष्य पर जो छाप अंकित होती है—जीवन के जो आदर्श निर्मित होते हैं, वह छाप और वे आदर्श जीवन पर्यंत नहीं मिटते। मनुष्य की यह अवस्था अत्यंत चंचल अवस्था मानी जाती है। इस अवस्था को जो मनुष्य काबू में रखते हुए अपनी जिंदगी की नाव को किसी चट्टान से टकराये बगैर सीधे-सीधे महासागर में ले जाता है, वह विजयी होता है, ऐसी हमारी मान्यता है और ऐसा हमारा अनुभव है। सहवास, स्वाध्याय, गीतश्रवण, कथाश्रवण, नाटक-दर्शन और भवाई-दर्शन आदि इस अवस्था में मनुष्य के जीवन निर्माण में

* 'वे (किशोर बच्चे) खतरों की रातों और साहस के दिनों के बीच रहना चाहते हैं। चूंकि अधिकार प्राप्त लोग (अभिभावक एवं अध्यापक) तीक्ष्ण दृष्टि से उनके चारों ओर मंडराते रहते हैं और उस हर लड़के पर झपट्टा मारने को तैयार रहते हैं, जो नई राह खोजना चाहता है या उस अधिकार पर डाका डालना चाहता है, अतः ऐसे में, इस अनुभव का निकटतम उपागम इसी में है कि साहस की कहानियों को सुना जाए और पढ़ा जाए।'

महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। युवावस्था अर्थात् इन्द्रियों एवं मन के वेग में प्रबल बाढ़ की सी अवस्था।

इस अवस्था में बालक को प्रबल एवं स्पष्ट रूप से अपने यौन का ज्ञान हो जाता है। वह पुरुष है या स्त्री, इस बात का स्पष्टतापूर्वक उसके मस्तिष्क में आविर्भाव होता है। यौन ज्ञान का प्रारम्भ होते ही वह स्वयं को दूसरों से अलग मानने लगता है। उसे अन्य यौन का व्यक्ति अपने से इतना अधिक भिन्न लगता है कि उस यौन से संबंधित विचार उसके मन में अधिक से अधिक घुलते रहते हैं। बस तभी से वह अन्य यौन में रुचि लेने लगता है, उसमें उसे मोह पैदा होने लगता है, वह उनके रहस्यों-मर्मों को जानने की कोशिश करने लगता है। वह इस तलाश में लग जाता है कि उस यौन का उसके साथ क्या संबंध है, वह यौन उसके विकास में तथा उसके हार्दिक भावों को संतुष्ट करने में कैसा स्थान रखता है! इस प्रकार की मानसिक वृत्ति को हम सामान्यतया प्रेमवृत्ति कहते हैं। युवावस्था प्रेम की अवस्था है। जिस प्रकार माता के स्तनपान और प्रेम से बाल्यावस्था में पोषण मिलता है वैसे ही युवावस्था में जीवन-साथी बनने की योग्यता वाले तथा माता के जैसे पवित्र प्यार की भेंट देने वाले व्यक्ति की अपेक्षा रहती है। इस अपेक्षा की सान्त्वना सन्मार्ग की ओर ले जाती है, इस अवस्था का मनुष्य माता की ही भाँति अपने प्रेमी व्यक्ति का निर्दोष प्रेम प्राप्त कर सकता है, अतः शिक्षकों, माता-पिता एवं गुरुजनों को ध्यान देने की आवश्यकता है।

अन्य यौन के बारे में विचार करने का सम्पूर्ण प्रदेश कल्पना का है। कल्पना के इस प्रदेश में हम सब कमोबेश भटक चुके हैं। आज हम समझदारी की उस अवस्था का अध्ययन करें तो हमें लगेगा कि उस काल का हमारा भ्रमण मोहक और आनंददायी होते हुए भी कितना अधिक मार्ग से बाहर का था। माता-पिता अपने अनुभव से, शिक्षक अपने निखालस सम्पर्क-संसर्ग से तथा साहित्य अपने उदात्त भंडार से युवकों को सन्मार्ग की ओर नहीं खींचेंगे तो अनेक युवकों-युवतियों को भटक-भटक कर मर मिटने का दुर्भाग्य हम लोगों को सहन करना पड़ेगा; सरस्वतीचन्द्र और कुमुद जैसे कितने ही मनुष्यों की हमें बलि देनी पड़ेगी।

इसीलिए हमें युवावस्था में युवकों को कैसी कहानियाँ सुनानी चाहिए, उसका विचार इस प्रकरण में करने की जरूरत है। शूरीयों को वीरताओं की

कहानियाँ अच्छी लगती हैं तो प्रेमी हृदय को प्रेम की कहानियाँ अच्छी लगना स्वाभाविक है। अनुभव भी इसी बात की गवाही देता है।

पर ये कहानियाँ कैसी हों ? विशेष रूप से प्रेमकथाओं की कमी तो किसी भी साहित्य में नहीं रहती। लेकिन प्रेमकथाओं और प्रेमकथाओं में भी फर्क होता है। सदेवन्त सावलिंगा की प्रेमकथा हमारे समक्ष जीवन का उच्च आदर्श कम प्रस्तुत करती है, तो हलामण जेठवा की कहानी हमारे जीवन के समक्ष राज्य न्यौछावर कर देने लायक है। सीता, जसमा और राणकदेवी प्रेमजीवन में एक नया आदर्श रचती हैं तो तारामती, दमयंती व द्रौपदी भी जीवन में एक नया और अपूर्व आदर्श प्रस्तुत करती हैं। प्रेम के उच्च आदर्श में राम, मजनू, विजानंद कम पूजनीय नहीं, लेकिन प्रेम पगले पेमला और पेमली के प्रेम ने कितना नुकसान पहुँचाया है, क्या हमें इसका पता नहीं ? परिणीता नारी के प्रेम में भटकने के पापी प्रयासों को प्रस्तुत करने वाले कितने ही उपन्यास हमारे युवकों के जीवन को इस समय किस कदर विकृत किए दे रहे हैं, क्या यह बात हमें पता नहीं ? इसीलिए हमें कथाओं कथाओं में फर्क करना चाहिए।

युवावस्था में प्रवेश करने वाले बालकों को प्रेमकथाएँ कहनी चाहिए, पर वैसी नहीं, जैसी वह गढ़वी कह रहा था। प्रेम कथा का यह अर्थ नहीं है कि जिनमें पुरुष और नारी के पात्र हों। पति और पत्नी की बातें जहाँ हों, वे भी यदि प्रेमकथाएँ कही जाती हैं तो यह मान्यता गलत है। अगर कोई यों कहे कि जिसमें प्रेम की कथा हो, तो प्रेमकथा की यह व्याख्या बहुत सादी और सरल है। भाई-बहन के प्रेम की कथा एक प्रकार है; स्त्री मित्र और पुरुष मित्र के प्रेम की कथा प्रेमकथा का दूसरा प्रकार है; माता और पुत्र के बीच की प्रेमकथा तीसरा प्रकार है। इस तरह प्रेमकथाओं के कई प्रकार होते हैं। ऐसी तमाम कथाएँ शुद्ध प्रेम के आदर्श से युक्त होनी चाहिए। हमें प्रेम से डरने की जरूरत नहीं है अपितु प्रेम की निर्बलता और कलुषता से डरना चाहिए। प्रेम की बातों से हम अपने प्रेम-जीवन के आदर्श को बड़ी ही सुन्दरता से गढ़ सकते हैं। युवावस्था से ही हमें कोई न कोई पात्र पसंद आ जाता है। किसी के लिए प्रेम का आदर्श सीता बनी है, तो किसी के लिए प्रेम की आदर्श प्रतिमा सावित्री, कुमुद या कुसुम जैसी कोई नारी। हमने हमेशा इन पात्रों की कोटि तक पहुँचने की कोशिश की है और हमेशा निष्फलता का कड़ुआ स्वाद चखा है। कोई नवपति अपनी नव-वधु को अपनी कल्पना की प्रेममूर्ति ताज पहनाता

है तो कोई नववधू अपने नवपति को अपनी कल्पना में क्रीड़ा करने वाले किसी पतिदेव की मूर्ति वाली भावना से आमंत्रित करती है। ऐसी उदात्त भावनाएँ रचने का काम कहानियाँ बड़ी ही उत्तम रीति से कर सकती हैं। यह काम सम्पादित करने के लिए ही इस अवस्था में कहानियाँ कहने में प्रेमकथाओं का स्थान है। प्रेमकथाएँ कहने से बालक बिगड़ जाते हैं, विपरीत यौन के प्रति उनका अनुराग बढ़ जाता है ऐसी मान्यता बालक के मन को अज्ञान और स्वयं अपनी आत्मा के अविश्वास को प्रकट करती है। अमुक उम्र में जो विकास स्वाभाविक है, उसे विकार मानते हुए दबाने का प्रयत्न करना गलत ही नहीं, नुकसानदायी भी है। अनिष्ट प्रेम के भय से शुद्ध प्रेम को रोकने का प्रयत्न करेंगे तो शुद्ध प्रेम भी अशुद्ध बन जाएगा, यह विचारणीय बात है। भूख को मिटाने का उपाय उपवास नहीं, पौष्टिक भोजन है। इसी प्रकार स्वाभाविक आकांक्षा को तृप्त करने का उपाय आकांक्षा की उचित परितृप्ति में निहित है। जब मनुष्य ऐसी तृप्ति से विहीन रहता है तब अनिष्ट जैसे आचरण और परिणामस्वरूप भयंकर रोग फूट निकलते हैं। प्रेमकथाएँ एक प्रकार से पौष्टिक आहार का काम करती हैं। उद्दाम लहू में बहने वाला प्रेम-निर्झर ऐसी कथाओं से व्यवस्थित होकर अमृतमयी नदी बन जाता है, पर अगर उस निर्झर को रोकने का प्रयत्न किया जाएगा तो वह रिक्त प्रदेश में एक विशाल नद की भाँति फैल जाएगा और सभी कुछ डुबो देगा। इस संबंध में एक स्विस् महिला के विचार प्रासंगिक लगेंगे। वे लिखती हैं :

'In this period when the world-old emotions are first aroused, she advocates the use of love-stories that are pure in tone and high in ideal. We cannot change human nature and keep the boy of sixteen from being drawn by a magnet to the maid who is lovely in his eyes, but we can give him an ideal that will make his feeling an elevating thing instead of a debasing one. We can put into the heart of a girl a poetry and idealism that will keep her worthy of a prince; and we can do it through literature.'

Instead of leaving her free to roam unguided and read whatever falls into her hand or of sitting like a board of censors beside her and goading her toward the forbidden which always allures. We can lead her to delightful, wholesome stories, of which there are a goodly number.*

अलबत्ता, जिन-जिन शालाओं में सहशिक्षा की व्यवस्था है उन-उन शालाओं में ऐसी कल्पित कहानियों की जरूरत कम है। जहाँ जीवंत प्रेम की गुंजाइश है वहाँ कल्पित प्रेम की कहानियों को स्थान नहीं। सहशिक्षा में जिस शुद्ध प्रेम की अपेक्षा है, उसके बारे में यहाँ विस्तार से नहीं कहा जा सकता, अतः इतना पर्याप्त है।

बालक की प्रेमपूर्ण अद्भुत कथाएँ सुनने की अवस्था कथा-श्रवण का अंतिम वर्ग है। यहाँ कथा-श्रवण रुक जाता है। इस उम्र के बाद तो मनुष्य स्वयमेव प्रेमकथाएँ पढ़कर उनका आस्वाद ले सकता है। फिर भी साठ-साठ वर्ष के बूढ़े तक कथा-श्रवण में एक बालक के जितना ही अखूत आनंद लेते हैं, यह बात कहानी की शक्ति का अथवा बूढ़े व्यक्ति की बाल्यावस्था का महत्त्वहीन नमूना नहीं है। इस विचार को हम यहीं विराम देते हैं।

- * 'ऐसे समय में जबकि विश्व-पुरानी भावनाओं को सबसे पहले उभारा जाता हो, वह (लेखिका) प्रेमकथाओं की हिमायत करती है—ऐसी प्रेमकथाएँ, जो अपनी प्रकृति में शुद्ध और आदर्शों में उच्च हों। हम न तो मानव-प्रवृत्ति को बदल सकते हैं और न किसी सोलह वर्षीय किशोर को उस कुंवारी लड़की के चुम्बकीय आकर्षण से मोहित होने से रोक सकते हैं, जो उसकी नजरों में सुन्दर हो। हाँ, हम उसे एक आदर्श जरूर दे सकते हैं, जिससे उसकी भावनाएँ दूषित होने के स्थान पर उदात्त बन सकें। हम किसी कन्या के दिल में कविता और आदर्श जगा सकते हैं जिससे वह अपने (सपनों के) राजकुमार के योग्य बनी रह सके और यह काम हम साहित्य के माध्यम से कर सकते हैं। इसके बजाय कि हम उसे बिना किसी निर्देशन के भटकने दें या जो कुछ भी हाथ लगे, पढ़ने दें अथवा उसके पास हर समय एक सेंसर बोर्ड की तरह बैठकर वर्जित चीजों से उसे चौकस करते रहें (जो कि लुभाती ही हैं); हमें चाहिए कि उसे प्रसन्नतादायक और हितकारी कहानियों की तरफ ले जाएँ। ऐसी कहानियों की कोई कमी नहीं है (काफी संख्या में उपलब्ध हैं)।'

ऊपर कथाओं के जितने वर्ग गिनाये गए हैं, उनके अलावा भी कहानियों के कई प्रकार हैं और उन सब को विद्यार्थी के जीवन में सम्पूर्ण अवकाश मिलना चाहिए। एक प्रकार है विनोद वार्ताओं का, कहावतों के मूल की वार्ताओं का दूसरा प्रकार है और चातुरीपूर्ण कथाओं का तीसरा प्रकार है। इस तरह की कहानियों को प्रत्येक वर्ग में कहा जा सकता है, परन्तु ये कहानियाँ सामान्यतया उस उम्र के बालक को कही जा सकती हैं, जब उसमें बौद्धिक शक्ति का थोड़ा-बहुत अंकुर फूट निकला हो। चातुरीपूर्ण कथाएँ उक्त तीनों प्रकार की कथाओं में सरल मानी जाती हैं। कहावतों के मूल वाली कहानियाँ तो तभी कही जानी चाहिए जब बालक में साहित्य-विषयक अभिरुचि अधिक मात्रा में प्रकट होने लगे। विनोद की कहानियाँ छेड़नी उचित रहती हैं, जब बालक में बुद्धि की सूक्ष्मता स्थिर हो जाए। विनोद विनोद में फर्क पड़ता है, फिर भी सच्चा विनोद और शुद्ध विनोद लगभग बड़ी उम्र के बालक ही झेल सकते हैं। इसके अलावा अन्य रसों से भरपूर कहानियाँ जहाँ-जहाँ कही जा सकें, कहने की छूट है। ऊपर जो वर्ग गिनाये गए हैं, वे बंधन नहीं हैं, मात्र दिशासूचक हैं। जितनी मात्रा में ये वर्ग अनुभव पर आधारित हैं, उतनी मात्रा में इनकी उपयोगिता निश्चित है।

अब वर्ग के अनुसार बालक की उम्र पर विचार करें। इस संबंध में हमारे यहाँ यूरोप जैसे प्रयोग नहीं हुए। अतः हम कह नहीं सकेंगे कि अमुक उम्र तक के बालक के लिए ये वर्ग उचित होंगे। पर जब से बालक कहानी सुनने लगे, वहीं से उसकी प्रथम वर्ग की योग्यता समझ लेनी चाहिए। फिर तो बालक की रुचि का अनुसरण करके वर्ग और उम्र का मिलान करना चाहिए। इस बारे में कोई खास प्रयोग करने की जरूरत तो नहीं है।

कहानी किस क्रम से कही जानी चाहिए, इस संबंध में इतना विवेचन पर्याप्त होगा। □

चौथा प्रकरण

कहानी को कहने योग्य कैसे बनाएँ ?

लोक साहित्य के भंडार में कहानियों का टोटा नहीं है। वे तमाम कहानियाँ सुन्दर और स्वाभाविक हैं। फिर भी वे तमाम कथाएँ सुनाने की दृष्टि से हमें जिस रूप में चाहिए, उस रूप में आज उपलब्ध नहीं। किसी जमाने में जिस स्वरूप में वे लोगों को पसंद आती थीं, उन्हें उनकी जरूरत थी, वे उनके सम्मान की पात्र थीं, उस रूप में विद्यमान कहानियाँ आज भी हमें अच्छी लगती हैं, या उनकी हमें जरूरत है, वे सम्मान योग्य हैं, ऐसा मानने की हमें हर्जिज गलती नहीं करनी चाहिए। कहानी के मूल प्राण को आँच न आए इस तरह के फेरफार युग के प्रवाह के साथ-साथ भाषा, रचना और वस्तु के स्तर पर होते रहे हैं। इन परिवर्तनों के कारण ही कहानी पुरानी होते हुए भी नए युग के साथ चलती आई है और यदि ऐसे ही परिवर्तन होते रहेंगे तो भावी जमाने के साथ वर्तमान कहानियाँ भविष्यतः काल में प्रविष्ट होंगी।

आज हम अपनी इन कहानियों पर दृष्टिपात करें तो हमें उनमें अनेक परिवर्तन करने की जरूरत महसूस होगी। कई कहानियाँ भाषा की दृष्टि से सुन्दर हैं तो उनका वस्तु एवं शिल्प पक्ष त्रुटिपूर्ण होगा। कइयों का वस्तु पक्ष स्वीकार्य होगा तो वे रचना और भाषा की दृष्टि से त्याज्य होंगी। कुछ का रचना पक्ष सही होगा तो भाषा और वस्तु में खास बात नहीं होगी। प्रत्येक कहानी में विशिष्टता होगी, पर सर्वांगीण दृष्टि से वे पूर्ण नहीं होंगी। कहानी कहने वाले व्यक्ति को वही कहानियाँ संग्रहीत करनी चाहिए जो सर्वांग सुन्दर हों। उनकी भाषा श्रोताओं के अनुकूल होते हुए भी लोकप्राण से युक्त हों, उनकी रचना स्वाभाविक होते हुए भी कलापूर्ण होनी चाहिए, और उनकी वस्तु लोकप्रिय होने के साथ-साथ नीरोग एवं उच्च आदर्श-प्रेरक होनी चाहिए।

हमारे पास जितनी भी कहानियाँ हैं, उनमें से अनेक कहानियाँ कथन-श्रवण के लिए युगों से काम में आती रही हैं। कथन-श्रवण में ही काम आने के कारण इनका स्वरूप, इनका आकार, इनका रूपरंग आदि पढ़ने हेतु लिखी गई कहानियों से अलग है। कथन-श्रवण योग्य कहानियाँ बहती नदी जैसी होती हैं। इनकी वस्तु,

इनकी भाषा, इनकी रचना न्यूनाधिक रूप में लोकरुचि के अनुकूल होती आई है ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार नदी का प्रवाह जिस प्रदेश में वह बहती है उसके न्यूनाधिक रूप से अनुकूल रहता है। पढ़ने के लिए लिखी जाने वाली कहानियों की तुलना तालाबों सरोवरों से की जा सकती है। इनमें नवीनता की, प्रगति की, फेरफार की गुंजाइश नहीं रहती। किसी युग में जिस रुचि के अनुकूल होने के लिए ये कहानियाँ लिखी गई थीं, उसी रुचि के अनुकूल होने के लिए ये कहानियाँ आज भी अपना अस्तित्व धारण किए हुए हैं। नई रुचि को ये स्वीकार नहीं करतीं, नए युग को ग्रहण नहीं करतीं, नए जीवन का इनमें स्वाभाविक साया पड़ा नहीं।

जो कहानियाँ बहती नदी जैसी हैं, उनके किनारे इतने अधिक पुराने पड़ गए हैं कि उनमें से धूल और रेत के गिरने के कारण कहानी के निर्बाध प्रवाह में अवरोध आ गया है। इन कहानियों का प्रवाह हमेशा से सामाजिक रुचि के अंकुश तले बहने के कारण जहाँ-जहाँ सामाजिक रुचि प्राकृत या स्थूल हुई है वहाँ-वहाँ प्रवाह में प्राकृतता आई है; जहाँ-जहाँ सामाजिक रुचि पर जड़ता की पर्तें छाती गई हैं वहाँ-वहाँ कहानी रूपी नदी में कहीं गहरे गड्ढे पड़ गए हैं तो कहीं ऊँची टेकड़ियाँ बन गई हैं। इसी प्रकार पुरानी रुचि प्रकट करने वाली कहानियों के सरोवर में भी लंबे समय से घास-फूस पान-पत्ते, कचरे के गिरने से तथा गैर जरूरी पौधों के उगने से उसकी निर्मलता कम हो गई है, उन कहानियों की मूल रुचि मलिन हो गई है। ऐसे में बालकों को सुनाने लायक कहानियों का चयन करके उन्हें कहने योग्य बना लेने की खास जरूरत पड़ती है। जो कहानियाँ बालकों की रुचि को पोषित करें तथा उनके विकास में सहयोगी बनें, ऐसी कहानियाँ अव्वल तो हमें ही ढूँढ़ लेनी चाहिए और तब उन्हें कथन-योग्य बनानी चाहिए।

जो कहानियाँ कथन-श्रवण के लिए ही चलती आई हैं, उनको सुनाने योग्य बनाने का काम सरल है। ऐसी कहानियों में रचनागत दोष कम से कम होता है। इनमें लोकभाषा—विशेष रूप से मुँह से बोली जाने वाली भाषा का प्रमाण ही अधिक होता है और इसी में उसकी सुन्दरता विद्यमान है। हमेशा ही वे कहानियाँ कहने-सुनने की क्रिया से गुजरती हैं अतः उनमें स्वाभाविकता, सादगी, एक गति और सीधा बहाव पर्याप्त मात्रा में होता है। वे सभी की पसंदीदा होती हैं अतः उनमें घटनाओं की परम्परा और लोक-हृदय प्रतिबिम्बित रहता है। फिर भी इन कहानियों में परिवर्तन करने की जरूरत तो पड़ती ही है। जहाँ-जहाँ कथारहित समाज के हाथों

में आने के कारण ये कहानियाँ अपनी कलात्मकता खो बैठती हैं, वहाँ-वहाँ इनमें कला उंडेलने की जरूरत है; जहाँ रचना में संतुलन कम हो गया है वहाँ उसे फिर से स्थापित करना है और जहाँ उसकी वस्तु में विकृति आ गई है वहाँ संस्कार का समावेश करना है। आज हमारे कानों में जो-जो लोककथाएँ पड़ती हैं, वे न्यूनाधिक रूप से ऐसे दोषों से युक्त हैं। ऐसी कथाओं को हमें ध्यान देकर कथन-योग्य बनाना होगा। उन्हें जैसी की तैसी संग्रहीत रखने का काम पुरातत्त्ववेत्ताओं का है। कहानी कहने वालों का काम तो उन्हें कहने-योग्य बनाकर भूतकाल से वर्तमान की ओर तथा वहाँ से भविष्यकाल की ओर खींचना है।

जो कहानियाँ लिखी हुई हैं उन्हें कथन-योग्य बनाने के पीछे एक और सवाल है। ये कहानियाँ वाचन के लिए ही होने के कारण ज्यों की त्यों नहीं कही जा सकती। पाठक वर्ग के लिए लिखी होने के कारण इनकी भाषा में विशिष्ट-शिक्षित वर्ग की भाषा का प्राधान्य होता है। साहित्यिक होने से इन कहानियों की रचना सुन्दर होती है, विवरणों से भरपूर होती है, उलझनपूर्ण, काव्य एवं वर्णन-प्रधान होती है। ऐसी कहानियों को कथन-योग्य बनाने का काम और भी जटिल होता है।

आइए, जरा इस पर चर्चा करें कि श्रवण-पठन योग्य कहानियों को कथन योग्य कैसे बनाया जाए ?

कहने योग्य कहानियों का अति आवश्यक लक्षण होता है उनकी कथन-शैली। जिस ढंग से कहानियाँ लिखी हुई होती हैं उसी ढंग से अगर सुनाने लें तो सुनने में रंजमात्र आनंद नहीं आएगा, ऐसा मेरा अनुभव है। कहने योग्य कहानियाँ संवाद से, प्रश्न से, वर्णन से, अलंकारयुक्त वाक्य-प्रयोगों से शुरू नहीं होतीं, वे तो अपनी स्वाभाविक सादगी में ही हमारे होठों पर तथा श्रोताओं के कानों में जा बैठती हैं; कहने वाले तथा सुनने वाले के बीच हृदयों का तार एकदम जोड़ देती हैं। पहला ही वाक्य कहानी के प्राण को प्रकट कर देता है और प्रत्येक वाक्य उस प्राण को विकसित करता चलता है। न इसमें क्षेपक वर्णन आते, न पात्रों के आंतर-विचारों की श्रेणियाँ आतीं।

पठनीय कहानियों को कथनीय कैसे बनाया जाए, इसका उदाहरण देना समीचीन होगा।

‘सरस्वती नदी के तट पर एक समय शाम ढल रही थी। तट पर गौतम ऋषि का आश्रम था।’

74 कथा-कहानी का शास्त्र

यह वाक्य ‘कुर्बानी की कथाएँ’ पुस्तक में संगृहीत ब्राह्मण की कहानी का है। कहानी के मुख्य पात्र सत्यकाम जाबाल का नाम ठेठ अठारहवीं पंक्ति में देखने को मिलता है। जिस तरह से यह कहानी लिखी गई है, अगर उसी तरह से सुनाना शुरू कर दें तो सत्यकाम जाबाल का नाम सुनाने वाले के मुँह पर आने से पहले तो बालक कहानी सुनना छोड़ कर खेलने भाग जाएंगे। इसमें कथा का दोष नहीं है; कथावस्तु अत्यंत मनोहर है और उससे भी मनोहर है इसकी लेखन-शैली। वाचन-क्षमता तक पहुँचे हुए विद्यार्थियों को तो यह रचना बहुत आनंददायी लगेगी, यही नहीं कथा में आगे क्या आएगा, ऐसी जिज्ञासा के कारण कहानी पढ़ने में उनकी गति और रुचि बढ़ती ही जाएगी।

लेकिन यदि यही कहानी कहनी हो तो इसकी शैली को बदलना चाहिए। या तो इसकी शुरुआत यों करें :

‘एक वन था। उसमें एक आश्रम था। आश्रम में एक ऋषि रहते थे।’

या फिर इस तरह करें :

‘एक था ब्राह्मण-पुत्र। नाम था सत्यकाम जाबाल। वह अपनी माँ के साथ रहता था। उसके मन में ब्रह्म विद्या सीखने की इच्छा जागी।’

‘बुढ़िया माँ की कहानियाँ’ नामक संग्रह से ‘सोनबाई की कहानी’ को हम लेते हैं। इसे कथन-योग्य बनाने के लिए कैसे-कैसे फेरफार करने पड़ेंगे, आइए इस पर विचार करें।

स्थानाभाव की वजह से पूरी कहानी न लेकर उसके थोड़े-बहुत अंशों को वाचन की बजाय कथन-योग्य बनाने का श्रम करते हैं।

सोन बाई

[पठनीय कहानी का उदाहरण]

सात भाई थे। सात भाइयों के बीच थी एक छोटी बहन। बहन का नाम था सोन बाई।

कहानी को कहने योग्य कैसे बनाएँ ? 75

सोन बाई माता-पिता की बड़ी लाडली बेटी। सातों भाई उस पर प्राण न्यौछावर करने को तैयार। पर सातों भाभियों से सोन बाई का लाड-दुलार सहन नहीं होता था।

माता-पिता यात्रा करने चल दिए। पिता ने बेटों से कहा : 'मेरी सोन बाई का ध्यान रखना !' बेटों ने कहा : 'जरूर !' माँ ने सातों बहुओं से कहा : 'मेरी सोन बाई को दुःख मत देना।' सातों बहुओं ने चुपके से दांत पीसते हुए कहा : 'जरूर !'

माता-पिता चले गए। छोटा बेटा भी साथ गया।

मेड़ी में बैठी-बैठी सोन बाई अपनी गुड़ियों का श्रृंगार कर रही थी, कि तभी एक ओढ़नी उड़ कर नीचे गिर पड़ी। मेड़ी पर बैठे-बैठे ही सोन बाई कहने लगी : 'भाभी, भाभी ! वह ओढ़नी मुझे दे दो न !'

भाभी बोली : 'ओहो ! राजकुमारीजी ! तुम्हारे पैरों में क्या मेंहदी लगी है। नीचे आकर ले लो।'

सोन बाई की आँखें छलछला उठीं। उसने माता-पिता को याद किया।

दूसरा दिन था। छहों भाई उठ कर काम पर चले गए। भाभी बोली : 'बैठे-बैठे रोटी नहीं मिलेगी। यह लो कलश, पानी भर लाओ।' सोन बाई पानी भरने गई। सिर पर रखा कलश नीचे गिर जाता, उसके कपड़े भीग जाते, राह चलते लोग मजाक उड़ाते। बड़ी मुश्किल से सोन बाई घड़ा भर कर घर आई और मटके में पानी भर कर दूसरा घड़ा भरने गई।

भाभी ने मटके को पत्थर से फोड़ डाला। नीचे से मटका फूट गया और सारा पानी बह गया।

सोन बाई दूसरा घड़ा लेकर आई, तब तक तो मटके में बूंद भर पानी न रहा। दूसरा घड़ा उड़ेल कर सोन बाई तीसरा घड़ा भरने गई। लौट कर आई तो मटके में पानी भी नहीं। सोन बाई नदी किनारे जाकर रोने लगी। उसे रोते सुना तो एक मेंढक उसके पास आया। पूछने लगा : 'तुम्हें क्या हुआ, छोटी बहन !' सोन बाई बोली : 'भाभी ने मटका फोड़ डाला, वह भरता ही नहीं।' मेंढक सोन बाई के साथ उसके घर चला आया....

76 कथा-कहानी का शास्त्र

सोन बाई की कहानी

[कथन-योग्य कहानी का एक नमूना]

एक थी सोन बाई। उसके सात भाई और भोजाइयों थी। सात भाइयों के बीच सोन बाई अकेली बहन थी, तब भला उसकी क्या बात !

सोन बाई रोज झूले झूलती और गुड़े-गुड़ियों के साथ खेलती। अगर खेलते-खेलते ओढ़नी नीचे गिर जाती तो सोन बाई उसे लाने के लिए नीचे नहीं उतरती थी, बल्कि भाभी से कहती : 'भाभी, भाभी ! जरा मेरी ओढ़नी लाकर देना !'

भाभी ओढ़नी लाकर देती और सोन बाई वापिस अपने खेल में खो जाती। मन ही मन भाभी को बहुत गुस्सा आता, पर करें तो क्या ? माता-पिता के सामने कैसे बोले ? क्योंकि सोन बाई माता-पिता की लाडली बेटी जो ठहरी !

एक बार सोन बाई के माता-पिता यात्रा पर गए। उनके साथ उसके छह भाई और भोजाइयों भी गईं। विदा होते समय सोन बाई की माँ ने छोटे बेटे से कहा : 'बेटे ! अपनी सोन बाई की प्राणों की तरह देखभाल करना।' बेटा बोला : 'जरूर माँ ! यह भी कोई कहने की बात है ? सोन बाई को मैं अपने प्राणों की तरह संभाल कर रखूँगा। तुम तो सुखपूर्वक यात्रा कर आओ। सोन बाई को लेकर तुम अपने मन को मत उचटाना।'

सोन बाई के माता-पिता यात्रा पर चल दिए।

सोन बाई झूले पर बैठ कर गुड़ियों के साथ खेल रही थी कि तभी गुड़िया की ओढ़नी नीचे गिर पड़ी।

सोन बाई भाभी से कहने लगी : 'भाभी ! भाभी !! मेरी ओढ़नी ला दो न !'

भाभी बोली : 'अपने आप ले ले। तेरे हाथ टूटे हुए हैं ? मैं क्यों दूँ ?'

सोन बाई को रोना आ गया।

ज्योंही सोन बाई नीचे उतर कर ओढ़नी लेने गई कि तत्काल भाभी हिंडोले पर जा बैठी। कहने लगी : 'अब यूँ बैठे-बैठे खाने-पीने को नहीं मिलेगा, अब तो

कहानी को कहने योग्य कैसे बनाएँ ? 77

काम करना पड़ेगा। जा, यह घड़ा लेकर पानी भर ला, परिंडा खाली पड़ा है। बाद में खाना माँगना। परिंडा थोड़ा भी खाली रह गया तो तेरी तू जाने।'

सोन बाई ने किस दिन पानी भरा था। उसने घड़ा माथे पर रखा और नदी पर गई। घड़ा भर कर घर की तरफ चली। रास्ते में घड़े से पानी छलक रहा था। सोन बाई की चूनर भीग रही थी और उसकी आँखों से टप-टप आँसू टपक रहे थे।

थकान मियाती-मियाती बड़ी मुश्किल से सोन बाई घर पहुँची।

सोन बाई रोती-रोती सांकल खड़खड़ाती बोली : 'भाभी, भाभी ! दरवाजा खोलो।' भाभी बोली : 'आ गई क्या रौंड ? इतनी देर कैसे कर दी ? जा उस बड़े मटके में तेरा घड़ा खाली कर दे। सँभल कर, कहीं मटका मत फोड़ देना।'

सोन बाई ने बड़े मटके में पानी उँडोला।

तभी भाभी बोली : 'अरी, वहीं चिपक गई क्या ? जा, फिर से नदी पर जाकर पानी का घड़ा भर ला। जब पूरा परिंडा भर जाए तभी आराम से बैठना।

सोन बाई रोती-रोती नदी पर गई।

पीछे से भाभी ने मटके में छेद कर दिया, जिससे सारा पानी बह गया।

सोन बाई तो बड़ी मुश्किल से दूसरा घड़ा भर कर लाई। जब वह मटके में पानी उँडेलने लगी तो उसे पता चला कि मटके में तो पानी की एक बूँद भी नहीं थी।

सोन बाई सोच में डूब गई।

तभी भाभी भड़क पड़ी : 'खड़ी-खड़ी क्या देख रही हो ? इस तरह एक-दो घड़े डालने से कहीं मटका भरेगा क्या ? बीस घड़ों का मटका है। यों खड़े रहने से कैसे चलेगा ?'

सोन बाई रोती-रोती फिर से नदी पर आई।

फिर से घड़ा भर कर मटके में डाला, पर मटका नहीं भरा।

सोन बाई को पता लग गया कि भाभी ने घड़ा फोड़ डाला था। वह फिर से नदी पर गई। किनारे बैठ कर जोर-जोर से रोने लगी। रोना सुनकर एक मेंढक पास आया और कहने लगा : 'बहन ! तुम रोती क्यों हो ? तुझे क्या दुःख है ? मुझे बता, मैं तेरी मदद करूँगा। चुप हो जा।'

78 कथा-कहानी का शास्त्र

सोन बाई बोली : 'बाबा ! मेरे माता-पिता तीर्थयात्रा पर गए हैं। मेरा भाई दुकान गया है और मेरी भाभी मुझसे पानी भरती है। भाभी कहती है मटका भरेगी तो खाना मिलेगा। मटके को उसने पत्थर से फोड़ दिया है। मैं उसमें पानी उँडेलती हूँ और छेद से सारा पानी बह जाता है। मैं क्या करूँ ? कितने घड़े भरूँ ?'

मेंढक बोला : 'रो मत बहन ! मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ। मटके के छेद में जाकर मैं बैठ जाऊँगा, जिससे मटके का पानी बाहर नहीं आएगा।'

सोन बाई को बहुत खुशी हुई। मेंढक सोन बाई के घड़े में बैठ कर उसके घर आ गया।

कहानी का एक और दृष्टांत हम लेते हैं।

टीडा जोशी*

[वाचन-योग्य कहानी का नमूना]

ब्राह्मण का एक इकलौता बेटा था। नक्षत्रों के कुयोग में जन्मा था इसलिए उसका नाम टीडा रखा गया। दाहिनी नासिका में छेद कराया गया था। हाथों में कड़े, पैरों में तोड़े-कड़ले और उस पर सोने की बेड़ी पहनाई गई। पिता को आशंका थी कि वह कल जीवित रहेगा या नहीं, इसलिए उसने अच्छा घर देखकर टीडा का विवाह कर दिया। हुआ भी वही कि नई बहू के कुमकुम लगे पैर घर में पड़े ही नहीं थे कि वृद्ध ब्राह्मण का देहांत हो गया।

पिता की बरसी मनाने के बाद माँ ने टीडा से ससुराल जाकर बहू का गौना कर लाने को कहा। टीडा सज-धज कर तैयार हुआ और दिशाशूल, वारशूल, योगिनी आदि-आदि विघ्नों का इंतजाम करके शुभ मुहूर्त में बगल में बिस्तर उठा कर रवाना हुआ। माँ ने बेटे के ललाट पर तिलक लगाया, बलैयाँ ली, सावधानी रखने की सलाह दी और हाथ में चवत्री देते हुए कहा कि 'भूख लगे तो इसे तुड़ा कर खा लेना।'

सगुन अच्छे हुए। कुमारिका और गौ माता सामने मिले। इससे माँ के मन में टीडा की सकुशल यात्रा को लेकर जरा-सा भी संदेह था, तो वह समाप्त हो गया।

* 'बसंत' संवत् 1975 मार्गशीर्ष अंक से उद्धृत

चलते-चलते दोपहर हो गई। टीडा का मन हुआ कि थोड़ा-सा आराम कर लिया जाए। वहाँ एक विशाल बावड़ी थी। पास में एक विशाल वटवृक्ष था, जिसके चारों ओर पक्का चबूतरा बनवाया हुआ था। उसकी छाया में बनजारों का टांडा रुका था। उन लोगों ने टीडा को बुलवाया तो टीडा वहाँ ठहर गया। भूख मिटाने की बात वह सोच ही रहा था कि उसे माँ की कही बात याद आई। जब से चवन्नी निकाली और पत्थर उठाकर उसे शिला पर तोड़ने लगा। बनजारों ने पूछा : 'यह तुम क्या कर रहे हो ?'

उत्तर में टीडा बोला : 'मेरी माँ ने कहा था कि भूख लगे तो इसे तोड़कर खा लेना !' बनजारों ने उसे बताया कि तुम्हारी माँ ने तो ठीक ही कहा था, लेकिन तुम नहीं समझे। चवन्नी तुड़ाकर खा लेना इसका अर्थ यह है कि चवन्नी खरब करके कोई वस्तु खरीद लेना। चवन्नी अपने पास ही रख ले, हम तुम्हें आम देते हैं, वह खा ले। यों कहकर बनजारों ने पोटली में से आम निकाल कर दिया। टीडा तो खड़ा-खड़ा छिलके-गुठली समेत खा गया। भूख मिटी तो बनजारों को नमस्कार करके वापिस रवाना हो गया और शाम ढलते-ढलते अपने ससुराल वाले गाँव में पहुँच गया।

रात के समय प्रकट होना उसे उचित नहीं लगा इसलिए चुपके से दालान में रखी कोठी के पीछे छिप गया। आधी रात को जब सन्नाटा छा गया तब घर का हालचाल देखने के लिए निकल पड़ा। ससुर दालान में सो रहा था। उसकी खाट के नीचे ओखली थी। उसका ध्यान ओखली पर गया। सास ने उसी दिन ओखली में नाग को प्रसन्न करने के लिए तिल और गुड़ कूट कर तिलकृत बनाया था। गुड़ और तिल ओखली के चारों ओर चिपके थे। ओखली का मुँह खुला था। टीडा ने उसमें अपना सिर डाला और जीभ के सपाटे मारते हुए वह पत्थर को चाटने लगा। आवाज सुनी तो ससुर जाग उठा। सास ने दीया जलाया। टीडा ओखली में से मुँह निकाल कर भागना चाहता था लेकिन घबराहट के मारे मुँह निकला नहीं। बहुत परिश्रम करना पड़ा तब कहीं जाकर ईश्वर ने लाज रखी। सिर निकल गया और सास द्वारा दीया जलाने से पहले ही टीडा बाड़े में भाग गया और मौका देखकर दरवाजा खोल बाहर भाग गया। वह रात टीडा ने गाँव के पीपल पर छिपकर बिताई।

सुबह हुई तो टीडा ससुराल पहुँचा। ससुर गाँव में आया माँगने निकला हुआ था और सास रसोई में बैठी रोटियाँ बना रही थी। टीडा रसोई की खिड़की पर जाकर बैठ गया और रोटियाँ थपने की आवाजें गिनता रहा। तब उसने घर के भीतर प्रवेश किया। सास ने जैवाई का स्वागत किया। खाट बिछाकर उस पर गिर्दी बिछा दी। जल पिलाया और कुशलक्षेम पूछी।

बातों ही बातों में सास ने पूछा : कितना पढ़े हो ? टीडा बोला : चारों वेद। सास चकित रह गई। बोली : 'अच्छी बात है। इतना पढ़े हो तो जरा बताओ देखे आज मैंने कितनी रोटियाँ बनाई हैं ?' टीडा जोशी ने समय का सदुपयोग कर ही रखा था अतः यह परीक्षा उसके लिए भारी नहीं रही। डिब्बे में से पंचांग निकाला और हिसाब लगाते हुए सिर खुजलाकर बोला : 'पाटी, बरता और झींकी ले आओ ताकि मैं हिसाब लगा सकूँ।' सास पाटी-बरता लेकर आई। टीडा ने पाटी पर बीस लकीरें खींची और बोला : 'आपने इतनी रोटियाँ बनाई हैं।' सास का आनंदाश्चय समाया नहीं। उसने चारों तरफ अपने जैवाई की प्रशंसा की। टीडा जोशी की कीर्ति चारों ओर फैल गई।

पास में किसी किसान का चौपाया खो गया था अतः किसान की पत्नी टीडा जोशी के पास पता ज्ञात करने आई। टीडा इस परीक्षा से विह्वल हो उठा, पर अपनी विह्वलता का उसने पता नहीं चलने दिया। अस्वस्थ होने का आडंबर रच तथा उंगलियों के पोरों पर सिंह, कन्या आदि नक्षत्रों की गणना करता हुआ बोला 'अभी चौघड़िया सही नहीं है और मुहूर्त भी अशुभ है अतएव कल सुबह आना और अपने सवाल का उत्तर ले जाना।' थप्पड़ मार-मार कर उसने चेहरा लाल बनाये रखा, पर रात भर नींद नहीं आई। जल्दी उठकर नदी पर नहाने गया। सोचते-सोचते गाँव के पास वाले रास्ते से होते हुए दूसरे रास्ते पर निकल गया। वहाँ उसने कीचड़ में फँसा हुआ एक बैल देखा। बस उसका समाधान मिल गया था अतः नित्यकर्म से निवृत्त होकर हँसते-मुस्कराते गाँव में आया। किसान की पत्नी ससुराल में उसकी राह देख रही थी। देखते ही वह बोला : 'आपका बैल ऊपर वाले मारग में कीचड़ में फँस गया है, जाकर ले आओ।' जोशी की कृपा से बैल का पत लगा है, इस एहसान से प्रसन्न होकर उसने टीडा को कपड़े दिये और गहने पहनाये।

भाग्य के बल पर टीडा जोशी दो बार विपत्ति से बच गया था, पर उसका मन तो बेचैन ही था। अगर कभी किसी ने ऐसा-वैसा प्रश्न खड़ा कर दिया और

उत्तर नहीं मिला तो दुर्गति होगी। इस तरह का भय उसके मन में समाया रहता था। रोजाना सुबह उठते ही वह घर लौटने का आग्रह करता, पर ससुराल वाले उसे रोक लेते।

एक दिन वहाँ की राजकुमारी का हार चोरी हो गया और दरबार से टीडा जोशी को बुलावा आया। टीडा की साँस उखड़ने लगी। राजा का दूत उसे यमदूत जैसा लगने लगा। लेकिन बचने का और उपाय ही क्या था! दूत के साथ टीडा राज दरबार में आया। वह पहले की तरह अगले दिन घर लौटने की बात सोचने लगा। तभी राजा ने उसे अपने साथ भोजन करने तथा वहीं रहने का निमंत्रण दिया।

बत्तीस भाँत के भोजन छत्तीस जात के साग व विविध पकवान थाल में परोसे गए, पर टीडा को कुछ नहीं भाया। रात को भी नींद कैसे आती? 'निंदिया तू आ, निंदिया तू आ' का जाप करता रहा, पर सब व्यर्थ!

वस्तुतः निंदिया नामक एक दासी ने राजकुमारी का हार चुराया था और वह बरामदे में ही सो रही थी। उसने टीडा जोशी का जाप सुना। बेचारा जोशी तो निद्रा का आह्वान-आराधन कर रहा था, पर दासी घबराकर यह समझ बैठी कि वह उसे बुला रहा है क्योंकि वह उसके अपराध को जान गया है। वह दौड़ी-दौड़ी जोशी के पास गई और बोली : 'महाराज, मुझे क्षमा करें। हार पूर्व दिशा वाले कमरे में रजाइयों वाली घोड़ी पर रखी रजाइयों में पड़ा है। इस गरीब दासी पर मेहरबानी करना!'

टीडा ने दासी को अभयदान दिया और सो गया। सुबह उठकर गरम पानी से स्नान किया और सज-धज कर राजा के पास गया। उसने राजा की समस्या का समाधान कर दिया। राजा बहुत खुश हुआ। उसने टीडा को थाल भरकर स्वर्णाभूषण भेंट किये।

टीडा का धीरज अब समाप्त होने लगा। ससुराल आकर उन लोगों के आग्रह की अवमानना करते हुए उसने बहू को तैयार होने को कहा। इधर वह विदा हो रहा था और उधर से राजा का पुनः निमंत्रण आया। ज्योंही टीडा आया त्योंही राजा ने उसके सामने बंद मुड़ी दिखाते हुए पूछ : 'बताओ जोशीजी! इसमें क्या है?'

82 कथा-कहानी का शास्त्र

टीडा बोला : 'खिड़की में बैठकर गिनती पूरी की। जंगल में जाकर बैल को ढूँढ़ निकाला। निंदिया, निंदिया करते मिल गया हार। छोड़ो राजा, टीडा से बैर!'

टीडा का कहने का इतना ही आशय था कि तीन बार पहले मैं किस तरह बचा था, यह मेरा ही मन जानता है, अब आप मुझे कोई बड़ा कष्ट नहीं देंगे तो बहुत बड़ी कृपा होगी। लेकिन सौभाग्यवश राजा ने अपनी मुट्ठी में टीडे को ही छिपा रखा था और उसने यह समझा कि जोशीजी मुझे टिड्डे को छोड़ने की विनती कर रहे हैं। अतः हकीकत जानने पर राजा ने अपने गले से सेर भर सोने वाला हार उतार कर उसे पहनाया।

तब टीडा बहू को साथ लेकर घर लौटा, और खाया-पिया, राज किया जो अधिक था, कुत्ते को दिया।

गोखले में गोटी।
मेरी कहानी मोटी।
नीम पै आया कोर।
दूजी कहानी पोर।।

टीडा जोशी की कहानी*

(कहने-योग्य कहानी का नमूना)

एक था जोशी। उसे ज्योतिष का रंचमात्र भी ज्ञान नहीं था पर ज्योतिषी होने का दंभ पूरा पालता था। एक दिन वह एक गाँव से दूसरे गाँव जा रहा था। मार्ग में उसने दो सफेद बैलों को एक खेत में चरते देखा। यह बात उसने याद रखी।

जोशीजी एक गाँव में पहुँचे और वहाँ एक पटेल के घर उतरे। वहाँ एक किसान आया और बोला : 'जोशीजी महाराज! मेरे दो सफेद बैल खो गए हैं। वे किस दिशा में गए होंगे, कृपया ज्योतिष देखकर फल बता दीजिए।'

जोशीजी ने होंठ फड़फड़ाते हुए एक पुराने सड़े-गले पंचांग में देखकर कहा : 'तुम्हारे बैल पश्चिमी सीमा पर अमुक आदमी के खेत में हैं। वहाँ जाकर ले आओ।'

* बालवार्ता भाग तीन, श्री दक्षिणामूर्ति प्रकाशन मंदिर, भावनगर से उद्धृत

किसान उस खेत में पहुँचा और उसे उसके बैल मिल गए। वह बहुत खुश हुआ और उसने जोशीजी को भी प्रसन्न कर दिया।

अगले दिन रात को टीडा जोशी की परीक्षा लेने के लिए पटेल ने पूछा : 'महाराज ! अगर तुम्हारी ज्योतिष सच्ची है तो बताओ देखें, आज घर में कितनी रोटियाँ बनाई गई हैं।'

टीडा जोशी को कोई काम-धाम तो था नहीं, इसलिए तवे पर रोटियाँ डालते समय की आवाजें गिनकर तेरह रोटियाँ गिनीं। इसलिए ज्योतिष की गणना करने का दिखावा करते हुए उसने कहा : 'पटेलजी ! आज तुम्हारे घर में तेरह रोटियाँ बनी हैं।'

पटेल को बहुत आश्चर्य हुआ।

इन दोनों घटनाओं से जोशी महाराज की कीर्ति पूरे गाँव में फैल गई और सभी लोग अपना-अपना भाग्य दिखाने जोशीजी के पास आने लगे।

तभी राजाजी की रानी का हार चोरी चला गया।

राजा ने टीडा जोशी की प्रशंसा सुन रखी थी, इसलिए उसे बुलाया गया।

राजा ने जोशी से कहा : 'देखो, टीडा महाराज ! रानीजी का हार कहीं गया, कौन ले गया, इसके बारे में पक्की भविष्यवाणी करो। हार का पता लग जाएगा तो तुम्हें खुश कर दूँगा।'

जोशी चिंता में पड़ गया।

राजा बोला : 'आज की रात तुम यहीं रहो और रात भर विचार कर सुबह मुझे बता दो। पर ध्यान रखना, अगर तुम्हारी कही हुई बात गलत निकली तो घाणी में डालकर तेल निकलवा दूँगा।'

टीडा जोशी खाना खाकर बिस्तर में जा लेटा, पर नींद कहां आने को थी। उसके मन में डर था कि सुबह होते ही राजा उसे घाणी में डाल देगा।

टीडा को नींद नहीं आ रही थी इसलिए वह नींद को पुकारने लगा : 'आ री निंदिया ! ! आ री निंदिया !'

84 कथा-कहानी का शास्त्र

रानी के पास निंदिया नामक एक दासी थी। उसी ने चोरी की थी। 'आ री निंदिया, आ री निंदिया' की आवाज उसके कान में पड़ी तो उसने सोचा कि जोशीजी ज्योतिष के बल पर उसका नाम जान गए हैं, अतः वह घबरा उठी।

निंदिया ने पकड़े जाने से बचने का एक ही तरीका समझा कि हार टीडा जोशी को सौंप दिया जाए। वह जोशी के पास गई और बोली : 'महाराज ! लीजिए यह खोया हुआ हार ! मेरा नाम नहीं आना चाहिए। हार का आप जो चाहे कीजिए।'

टीडा जोशी मन ही मन खुश हुआ कि चलो यह ठीक रहा। नींद को पुकारते-पुकारते यह निंदिया आकर हार सौंप गई।

टीडा ने निंदिया से कहा कि तू रानी के कमरे में जाकर उसके पलंग के नीचे यह हार रख दे।

सवेरा होते ही राजा ने टीडा जोशी को बुलाया। टीडा ने दो-एक झूठे-सच्चे श्लोक बोलने का ढोंग किया और उँगलियों के पोरों पर गणना करते हुए होंठ बुदबुदाते हुए पंचांग खोल कर कहा : 'राजाजी ! रानीजी का हार कहीं चोरी नहीं गया है। ढुँढ़वाया जाए। उनके महल में ही पलंग के नीचे होना चाहिए। मेरी गणना तो यही बता रही है।'

ढुँढ़वाने पर हार पलंग के नीचे ही मिला। राजा बहुत खुश हुआ। उसने टीडा जोशी को बहुत इनाम दिया।

टीडा की परीक्षा लेने के लिए एक बार फिर से राजा ने एक युक्ति निकाली।

टीडा को साथ लेकर एक दिन राजा जंगल में गया। टीडा की नजरें कहीं और थीं। तभी राजा ने अपनी मुट्ठी में एक टिड्डा पकड़ लिया और मुट्ठी दिखाते हुए टीडा जोशी से बोला : 'बताओ टीडाजी ! मेरी मुट्ठी में क्या है ? गलत बोलोगे तो मारे जाओगे !'

टीडा जोशी पूरी तरह से घबरा गया। सोचा कि अब उसका भ्रमजाल मिट जाएगा। वह जरूर मारा जाएगा इसलिए अपने ज्योतिष की सारी हकीकत राजा

कहानी को कहने योग्य कैसे बनाएँ ? 85

को कहने और माफी माँगने के इरादे से वह बोला :

‘थप-थप करते तेरह गिने
मारग आते बैल मिले
निंदिया ने दे डाला हार
ना राजा टीडा मत मार ।’

टीडा जोशी ज्योंही यों बोला : ‘ना राजा टीडा मत मार !’ कि तभी राजा ने मन में सोचा कि सचमुच जोशी महाराज सच्चे ज्योतिषी हैं। राजा ने अपनी मुट्ठी में बंद टिड्डे को उड़ाते हुए कहा : ‘वाह जोशीजी ! आपने तो मेरे हाथ में पकड़े हुए टिड्डे को भी जान लिया !’

टीडा जोशी मन में समझ गया कि वह तो मरते-मरते बचा है और सच्चा ज्योतिषी सिद्ध हुआ है।

तब राजा ने जोशी को बहुत इनाम दिया और अपने घर विदा किया।

उपर्युक्त दोनों दृष्टियों से इस बात की थोड़ी-बहुत जानकारी तो मिलती ही है कि कहानी कहने में कथन-शैली का क्या महत्त्व है और उससे कितना-कुछ फर्क पड़ जाता है। जब तक कोई कहानी कथन-योग्य स्वरूप में नहीं ढाली जाती तब तक वह सुनाने लायक नहीं हो सकती। कई बार कहानी सुनाने योग्य होने पर भी वक्ता की कथन-शैली के अभाव में अथवा लेखक की कला-दृष्टि की न्यूनता के कारण विकृत हो जाती है और उसे फिर से कहने योग्य बनाने की मेहनत करनी पड़ती है।

ऐसी विकृत या बिगड़ी हुई कहानियों के कई उदाहरण हमें कई किताबों में मिल जाते हैं। यहाँ ऐसी ही एक कहानी प्रस्तुत है :

छननन छम, माँ मुझे बड़ा दे*

(वाचन-योग्य कहानी का नमूना)

एक गरीब ब्राह्मण के पेट से सात लड़कियाँ जुड़ी हुई थीं।

* टचुकड़ी बीजी सौ बातो—लेखक हरगोविंददास द्वारकादास कांठवाळा से उद्धृत

वह रोजाना गौँव से भीख माँग कर लाता और उनका पेट भरता। एक दिन जब उसे आटा मिला तो अपनी पत्नी को लाकर देते हुए उसने कहा कि मेरा बड़े खाने का मन है, इसलिए आज इस आटे से बड़े बना दे।

आटा थोड़ा था और सारी लड़कियाँ माँगने लगे तो पूरा नहीं पड़ सकता था। इसलिए उनको जल्दी सुला दिया गया और तब बड़े बनाने का काम शुरू हुआ। एक बड़ा कढ़ाई में डालते ही छम-छम की आवाज हुई। आवाज सुनकर एक लड़की जाग उठी और बोली : ‘माँ मुझे छम बड़ा दो।’ वह बड़ा उसे दिया गया और दूसरा बड़ा तलने के लिए कढ़ाई में डाला गया। तभी दूसरी लड़की जाग पड़ी। उसने भी बड़ा माँगा। वह बड़ा उसे दिया गया। इस तरह एक के बाद एक सातों लड़कियाँ जागीं और एक-एक बड़ा खा गईं। आटा कम रह गया था इसलिए उसमें चूल्हे की राख मिलाकर कुछ बड़े बनाए गए। ब्राह्मण घर आकर खाने बैठा तो बड़ा कचड़-कचड़ बोलने लगा। जब उसने कारण पूछा तो पत्नी ने रोते-रोते सारी बात बयान कर दी।

ब्राह्मण को बहुत गुस्सा आया। दिन दहाड़े वह लड़कियों को गाड़ी में डाल कर जंगल में छोड़ आया।

इस कहानी में बाल-कहानी के तत्त्व तो हैं पर बाल-कहानी वाली शैली नहीं है। इसी कहानी को सुनाने योग्य इस तरह बनाया जा सकता है :

माँ मुझे छम बड़ा दो*

(सुनाने-योग्य कहानी का नमूना)

एक था ब्राह्मण और एक थी ब्राह्मणी। उनके सात बेटियाँ थीं।

ब्राह्मण बहुत गरीब था। रोजाना बेचारा सात गौँवों में जाकर माँगता, तब कहीं जाकर मुश्किल से उन लोगों का पेट भरता था।

एक दिन ब्राह्मण को बड़े खाने की इच्छा हुई। वह ब्राह्मणी से बोला : ‘आज तो बड़े खाने का मन है।’

* बालवार्ता भाग बीजो, श्री दक्षिणामूर्ति प्रकाशन मंदिर, भावनगर से उद्धृत

ब्राह्मणी बोली : 'लेकिन सभी बड़े खाएँ, इतना आटा तो घर में है नहीं !
पाँच-सात बड़े बड़ी मुश्किल से बन सकें, बस इतना ही आटा है।'

ब्राह्मण बोला : 'कोई बात नहीं। बना लो।'

ब्राह्मणी बोली : 'नहीं, यों नहीं। परसों धोली काकी कुछ बड़े दे गई थी, जो मैंने और बेटियों ने खाए थे, बस एक तुम ही रह गए थे। लड़कियों को खाना खिला कर सो जाने दीजिए, फिर मैं आपको पाँच-सात बड़े बना दूँगी। मुझे तो कुछ खाना नहीं है, इसलिए ये बड़े तुम खाकर पानी पी लो तो पेट भर जाएगा।'

भोजन करके लड़कियाँ सो गई।

ब्राह्मणी ने चुपके-चुपके उठ कर चूल्हा जलाया। चूल्हे पर तवा रखकर कुछ बूंदें तेल की डालीं।

तब कलछी लेकर बड़े बनाने बैठी।

ज्योंही पहला बड़ा तवे पर पड़ा कि 'छम-छम-छम' हुआ।

छम-छम सुनकर एक लड़की जाग उठी और बोली : 'माँ मुझे छम बड़ा !'

माँ बोली : 'सोजा, सोजा ! यह ले एक बड़ा, खाकर सोजा। देखना कहीं दूसरी न जाग जाए !'

पहली बेटि बड़ा खाकर पानी पीकर सो गई।

माँ ने दूसरा बड़ा तवे पर डाला। फिर से वही 'छम-छम-छम' की आवाज हुई। दूसरी बेटि जाग कर बोली : 'माँ मुझे छम बड़ा !'

दूसरी बेटि बड़ा खाकर सो गई।

ब्राह्मणी ने ब्राह्मण की ओर देखा। ब्राह्मण बोला : 'होता है भई ! ये तो अपने ही बच्चे हैं न !'

तब ब्राह्मणी ने तीसरा बड़ा तवे पर रखा। फिर से वही छम-छम की आवाज !

छम-छम सुनकर फिर एक लड़की जागी और बोली : 'माँ मुझे छम बड़ा !'

माँ बोली : 'ले, तू कहाँ से जाग गई। ले बड़ा खाकर सो जाना। कहीं दूसरी न जाग जाए !'

तीन बड़े खतम हो गए थे। चार बड़ों का आटा बचा था।

ब्राह्मणी ने चौथा बड़ा डाला। फिर वही 'छम-छम'।

छम-छम सुनकर चौथी बेटि जाग उठी। माँ ने उसे भी बड़ा खिला कर सुला दिया।

फिर तो पाँचवीं बेटि जाग गई और पाँचवाँ बड़ा उसे खिलाना पड़ा, तब छठी जागी और छठा बड़ा उसे देना पड़ा, अंत में सातवीं जागी और सातवाँ बड़ा उसने खाया।

इतने में आटा समाप्त हो गया। ब्राह्मण-ब्राह्मणी ने बड़े नहीं खाए, सिर्फ पानी पीकर सो गए।

अलबत्ता, दोनों कहानियों की कथा-वस्तु में थोड़ा-सा फर्क है, परन्तु खास तौर पर यह बात स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है कि वाचन-योग्य कहानी और कहने-योग्य कहानी की दिशाओं का स्वरूप कैसा है !

कहानी को कहने-योग्य बनाने के लिए कथन-शैली की जरूरत के मुताबिक ही उसकी और कई बातों पर विचार करना पड़ता है। ये कई बातें कथन-शैली की सहयोगी हैं, इसमें कोई संदेह नहीं। अब जरा इस बात पर गौर करें कि ये कई बातें क्या हैं और ये कहानी को कहने-योग्य बनाने में किस तरह लाई जानी चाहिए।

सर्वप्रथम प्रत्येक कहानी को बारीकी से जांचनी चाहिए। कहानी भाषा, वस्तु और रचना की दृष्टि से कैसी है, यह हमें गौर से देखना चाहिए। इन अलग-अलग दृष्टियों से जांचते समय हमें मुख जबानी कही जाने वाली कहानी की भाषा, रचना तथा आदर्श का भली-भाँति ध्यान होना चाहिए।

मौखिक रूप से कही जाने वाली कहानी की भाषा सरल होनी चाहिए। यही खास चीज है। सीधी-सादी-सरल भाषा की व्याख्या नहीं की जा सकती, पर सीधी-सादी भाषा से हम क्या समझते हैं, इस बात को वर्णन के द्वारा बताया जा सकता है। सादी भाषा अर्थात् अति अलंकार, रूपक एवं वक्रोक्ति से विहीन भाषा। सादी भाषा उसे कहते हैं जो वक्ता के मुँह से अपने आप स्वाभाविक रूप से निकल कर श्रोता के कानों में समा जाए। सादी भाषा वह होती है जिसकी शब्द-परम्परा एक ही भाँति की होती है अर्थात् जिसमें न तो क्षण भर में कठिन शब्दों के झुंड आएँ, न पल भर में ग्रामीण शब्दों का ढेर आए। सादी भाषा वह होती है जिसे समझने में देर नहीं लगती, जो श्रोताओं की बौद्धिक-शक्ति के अनुरूप

होती है और जो श्रोताओं में कहानी का आनंद भली-भाँति उँडेल सके। मैंने कई बार देखा है कि कहानी सरल भाषा में कह पाने की जानकारी न होने से ही उसको सुनाना बेकार जाता है। कई लोग ऐसे भी देखे हैं जो सरल भाषा का प्रयोग ही नहीं कर सकते। वे भाषा के ऐसे ऊँचे शिखर पर रहते हैं कि उन्हें भाषा के सामान्य धरातल पर आना बहुत कठिन लगता है। लोकभाषा सामान्यतया सादी ही होती है। अगर हमें लोक भाषा का बराबर ज्ञान हो तो सादी-सरल भाषा की तलाश ही नहीं करनी पड़ती। शहर की स्त्री जिस प्रकार जमा-जमा कर बोलती है, उसकी वजह से जो वह कहना चाहती है, वह कम समझ में आता है, जबकि गाँव की भोली किसान-बाला धड़ाधड़ बोलती है तो उसे न जमा-जमा कर बोलने की जरूरत पड़ती, न शब्द ढूँढ़ने जाना पड़ता, न ही उसे कहीं रुकने का ढोंग करना पड़ता। उसका बोलना यों लगता है मानो सीधे-सपाट मैदान में कोई नदी बह रही हो। इतना ही अंतर शिष्ट भाषा वाली कहानी में और लोकभाषा वाली कहानी में रहता है। यहाँ एक सादी-सरल भाषा वाली कहानी का नमूना पर्याप्त होगा :

दला तिवाड़ी की कहानी*

एक था तिवाड़ी। उसका नाम था दला। दला तिवाड़ी की बहू को बैंगन बहुत भाते थे। एक दिन दला तिवाड़ी की बहू ने दला से कहा : 'तिवाड़ी जी, तिवाड़ी जी !'

तिवाड़ी बोला : 'क्या कहती है भट्टणीजी ?'

भट्टणी बोली : 'बैंगन खाने का मन है। बैंगन लाओ, बैंगन।'

तिवाड़ी बोला : 'ठीक।'

तिवाड़ी तो हाथ में एक बोदी-पुरानी लकड़ी लेकर ठक-ठक करता रवाना हुआ। वह नदी-किनारे एक बाड़ी में गया, पर बाड़ी में कोई नहीं था। तिवाड़ी ने सोचा : 'अब क्या करूँ ? बाड़ी का मालिक तो यहाँ है नहीं, तब भला बैंगन किससे माँगे जाएँ ?'

आखिरकार तिवाड़ी ने तय किया : 'बाड़ी का मालिक नहीं है तो न सही, बाड़ी तो है। क्यों न बाड़ी से पूछ लिया जाए ?'

* बालवार्ता भाग त्रीजो, श्री दक्षिणामूर्ति प्रकाशन मंदिर, भावनगर से उद्धृत

90 कथा-कहानी का शास्त्र

दला ने कहा : 'बाड़ी रे बाई, बाड़ी !'

बाड़ी नहीं बोली तो खुद जवाब देते हुए बोला : 'क्या कहते हो दला तिवाड़ी ?'

दला ने कहा : 'बैंगन ले लूँ दो-चार ?'

बाड़ी तब भी नहीं बोली तो उसके बदले खुद ने ही उत्तर दिया : 'ले ले न, भाई ! दस-बारह।'

दला तिवाड़ी बैंगन लेकर घर आया। दला और भट्टणी ने उनका भुरता बना कर खाया।

भट्टणी को बैंगन की जबर्दस्त चाट लग गई, इसलिए रोजाना तिवाड़ी चोरी करने के लिए बाड़ी में आने लगा।

बाड़ी में बैंगन कम होने लगे। बाड़ी के मालिक ने सोचा कि जरूर कोई चोर होना चाहिए। क्यों न उसे पकड़ा जाए ?

एक दिन शाम के समय बाड़ी का मालिक पेड़ के पीछे छिप कर खड़ा था। थोड़ी ही देर में दला तिवाड़ी आया और बोला : 'बाड़ी रे बाई, बाड़ी !'

बाड़ी के बजाय दला बोला : 'क्या कहते हो दला तिवाड़ी ?'

दला बोला : 'बैंगन ले लूँ दो-चार ?'

बाड़ी की जगह दला ने उत्तर दिया : 'ले ले न, भाई ! दस-बारह।'

दला तिवाड़ी ने झोली भर कर बैंगन ले लिए और ज्योंही जाने लगा त्योंही बाड़ी का मालिक पेड़ की ओट से बाहर निकल आया। उसने कहा : 'ठहरो, बाबा ! बैंगन किसकी इजाजत से लिये हैं ?'

तिवाड़ी बोला : 'किसकी इजाजत से क्या मतलब ? बाड़ी को पूछकर लिये हैं।'

मालिक ने कहा : 'पर बाड़ी क्या बोलती है ?'

दला बोला : 'बाड़ी नहीं बोलती, पर मैं बोला हूँ न।'

मालिक को बहुत गुस्सा आया। वह उसकी बाँह पकड़कर कुएं पर ले गया। दला तिवाड़ी की कमर में एक रस्सा बांध कर उसे कुएं में लटका दिया। तब मालिक, जिसका नाम वशराम भूवा था, बोला : 'कूवा रे भाई, कूवा ?'

कहानी को कहने योग्य कैसे बनाएँ ? 91

कुएँ के बदले वशराम भूवा खुद बोला : 'क्या कहते हो वशराम भूवा ?

तब वशराम ने कहा : 'डुबकियाँ लगा दूँ दो-चार ?'

वापिस कुएँ के बजाय वशराम बोला : 'लगा दे न भाई, दस-बारह ।'

तब तो बेचारे दला तिवाड़ी के नाक और मुँह में पानी भर गया । गिड़गिड़ाते हुए बोला : 'इस बार माफ़ कर दो भाई । मैं तुम्हारी गाय हूँ । आइन्दा कभी चोरी नहीं करूँगा ।

मालिक ने तिवाड़ी को बाहर निकाला और जाने दिया ।

आइन्दा के लिए तिवाड़ी चोरी करना भूल गया और भट्टणी बैंगन खाने का स्वाद हमेशा-हमेशा के लिए भूल गई ।

भाषा की दृष्टि से कई कहानियाँ इतनी सादी हैं कि उन्हें श्रृंगार की कभी जरूरत नहीं पड़ती । ऐसी कहानियाँ युगों-युगों से हमारे भीतर ज्यों की त्यों उतरी हुई हैं । वे वैसी की वैसी जोरदार और मीठी हैं । इनकी विशेषता इनकी सादगी में है । यही इनका फर्क है । 'जूँ की कहानी', 'जूँ बाई की कहानी', 'कौआ और मैना की कहानी', 'तोता और कौवे की कहानी' आदि ऐसी कहानियाँ हैं जो सादगी की उत्कृष्ट उदाहरण हैं ।

कहानियाँ चाहे जिस स्तर की हों, पर सादगी उनका अनिवार्य लक्षण है ।

सादगी की इतनी चर्चा के बाद हम कहानी की रचना पर विचार करें । रचना अर्थात् वस्तु-संकलन या कथा-वस्तु । अंग्रेजी में 'प्लॉट' शब्द इसका समानार्थी है । वस्तु-संकलन तो प्रत्येक कहानी में जरूरी है, पर मौलिक कही जाने वाली कहानी में तो इसका खास महत्त्व है । मौखिक रूप से कही जाने वाली कहानी का उद्देश्य मनुष्य को आनंद देना होता है । यह आनंद उस कहानी में एकाध स्थल पर विद्यमान भाव की पराकाष्ठा में छिपा रहता है । भावना द्वारा यथाक्रम और यथागति से व्यक्ति को उच्च शिखर तक ले जाकर तत्काल उस भावना की मूर्ति की झलक दिखाकर उससे उत्पन्न होने वाले आनंद से उसे सराबोर करना और फिर वापिस वांछित गति से व्यक्ति को भाव के उस शिखर से नीचे लाकर अपने रास्ते आगे बढ़ने देना कहानी कहने का उद्देश्य है । अगर कहानी का भाव एक बार भी तीर की तरह श्रोता को घायल न कर दे तो कहानी कहने का मतलब ही क्या है !

92 कथा-कहानी का शास्त्र

लेकिन श्रोताओं को इस तरह घायल करने की शक्ति कहानी के वस्तु-संकलन में निहित है । पूरी कहानी की कड़ियों एक-दूसरी के साथ इस तरह जुड़ी हुई होनी चाहिए कि वे साइकिल की जंजीर की तरह अपने आप गति पकड़ लें । प्रत्येक कहानी में कोई न कोई प्रधान रस होता है, प्रधान पात्र होता है तथा एकाध विशेष हेतु होता है । जो-जो बातें इन प्रधान तत्त्वों के बीच में बाधक बनती हैं, उनसे कहानी का वेग धीमा पड़ता है, मुख्य रस भंग होता है, मुख्य पात्र का चरित्र क्षीण होता है तथा कथा का उद्देश्य सिद्ध नहीं होता ।

प्रत्येक कहानी में एकाध प्रस्थान-बिन्दु होता है, प्रत्येक कहानी एकाध निशान अंकित करना चाहती है और प्रत्येक कहानी के प्रस्थान एवं निशान के बीच का सुस्पष्ट मार्ग प्रशस्त होता है । मर्यादा-विहीन, प्रस्थान एवं निशान से विहीन कथा की गोलीबारी बेकार जाती है । जिस कथा का प्रारम्भ और अंत निश्चित नहीं होता, जिसके बारे में यह पता नहीं होता कि उसकी आत्मा कहाँ है, उसके बारे में मेरी सुस्पष्ट मान्यता है कि उसमें वस्तु-संकलन का होना असंभव है । कथा के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए उसे प्राप्त करने हेतु कहानी में जिस सफलता से गुंथाई की जाती है, उसे ही वस्तु-संकलन कहा जा सकता है ।

रचना की दृष्टि से वह कहानी सम्पूर्ण होती है, जिसमें प्रामाणिकता, संतुलन तथा एकतानता का अविच्छिन्न सूत्र पिरोया हुआ रहता है । जिन-जिन कथाओं में रचना के ये दोष होते हैं, उन-उन कथाओं को इन दोषों से मुक्त किया ही जाना चाहिए । हम लोग कई बार ऐसी कहानियाँ बाँचते हैं अथवा सुनते हैं जिनमें बार-बार कहानियों से शाखाएँ फूटती हैं अथवा एक धागे से चार-पाँच धागे निकल आते हैं । बार-बार कहानी सुनाने वाला कुशल वार्ताकार हमें एक शाखा से दूसरी शाखा पर ले जाने अथवा अलग-अलग सूत्रों से मूल सूत्र को जोड़ने का पूरा प्रयत्न करता है तथा हमारी स्मरण-शक्ति व धैर्य की परीक्षा लेता है । ऐसी शाखा-प्रशाखा वाली कहानियों को हम कहने वाली कहानियों में स्वीकार नहीं सकते । अब्बल तो कहने-योग्य कहानी को एक ही लक्ष्य रखने का है और उसकी सफलता भी बराबर उस लक्ष्य को भेद देने में है; अर्थात् कहने-योग्य कहानियों का प्रवाह टेढ़ा-मेढ़ा न बह कर सीधा-सीधा बहना चाहिए । विषयांतरों से एक कहानी में दूसरी कहानी को चलाने से तथा कहानी के मुख्य-मुख्य तत्त्वों के साथ जुड़ी गौण बातों पर अधिक ध्यान दिए जाने से मूल रस को हानि पहुँचती है, यह निर्विवाद है । अतएव कही

कहानी को कहने योग्य कैसे बनाएँ ? 93

जाने योग्य कहानी की रचना तथा बाँचने योग्य कहानी की रचना में इतना फर्क स्वीकार करना चाहिए बेशक, पर श्रोताओं की स्मरण-शक्ति और ग्रहण-शक्ति जैसे-जैसे बढ़ती जाए वैसे-वैसे अधिक फली-फूली कहानी कही जाए तो कोई एतराज नहीं होगा।

वस्तु-संकलन में कहानी कितनी छोटी या लंबी हो, इसका विचार आ जाता है। कहानी को कहने योग्य बनाते समय हमें श्रोताओं का खयाल रखना पड़ता है। एक की एक कहानी उसकी कथा-वस्तु की सुन्दरता के कारण हम नितांत छोटे बच्चों से लेकर वृद्ध जनों तक समान रूप से कह सकते हैं; पर वृद्ध जनों के समक्ष उस कहानी का जितना विस्तार कर सकते हैं, उतना बालकों के समक्ष नहीं कर सकते। बालकों की ग्रहण-धारण शक्ति को ध्यान में रखते हुए जिस प्रकार अन्य बातों के विस्तार-संकोच का निर्णय लिया जाता है वैसे ही कहानी के बारे में भी लेना चाहिए। रामायण-महाभारत की कहानी बालकों को कहनी हो तो हमें बहुत संक्षेप में कहनी चाहिए। सागर जितनी गंभीर और आकाश जितनी विशाल इन कथाओं के बीच-बीच में आने वाली सरस कथाओं को हमें छोड़ देना चाहिए, अनेक मनमोहक, आकर्षक चित्रों एवं वर्णनों को त्याग देना चाहिए। रामायण में राम को बालकों के समक्ष बराबर उपस्थित रखते हुए कहानी के प्रवाह को चलाते रहना चाहिए; आदि-मध्य-अंत सर्वत्र राम दिखने चाहिए; कथा का सम्पूर्ण गठन राम के आस-पास होना चाहिए। इसी प्रकार महाभारत की कथा में पांडवों और कौरवों के किनारे-किनारे चलते हुए हमें इस महानद की परिक्रमा लगानी चाहिए। इसके आस-पास आने वाले तीर्थ-स्थलों को छोड़ देना चाहिए। लघुरामायण और लघुमहाभारत नामक पुस्तकें इसी विचार के अनुसार लिखी गई हैं। बाल-कादंबरी की योजना के पीछे भी यही विचार है। छोटे बच्चों को कह कर सुनाने योग्य रामायण भी बनाई जा सकती है। ऐसी संक्षिप्त रामायण का एक सरल-सादा नमूना यहाँ प्रस्तुत है। यह लघु कथा भी बालकों के लिए तो एक विशाल रामायण ही है, साथ ही उतनी ही सरस सिद्ध हुई है।

रामायण

दशरथ नाम का राजा था।

उसके तीन रानियाँ थीं।

एक का नाम कौशल्या, दूसरी का नाम सुमित्रा और तीसरी कैकेयी।

राम कौशल्या का पुत्र, लक्ष्मण-शत्रुघ्न सुमित्रा के और भरत कैकेयी का।

राम सबसे बड़ा था, उससे छोटा था भरत और उससे छोटे थे लक्ष्मण-शत्रुघ्न।

राम को कई तरह की विद्या आती थी। बाण चलाने में बहुत होशियार था। वह बहुत भला था। रोज माता-पिता का कहा मानता था।

राम की रानी का नाम सीता था।

जब राजा बूढ़े हुए तो उन्होंने राम को राजगद्दी पर बिठाने का फैसला किया।

इस बात का पता कैकेयी को लगा। उसे राम से ईर्ष्या थी। कहने लगी : 'राम गद्दी पर बैठेगा और मेरा भरत नहीं बैठेगा, क्यों?'

रानी राजा पर गुस्सा हुई। राजा ने उसे खुश करने की कोशिश की, पर वह नहीं मानी।

रानी बोली : 'आपने मुझे दो वचन दिये थे। आज मैं वे दोनों वचन माँगती हूँ। राम को वनवास भेजो और भरत को राजगद्दी दो।'

राजा को यह पसंद नहीं आया।

उसने वचन दे रखा था, इसलिए करता भी क्या ?

राम वनवास को गए। सीता देवी भी साथ में गई।

भाई लक्ष्मण भी साथ में गया।

राम, लक्ष्मण और सीता वन में झोंपड़ी बना कर रहे।

झोंपड़ी के पास एक दिन सुनहरी चमड़ी वाला सुन्दर हिरण आया।

सीता को वह बहुत अच्छा लगा।

वह राम से बोली : 'इस हिरण को मार कर लाओ तो मानूँ।'

राम धनुष-बाण लेकर भागे।

पीछे-पीछे लक्ष्मण भी गया।

झोंपड़ी में सीता अकेली रह गई।
 तभी लंका का राजा रावण आया।
 साधु का वेश पहन रखा था। हाथ में झोली थी और पैरों में खड़ाऊं।
 रावण बोला : 'सीताजी ! भिक्षा डालो।'
 सीताजी भिक्षा डालने आई कि रावण उन्हें उठाकर ले गया।
 रावण सीताजी को सीधे लंका ले गया।
 हिरण को मारकर राम-लक्ष्मण वापिस आए।
 झोंपड़ी में आकर देखा तो वहाँ कोई नहीं था।
 दोनों भाई सीताजी की खोज में निकले।
 नदी देखी, नाले देखे, जंगल देखे और पहाड़ भी देखे, पर सीताजी कहीं नहीं मिली।

ढूँढते-ढूँढते दोनों भाई बंदरों-भालुओं के देश में आए।
 वहाँ उनको पता लगा कि सीताजी को रावण उठा कर ले गया।
 राम, लक्ष्मण और बंदर लंका की तरफ चले।
 लंका नगरी समुद्र के बीचों-बीच थी।
 सीताजी का पता लगाने वहाँ कैसे पहुँचा जाए ?
 बंदरों में एक बंदर बहुत बलवान था, उसका नाम हनुमान था।
 हनुमान बोला : 'यह मेरा काम है।'
 हनुमान ने राम का नाम लेकर ऐसी छल्लाँग मारी कि एक ही छल्लाँग में इस किनारे से उस किनारे जा पहुँचा।
 हनुमानजी अशोक वाटिका में गए।
 वहाँ पेड़ के नीचे सीताजी बैठी थी।
 उनके चारों ओर काली-काली लंबे दाँतों वाली राक्षसियाँ बैठी थीं।
 हनुमानजी ने सीताजी को राम की अंगूठी दी। सीताजी और हनुमानजी जहाँ बातें करते थे वहाँ राक्षस आ पहुँचे।

96 कथा-कहानी का शास्त्र

वे बोले : 'पकड़ लो राम के इस दूत को। इसको बाँधो और आग जला दो।'

हनुमानजी की पूँछ पर कपड़े बाँधे, तेल डाला और आग लगा दी।
 हनुमानजी हुम्-हुम् करते गए और लोगों के छप्पर-मकान जला डाले।
 सारी लंका नगरी भड़-भड़ करती जलने लगी।
 हनुमानजी वापिस समुद्र में कूद कर इस किनारे आ गए।
 राम सेना लेकर रावण से लड़ने गए।
 राम-रावण के बीच जंगी लड़ाई हुई।
 राम ने राक्षसों को मार डाला।
 रावण के दस सिर और बीस हाथों को राम-लक्ष्मण ने काट डाला।
 तब राम, लक्ष्मण और सीताजी तीनों विमान में बैठकर अपने घर आए।
 राम का बनवास पूरा हुआ, इसलिए वे राजगद्दी पर बैठे।
 खायी-पीया और राज किया।

इस प्रकार कहानी को संक्षिप्त करने में कला की जरूरत पड़ती है। संक्षिप्त करने वाले को पहले तय करना पड़ता है कि कहानी में ऐसे कौनसे प्रसंग हैं, जिन्हें न लिया जाए तो कोई फर्क नहीं पड़ता। संक्षिप्तकर्ता को यह भी नक्की करना है कि कहानी को कहाँ-कहाँ संक्षिप्त किया जा सकता है और कहाँ-कहाँ कथा-प्रवाह क्षीण हो सकता है अतः उन्हें वैसा का वैसा रहने दिया जाए। तब उसे यही तय करना शेष रह जाता है कि किस तरह से कहानी को संक्षिप्त किया जाए। कहानी को संक्षिप्त करने की रीति के संबंध में मैं ब्रायंट के शब्दों को अगर उद्धृत करूँ तो कहानी कहने की कला में कुशलता का यश अर्जित करने वाली इस स्वर्गस्थ महिला के प्रति यथार्थ श्राद्ध होगा।

ब्रायंट लिखती हैं :

'व्यक्ति कोई लम्बा डग तभी भरता है जब उस डग में दो अथवा तीन से ज्यादा कदम समा सकें। जब कोई अनिवार्य स्पष्टीकरण अत्यधिक लम्बा हो अथवा वह कई-कई कड़ियों में पिरोया हुआ हो तो व्यक्ति या तो आरंभिक कथन द्वारा

कहानी को कहने योग्य कैसे बनाएँ ? 97

अथवा संभवतः किसी गौण टिप्पणी द्वारा उसे निपट देता है। अगर किसी विवरण के दो या दो से अधिक सूत्र हों तो व्यक्ति उनमें से किसी एक का चुनाव करता है और दूसरे सूत्र से संबंधित व्यौरों को हटाते हुए चुने हुए सूत्र पर ही दृढ़ता से कायम रहता है।*

जिस तरह लंबी कहानी को संक्षिप्त करने की जरूरत है उसी तरह संक्षिप्त को भी लंबा करने की जरूरत है। जैसे-जैसे लोगों की रुचि ऊँची होती जा रही है और उनकी साहित्य-संस्कृति विशुद्ध होती जा रही है वैसे-वैसे उनकी कहानियाँ संक्षिप्त होती जा रही हैं; इसी तरह जिन लोगों को कई-कई दिन और रात गरम हवा में बिना उद्यम किए रहना पड़ता है, उनकी कहानियाँ लंबी होती हैं जबकि उद्योगपरायण लोगों, जिन्हें समय गँवाने की रती भर फुरसत नहीं होती, की कहानियाँ छोटी होती हैं। किसी मौके पर कहानी को लंबी करके मठारते हुए कहने में आनंद आता है तो किसी अन्य मौके पर कहानी को संक्षिप्त भारवाही भाषा में कहने में खूबी देखने को मिलती है। आलसी गरासियों को लंबी कहानी में मजा आता है तो विद्वान लोगों को कहानी के सार तत्त्व में रुचि रहती है। कल्पना-प्रधान लोगों के लिए कहानी जितनी लंबी हो उतना ही अच्छा, जबकि वास्तविकता-प्रधान लोगों के लिए कहानी का अंत जितना जल्दी आए उतना ही अच्छा। कई लोगों को कहानी का पूरा होना अच्छा नहीं लगता, तो कई लोग कहानी सुनते-सुनते सो जाते हैं।

हमारे कथा भंडार में ऐसी एक राजा की कहानी है जिसे सुनते-सुनते लोग थकते ही नहीं। इस तरह के श्रोताओं को ध्यान में रखते हुए ही अलग-अलग देशों

* 'When two or more steps can be covered in a single stride, one makes the stride. When a necessary explanation is unduly long, or is woven into the story in too many stands, one disposes of it in an introductory statement or perhaps in a side remark. If there are two or more threads of narrative, one chooses among them, and holds strictly to the chosen, eliminating details which concern the others.'

में अलग-अलग समय में लंबी या छोटी कहानियाँ रची गई हैं। हमारे उपनिषदों की वार्ताएँ तो बहुत छोटी हैं, पर वे हैं अत्यंत गंभीर। हमारी पौराणिक कथाएँ बहुत लंबी हैं। लोगों को पुराणों की कहानियाँ इसीलिए नहीं रुचती क्योंकि वे लंबी हैं, जबकि उपनिषदों की छोटी कहानियों में लोगों को कोई मजा नहीं आता।

सामान्यतया बालक जैसे-जैसे उम्र के अनुसार बढ़ते जाते हैं वैसे-वैसे उन्हें लंबी-लंबी कहानियाँ पसंद आने लगती हैं। मैंने देखा है कि एक बार बालकों को लंबी कहानियों का स्वाद चखा दिया जाता है तो फिर जब तक उनकी ऊँची रुचि विकसित न की जाए, तब तक लंबी कहानियाँ ही सुनना चाहते हैं। विनय-मंदिर (हाई स्कूल) के बालकों को एक बार 'धर्मात्माओं के चरित्र' की लंबी-लंबी कहानियाँ सुनाने के बाद उन्हें छोटी-छोटी कहानियाँ सुनाना बहुत मुश्किल हो गया। छोटी आख्यायिकाएँ उन्हें बहुत छोटी और नीरस लगीं।

जरूरत पड़े तो हमें छोटी कहानियों को लंबी बनाने की कला सीख लेनी चाहिए। जिस व्यक्ति के पास कल्पना का परिबल होता है वह इस काम को सुंदर रीति से कर सकता है। लघु कहानियों के कौन-कौन से अंगों-उपांगों को विकसित करने से कहानी अखंड रहती हुई भी लंबी हो सकती है, यह समझ कल्पना से प्राप्त होती है। लघु कहानियों की पंक्तियों के बीच कई ऐसी पंक्तियाँ होती हैं जो मूल पंक्तियों के लिए शोभा रूपी होती हैं तथा जिनके गुप्त व सबल आधार को लेकर मूल पंक्तियाँ सशक्त हैं, यह पता लगाना कल्पना-शक्ति का काम है। मूल में तो कहानी कहने वाले में ही कल्पना-शक्ति का बल होना चाहिए। पर उससे भी ज्यादा जोर तो यह काम करने वाले व्यक्ति में अवश्य होना चाहिए। जो आदमी कहानी की कला को समझ सकता है, कहानी के वस्तु-संकलन को पी सकता है, कहानी की आत्मा जिसके हाथ में भूत की चोटी की तरह पकड़ी हुई रहती है, वही व्यक्ति कहानी में सच्चे रंग उँडेल सकता है। दूसरे शब्दों में कहें तो जिस प्रकार एक रूप-चित्रकार रेखांकन करके सम्पूर्ण चित्र को सुंदर रंगों में तैयार कर सकता है, उसी प्रकार लघु कहानी की कथावस्तु को रंगों के सम्मिश्रण से वांछित विस्तार देकर रोचक बनाने का काम वार्ता-चित्रकार करता है।

लघु कहानी को लंबी बनाने का एक दृष्टांत यहाँ प्रस्तुत है।

दयालु बुढ़िया^{*} (छोटी कहानी)

बरसा बरस रही थी। आधी रात का समय था।
फाटक बंद करके बुढ़िया माँ सो रही थी।
तभी किसी की पुकार सुनाई दी : 'ठंड के मारे ठिठुर रहा हूँ माई-बाप, कोई घर में रहने दोगे ?'
बुढ़िया को दया आई।
'आ बेटे, यहाँ सो जा।'
'बुढ़िया माँ, भगवान तेरा भला करे।'

दयालु बुढ़िया (छोटी से बड़ी बनाने का नमूना)

एक थी बुढ़िया।
वह बहुत दयालु थी।
बुढ़िया प्यासों को पानी पिलाती, भूखों को रोटी खिलाती और राह भटकों को रास्ता दिखाती।
अड़ैस-पड़ैस में कोई बीमार पड़े तो बुढ़िया माँ का दिल ऐसा कि रात-दिन उसके पलंग से हटे भी नहीं।
बुढ़िया इतनी भली थी कि मरतों को जिला दे। कोई रंक-भिखारी आता तो उसके घर से खाली हाथ नहीं जाता था। बूते के अनुसार जो कुछ घर में होता वह देती और उसे प्रसन्न करती।
चौमासा बीत रहा था।
आधी रात को एक बार जोरदार बरसात आई। परनालों में पानी समा नहीं रहा था।

^{*} मोटी बेन, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद से उद्धृत

बिजली झबाझब चमक रही थी और इस कदर कड़क रही थी कि मानो आकाश अब टूटा, तब टूटा।

हवा के झपाटे इतने तेज थे कि बस क्या कहें ?
किसी में हिम्मत नहीं थी कि ऐसी रात में बाहर निकल सके।
एक लड़का अपने गाँव का रास्ता भूल गया था।
वह बेचारा कभी से अपना मार्ग ढूँढ़ रहा था, पर अँधेरी बरसती रात में चारों ओर पानी ही पानी था। ऐसे में रास्ता कैसे सूझे ?
उसका सारा शरीर भीग गया था।
कभी का भीग रहा था इस कारण सारे शरीर में ठंडक बैठ गई थी। ठुड्डी कँपकँपा रही थी और दौल कितकिया रहे थे।

बेचारा मन ही मन रो रहा था कि 'जाऊँ तो कहाँ ?'
तभी एक झोंपड़ी पर उसकी नजर गई।
झोंपड़ी देखकर वह मन ही मन बोला : 'चलो, अब रास्ता मिल जाएगा !'
झोंपड़ी उस दयालु बुढ़िया की थी।
कौंपता-कौंपता वह लड़का झोंपड़ी के पास आया और हौले से बोला : 'मेरे माई-बाप ! क्या कोई झोंपड़ी में है ? हो तो जरा दरवाजा खोलो न ! मैं कभी से ठिठुर रहा हूँ। अगर रात बिताने दोगे तो भगवान आपका भला करेगा। अभी मैं बरसात में कहाँ जाऊँ ? रास्ता भटक गया हूँ माई-बाप !'

दयालु बुढ़िया झट से उठी।
दरवाजे की लकड़ी हटाकर झोंपड़ी का दरवाजा खोला।
लड़के को देखकर माजी बोली : 'आ बेटे, आ ! यह तेरा ही घर है। भगवान ने मुझे इतनी सुन्दर झोंपड़ी और किसके लिए दी है ! आ बेटे, यहाँ बैठ !'
लड़का : 'ओप्फो' कहते हुए वहाँ बैठ गया।
माजी ने उसे फटा-पुराना कपड़ा दिया और उसने अपने गीले कपड़े बदले।

तब माजी ने झट से आग सुलगाई और पोटली में से काली मिरच-सोंठ निकाल कर मजेदार उकाली बनाई।

कटोरा भरकर लड़के को देते हुए बुढ़िया ने कहा : 'ले बेटा, यह गरमागरम उकाली पी ले। अभी तेरी ठंडक उड़ जाएगी।'

लड़के को उकाली ऐसी मीठी लगी कि मजा आ गया।

तब बुढ़िया बोली : 'ले बेटा, यह मेरी रजाई ओढ़कर खाट में सो जा। मेरा तो पका शरीर है, इसलिए यह चढ़ ही काफी है।'

लड़का रात भर गरमागरम रजाई में लेटा रहा।

सवेरा हुआ तो लड़के ने बुढ़िया माँ से जाने की इजाजत माँगी।

बुढ़िया बोली : 'बेटे, सँभलकर जाना और शरीर का ध्यान रखना।'

लड़के की आँखों में आँसू छलक आए।

बुढ़िया की आँखें भी भर आईं।

लड़का मन ही मन कहता गया : 'हे भगवान! इस बुढ़िया का भला करना!'

वस्तु-संकलन के बारे में इतना कहने के पश्चात् वस्तु के संबंध में कुछ विचार करें।

'कहानी का चुनाव' और 'कहानियों का क्रम' शीर्षक प्रकरणों में प्रसंगवश इस बात का विवेचन हुआ है कि कहानी का कथ्य कैसा हो, फिर भी कहानी को कहने योग्य बनाने के लिए उसकी वस्तु पर थोड़ा-बहुत विचार करना आवश्यक है। कहानी को कहने योग्य बनाने के लिए जिस प्रकार हमें कहानी की भाषा और रचना में परिवर्तन करना पड़ता है, उसी प्रकार हमें कहानी के कथ्य में भी परिवर्तन कर लेना चाहिए। कहानी का कथ्य कई बार बालक के स्तरानुसार होते हुए भी उसमें गुंथा हुआ आदर्श बहुधा अव्यावहारिक और अनिष्टकर होता है। किसी युग में अपनी कहानी में जो आदर्श स्वीकार किया गया हो, उसी आदर्श को अपने युग में स्वीकार करने की हठ नहीं करनी चाहिए।

102 कथा-कहानी का शास्त्र

एक युग ने ऐसा माना कि भय और दंड के बगैर नीति संभव नहीं, अतः उस युग ने अपनी कथाओं में स्वर्ग और नरक की कल्पना की; अच्छे-भले लोगों को स्वर्ग दिया और दुष्ट लोगों को नरक में भेजा। जिस युग ने मन के धर्म की मिथ्या कल्पना करके शिक्षण की कुंजी इनाम-पुरस्कार को सौंपी, उस युग ने अपनी कथाओं में इनाम को अर्थात् बदले को महत्त्व दिया। जिस युग में अपनी सम्पत्ति में वृद्धि करना और दूसरों की सम्पत्ति को हड़प जाना बहादुरी माना जाता था, उस युग ने लुटेरों की बहादुरी की कथाएँ बड़े प्रेम से लिखीं। जिस युग में पति के मर जाने पर उसके पीछे जल मरना ही स्त्री का परम धर्म माना जाता था, उस युग ने सतियों की महिमा प्रकट करने वाली मोटी-मोटी कहानियाँ रचीं। जिस युग ने भोग-विलास को आदर्श माना था, उस युग ने अपनी कथाओं में भ्रूंगार को जगह-जगह भरा था। अगर हमें शंकराचार्य के युग में कहानी पढ़ने को मिले, तो उसमें हमें एकेश्वरवाद और मिथ्यावाद की महत्ता मिलेगी। बुद्ध की जातक कथाओं में अहिंसावाद ही अधिकतर देखने में आता है। श्री कृष्ण के युग की बातों में प्रेमकथाओं का भंडार मिलता है। क्राइस्ट के काल की कहानियों में स्थान-स्थान पर प्रेम व क्षमा के दर्शन होते हैं। सहजानंद स्वामी के 'वचनामृत' में आचार पर अधिक बल दिया गया है।

हमें भी अपने युग के तथा आगामी युग के आदर्श अपनी कहानियों में पिरोने की जरूरत है। कहानियों की कथा-वस्तु को वैसा का वैसा रखते हुए भी कुशल वार्ताकार दृष्टिबिन्दु को बदल सकता है। दृष्टिबिन्दु को बदलते ही कहानी के आदर्श की दिशा भी सहज ही बदल जाती है। कहानी का प्रमुख पात्र, जो कहानी में हजारों की गर्दन उड़ाकर श्रोताओं की वाहवाही लूटता है, उसी प्रमुख पात्र को किसी नई कहानी में हजारों प्राणों की रक्षा करके उतनी ही वाहवाही लूटनी चाहिए। किसी पुरानी कहानी का कोई प्रेमी नवयुवक किसी राजा की कुंवरी का अपहरण करके पराक्रम बताता है, उसके बजाय किसी नई कहानी में कोई प्रेमी नवयुवक किसी अबला को अत्याचारियों के चंगुल से छुड़ा कर अभयदान देने का नया पराक्रम स्थापित करता है तो यह नया आदर्श होगा। पुरानी कहानी में जहाँ युवक-युवतियाँ मिलते ही पति-पत्नी बनने को प्रेरित होते थे, यदि वहाँ उसके बजाय वे स्नेही मित्र बन सकें तो नए युग का नया आदर्श होगा। पहले की कहानियों में खून से सनी हुई तलवार वीरता की निशानी समझी जाती थी, तो नई कहानी में अगर वह खेत की फसल काटने का दंतिया या गंडासा बन जाती है तो यह कल्पना

कहानी को कहने योग्य कैसे बनाएँ ? 103

पुरानी होते हुए भी नए युग के अनुरूप सिद्ध होती है। पुराने त्यौहारों के ढाँचों में नए प्राणों का संचार हो रहा है, पुराने धर्मग्रंथों की जड़ में नए रहस्य ढूँढ़े जा रहे हैं, इसी भाँति पुरानी कहानियों के आदर्शों में नयी चेतना और नए प्राण भरने की आवश्यकता है।

कहानी को कहने योग्य बनाने पर तो अभी हमने विचार किया, पर साथ ही साथ हमें यह भी जानना चाहिए कि कहानी क्या है ?

कहानी की व्याख्या नहीं की जा सकती, पर हम अपने मन में तो जानते हैं कि कहानी क्या होती है। हमें ध्यान रहना चाहिए कि जो कुछ हम दूसरों को कहते-सुनाते हैं, वह हर हालत में कहानी नहीं होती। कहानी का एक गुण कहना-सुनाना है बेशक, लेकिन इसी एक गुण में कहानी की पूर्णता नहीं हो जाती। हर तरह की तुकबंदी को हम कविता नहीं मान लेते, इसी भाँति हर हकीकत के बयान को कहानी नहीं मान सकते। कहानी में कथन की योजना तो होनी ही चाहिए, पर इसके अलावा और भी अनेक तत्त्वों की इससे अपेक्षा रहती है। पात्र, प्रबंध, वस्तु-संकलन, रस, दृष्टि बिंदु, प्रवाह, कलात्मक प्रस्तुति, स्वाभाविकता और सरलता आदि लक्षण कहानी के पूर्ण आवश्यक लक्षण हैं। किसी कविता में कवित्व है या नहीं, इसे हम अनुभव से जान लेते हैं, इसी भाँति कोई कहानी कहानी है या नहीं, इसे भी हम अनुभव से जान लेते हैं। कहानी को कहने योग्य बनाने का श्रम करने से पहले कहानी-अकहानी का फर्क जान लेना चाहिए। चुटकले कहानी नहीं होते, इसी प्रकार दृष्टांत कहानी नहीं होते। 'एक चोर को जब घर के सब लोग जाग गए, तो भागना पड़ा'—यह कथन कहानी नहीं, इसी भाँति 'एक लड़का झगड़ाखोर था। एक दिन उसके मुँह में बिच्छू घुस गया'—इस कथन को भी कहानी नहीं कहा जा सकता। 'बाल सद्बोध कहानी शतक', 'बालकों की कहानी', 'नवरंगी बालक', और ऐसी ही अन्य बाल कहानियों की पुस्तकों में जो कहानियाँ संग्रहीत की गई हैं, वे कहानी नहीं हैं, 'देश-देशांतरों की सरस कहानियाँ' और 'देश-देशांतरों की मार्मिक कहानियाँ' भी कहानियाँ नहीं हैं, इस भाँति 'लघु कहानी शतक' संग्रह में ऐसी कई कहानियाँ हैं, जिन्हें कहानी नहीं कहा जा सकता। इन्हें कहानियाँ मान लें भले ही, पर ये कहानियाँ नहीं हैं। वैसे इन संग्रहों में कई कहानियाँ ऐसी हैं, जिन्हें हम कहानी मान सकते हैं।

'सौ अन्य लघु कहानियाँ' शीर्षक पुस्तक से दो नमूने यहाँ लिए जा रहे हैं :

रानी रमावे मोर*

समस्या

आठ काठ की पूतली, बांध्या नो सौ डोर।

राजा चाल्या चाकरी (तो) रानी रमावे मोर।।

इस समस्या का अर्थ चरखा है, क्योंकि उसे लकड़ी की आठ पाटकड़ियों से बनाया जाता है। उन पाटकड़ियों को डोरी से बाँधा जाता है। जब राजा चाकरी करने गया तो रानी ने मोर अर्थात् चरखा चलाना शुरू किया। पहले राजा की रानियों से लेकर सभी औरतें हर हालत में चरखा कातती रहती थीं। चरखा कातने का काम छोटा नहीं माना जाता था। चरखा कातना जिन्हें नहीं आता था, उनकी निंदा होती थी। गरीबों के लिए तो गुजारे का यही साधन था, पर धनवानों को भी खाली बैठने की बजाय एक तरह का धंधा करने को मिल जाता था।

एक और समस्या प्रचलित है :

भमे भमे पण भंवरा नहीं।

गले जनेऊ पण ब्राह्मण नहीं।।

इसका अर्थ भी चरखा है, क्योंकि वह घूमता रहता है, पर भँवरा नहीं है। इसी भाँति गले में जनेऊ (माल) होते हुए भी ब्राह्मण नहीं है।

मियाँ भाई चाकरी करने जब परदेस जाना चाहते हैं तो उनकी पत्नी कहती है कि 'मेरा बन्ना गाँव न जाना, गाँव न जाना, मैं चरखा-पूणी कात कर खिलाऊँगी।' परदेस जाने से दोनों अलग-अलग हो जाते हैं। इसके बजाय चरखा कात कर गुजारा करना और साथ-साथ रहना ज्यादा अच्छा है।

ताजियों के दिनों में दुला-दुला करते हुए घूमने वाले गाते हैं कि 'तुम कातो री बीवियो!' बीवियाँ उत्तर देती हैं : 'मैं क्या कातूँ? मेरे चरखा नहीं है, मेरे पूणी नहीं।' उत्तर में वह कहता है : 'ये चरखा लो, ये पूणी लो, तुम कातो री बीवियो!'

जमना माँ ने चोर भगाया*

एक बार मेरी भाभी हाथ लगाना न होने से घर के पिछवाड़े में लेटी थी।

* टुकड़ी बीजी सौ बातों, लेखक हरगोविंददास द्वारकादास कांडवाळा

मेरी माँ बिचले भाग में थी और हम सब अगले कमरे में थे। आधी रात बीतने पर बाड़े की ओर से पिछले दरवाजों का चूलिया उतार कर एक चोर अंदर घुसा और मेरी भाभी के पैरों के कड़े उतारने के लिए उन्हें ढीला करने लगा। तभी मेरी भाभी जाग उठी और 'चोर, चोर, चोर' की चीख-पुकार करने लगी। आवाज सुनते ही मेरी माताजी उठ खड़ी हुई और 'ठहर नासपीटे, तेरी खोपड़ी फोड़ती हूँ' कहते हुए बिचला दरवाजा झट से खोला। चोर घबरा उठा और पिछले दरवाजे से भाग खड़ा हुआ।

जमना माँ को इतने से ही संतोष नहीं हुआ। वे चोर के पीछे-पीछे बाड़े में भागीं, लेकिन चोर बाड़ लौंघ कर निकल भागा। जमना माँ ने वापिस आकर हम सब को जगाया। उजाली रात थी, इस कारण मेरे भैया चोर के पाँवों के निशान ढूँढ़ते हुए तालाब की तरफ गए, लेकिन तालाब के पास जाने पर आगे पैरों के निशान दिखाई नहीं दिए, और वे वापिस लौट आए।

मेरे भैया बोले : 'माँ, चोर की आवाज सुनते ही तुमने हमें जगाया क्यों नहीं? तुमको अकेले देखकर कहीं उसने मार डाला होता तो?' माँ ने उत्तर में कहा : 'तुमको उठाने आती, तब तक तो चोर कड़े निकाल कर भाग गया होता। मुझे चोर का डर नहीं था।'

स्त्रियाँ सामान्यतया स्वभाव से डरपोक होती हैं। चोर का नाम सुनते ही वे डरने लगती हैं। चोर का पीछा करने की तो उनमें हिम्मत ही कहाँ होती है? पर 'हिम्मत मरदाँ और मददे खुदा' वे भी साहस कर बैठती हैं।

'बाल सद्बोध कथा शतक' पुस्तक से वाचकों के लिए एक और नमूना यहाँ प्रस्तुत है :

जमीन की हद वाला खूँटा*

अमोलक नाम का जमींदार था। वह एक शानदार बँगले में रहता था। बँगले के आसपास बगीचा बना रखा था, जिसमें तरह-तरह के फलदार वृक्ष उगाए हुए थे।

* बाल सद्बोध कथा शतक, लेखक खंडुभाई मकनजी उमरवाडिया।

अमोलक बदमाश आदमी था। उसने अपने पड़ोसी के चरागाह की जमीन में से थोड़ी जमीन अपने बगीचे में दबा लेने के लिए एक रात चोरी से जमीन की हदवाले खूँटे को बहुत आगे खिसका दिया।

कई दिन बीते बाद, एक बार अमोलक एक पेड़ पर निसैनी टिककर फल तोड़ रहा था। दैवयोग से निसैनी फिसल गई और अमोलक पीठ के बल उसी खूँटे पर आ गिरा, जो उसने खिसकाया था। उसकी गरदन टूट गई।

अगर उसने वह खूँटा नहीं खिसकाया होता, तो नरम घास में गिरता और चोट भी कम लगती। पर ईश्वर तो यहीं का यहीं है। खुद अमोलक ने खूँटे को हटाय़ा था, और उसी खूँटे से उसकी गरदन टूटी। कई महीनों तक खाट पर पड़े रहने के बाद आखिरकार वह मर गया। कहावत है कि 'करे सो भरे।'

इतना लिखने के उपरांत साधारणतया अकहानी से तो सावधान रहने जितनी समझदारी कहानी कहने वालों में आ जानी चाहिए।

अब दो-एक दूसरी कहानियाँ लिख रहा हूँ। जिस तरह से स्वभाषा में लिखी गई कहानी को कहने योग्य बनाना पड़ता है उसी तरह परभाषा की कहानियों को भी कथन-योग्य बनाने की कला सीखने की जरूरत है। विविधता और विपुलता की दृष्टि से हमें परभाषा की कहानियों को स्वभाषा में रूपांतरित करना चाहिए। हमारी भाषा में अंग्रेजी की अनेक कहानियों का अनुवाद हो चुका है, पर वे अनुवाद अलग ढंग से हुए हैं।

अंग्रेजी में कहने-योग्य कहानियों के जो समूह हैं, उनमें से कुछेक कहानियाँ अभी हमारी भाषा में रूपांतरित हुई हैं, और वे भी उस तरह से नहीं हैं, जिस तरह हम चाहते हैं। अंग्रेजी भाषा से रूपांतरित करते हुए बहुत ध्यान देने की जरूरत है। भाषा बदल देने से हमारे स्वभाव को पसंद आए या हमें अनुकूल लगने लगे, ऐसा संभव नहीं। मैडम को गुजरात की स्त्री के कपड़े पहना देने से क्या वह गरबी-गुजरातन बन जाती है? भाषा के वस्त्र बदलने के साथ-साथ उसके रूप में, रंग में तथा प्राणों में फेरफार करने की जरूरत है। दूसरी भाषा की कहानियों से हमें वस्तु की दिशा मिलती है। उस वस्तु को हमारी प्रस्तुति में कैसे ढाला जाए कि वह शुद्ध स्वदेशी बन जाए, इतनी कुशलता हममें होनी चाहिए। जब मूल वस्तु एक

विचार रूप या आधार रूप रहे, तब तक कोई एतराज नहीं। संक्षेप में कहें तो कीड़े से जैसे भँवरा बन जाता है, वैसे ही परदेसी वस्तु स्वदेशी बन जानी चाहिए।

एक अंग्रेजी कहानी के फेरफार की कोशिश यहाँ प्रस्तुत है। मूल कहानी यों है :

The Bird of Shadows and the Sun Bird

Little Agatha lived in the days when castles were as common in the land as cottages are now, and when there were plenty of magicians always ready to help people out of difficulties.

One of the castles was Agatha's home. It stood on a hill and was surrounded by a dark wood. Agatha was a lonely little girl; she had no sisters or brothers to play with. She used to stand at the narrow window in the castle-tower and look out into the wood, and long to run about with other little girls. If you had seen her you would have thought her a very funny figure in her long gown reaching nearly to the ground, and a close cap over her curls.

In the evening Agatha could see very little when she stood at the window, but still she stood there and looked at the dark wood. It was then that the nightingale, the Bird of Shadows, sang to her; and this was what she liked better than anything else. She thought the nightingale's voice was lovely to her, and she wondered why it was so sad.

Evening after evening the lonely little girl looked out through the tower-window listening to the nightingale, till she felt that he was her friend. Sometimes she spoke to him.

'How much I should like to fly out of the window and be a nightingale too!' she said. 'Then we would play together in the wood, and I should have a voice like yours—ever so sweet and ever so sad.'

Sometimes she tried to sing, but she found her voice was not in the least like the nightingale's.

Every day she became more anxious to be a nightingale, until at last she thought about it always, and yet seemed no nearer to her wish. She hoped sometimes that her curls might turn to feathers; but after several weeks of wishing she saw that the curls were still made of yellow hair. She began to be afraid she would never be anything but a little girl.

One day she heard some of the maids talking together. They were speaking of the Wise Man, the magician, who lived in the dark cave on the side of the hill, and could do the most wonderful things. In fact they said, there was hardly anything he couldn't do; you had only to tell him what you wanted most and he could manage it for you.

'Perhaps he could turn me into a nightingale,' thought Agatha. 'I'll go and ask him, anyway.'

So while the maids were still talking she slipped out of the castle, and through the wood, and down the hill till she came to the dark cave. Her long frock caught on the brambles as she went, and her hands were a good deal scratched, and once she tripped and fell. But of course she did not mind anything of that kind, because she was thinking all the time about the nightingale.

Agatha walked into the cave without knocking and found the Magician at home. I dare say you know that all good Magicians have kind faces and long white beards. This one was a good Magician, so he had a kind face and a long white beard. Agatha was not in the least afraid of him. She told him at once why she had come.

'Please,' She said, 'I want to be a nightingale.'

'A nightingale, my dear ?' said the Wise Man. 'That is a very strange thing for you to want to be ! Don't you know that the nightingale is the Bird of Shadows, who sings by night and is very sad ?'

'I shouldn't mind that a bit,' said Agatha, 'If I could only fly about and sing with a beautiful voice.'

'Well then,' said the Wise Man, 'If you don't mind being sad, this is what you must do. Every day you must come here to see me, and each time you must bring me one of the pearls from your necklace.'

Agatha clasped her hands tightly round her neck, as if to save her pearls. She wore them in a chain, and the chain was so long that it passed twice round her neck and then fell in a loop that reached nearly to her waist.

'Oh, must it be my pearls ?' She asked eagerly. 'Would nothing else do instead ? I have some very nice things at home—really nice things. I have some lovely toys, and a gold chain, and a pony, and oh, lots of things. Wouldn't you like some of those ?'

'No,' said the Wise Man, 'I must have the pearls if you want to fly about and sing with a beautiful voice. Nothing else will do. For every pearl you bring me I will give you a feather from the nightingale, the Bird of Shadows.'

Agatha went home slowly, still clasping her pearls tightly in her hands. She liked them better than anything she had. She liked to watch the soft lights and shaded on them, and to think of the wonderful sea they came from. She did not feel sure that it was worth while to give them up even for the sake of being a bird and learning to sing.

But in the evening, when she stood by the tower-window as usual, and listened to the nightingale, she had no longer any doubts as to what she should do. To be able to sing like the nightingale was more important than anything else, she felt. And besides, if she were going to be turned into a bird the pearls would not be of much use to her in any case. She was pretty sure that nightingales never wore pearl necklaces.

The next day she slipped one of the pearls off her chain, and then she ran out of the castle and through the wood and down the hill, till she came to the dark cave.

The Wise Man smiled when he saw her.

'Here is,' she began, and then could say no more, because of the lump in her throat.

The Wise Man looked rather sorry for her but he took the pearl without speaking. Then he gave her the feather he had promised her, and she went away again. As she climbed the hill, and ran back through the wood to the castle, she tried to feel glad that she had the feather instead the pearl.

For a long, long time the same thing happened every day. Every day Agatha slipped a pearl off her chain and then ran out of the castle and through the wood and down the hill, till she came to the dark cave; and every day she brought home a little feather instead of her pearl.

The long loop of the chain grew shorter and shorter. The time came when it was not a long loop at all, but fitted closely round Agatha's neck as the other loops did. By and by the time came when the chain would only pass twice round her throat; then the time came when it would only go round her throat once; then

it grew too short to reach round her throat at all, and she was obliged to turn it into a bracelet. Then it became too short for her wrist, and she made it into a ring. And all the time her store of feathers was growing larger and larger, till it seemed to her that there were enough to make at least ten nightingales; but this was because she did not know how many feathers a nightingale likes to have. When there were only two pearls left, the Wise Man said to her :—

'When you bring me the last pearl you must bring me the feathers too; and after that you will be able to sing with a beautiful voice and to fly wherever you like.'

So when Agatha left the gloomy old castle for the last time she was not able to run through the wood, because she was carrying a big bag of feathers as well as the pearl.

She was feeling very much excited when she gave the bag of feathers to the wise man.

He put the last pearl carefully away with the others; and then he took the bag of feathers and emptied it over Agatha's head. As he did so he said some of the strange long words that Wise Men use.

And then—

Agatha was there no longer. There was nothing to be seen of her except a little heap of yellow curls, which the Wise Man kept to give to the next person who asked him for gold.

But out of the cave there flew a happy bird. It flew far, far up into the sky, singing with a beautiful voice. It flew higher up into the sky than any nightingale ever flew.

For the Wise Man had done more than he had promised. The bird's beautiful voice was not the voice of

the nightingale, the Bird of Shadows, but the voice of the lark, the Sun Bird, who is never sad.

उपर्युक्त मूल कहानी से गुजराती में रची गई कहानी इस प्रकार है :

बुलबुल और कमला

एक बड़ा-सा जंगल था। उसमें बहुत ऊँचा एक किला था। किले में एक सुंदर महल था। महल में एक लड़की रहती थी। उसका नाम था कमला। कमल के जैसी ही सुंदर उसकी आँखें थीं।

कमला गाने का मन करती पर उसे गाना नहीं आता था। आकाश में उड़ना तो उसे बहुत अच्छा लगता, पर पंखों के बिना वह भला कैसे उड़ती ?

रोजाना शाम को कमला किले की खिड़की पर बैठती और बुलबुल का इंतजार करती। चौद उगता और बुलबुल आता। किले के कंगूरे पर बैठता और चौदनी का गीत सुनाता।

कमला उसे एकटक देखती रहती। उसी का मीठा-मीठा गाना सुनती। सुनने में वह इस तरह खो जाती कि खाना-पीना भूल जाती। लेकिन फिर उसे नींद आने लगती, आँखों की पलकें मुँदने लगती और कमला को पलंग पर जाकर लेटना पड़ता।

कमला रोज बुलबुल का गीत सुनती और लंबी-लंबी गरम साँसें छोड़ती। मन ही मन कहती : 'हे भगवान ! तुमने मुझे बुलबुल जैसा सुंदर गीत गाना क्यों नहीं सिखाया ? हे भगवान, तुमने मुझे बुलबुल जैसे सुंदर पंख दिए होते तो कितना अच्छा होता ! हे प्रभु ! मुझे भी पंख दिए होते तो कितना मजा आता ? मैं तो रात-दिन उड़ती ही रहती। पेड़ पर बैठने के लिए नीचे ही नहीं उतरती।'

पूनम की रात थी। चौदनी का गीत गाता-गाता बुलबुल आया और कमला के पास बैठ गया। उसका गीत इतना मीठा था कि क्या कहने !

लेकिन कमला का दिल जल रहा था। उसने एक गरम साँस छोड़ी। उसे बुलबुल ने सुना और सोच में पड़ गया। उसका गाना बंद हो गया। धीरे-से उसने कमला से पूछा : 'बहन ! यों गरम साँसें क्यों ले रही हो ? आज यों बेचैन कैसे हो ?'

कमला बोली : 'भैया, मेरा दुःख कहने जैसा नहीं है। मेरा दुःख ऐसा-वैसा नहीं है। मेरे जैसा दुःख किसी को न हो !'

बुलबुल बोला : 'ऐसा भला कैसा दुःख है ? एक बार तू मुझे बता तो सही ! मैं तुम्हारा दुःख दूर करने की कोशिश करूँगा।'

कमला बोली : 'भैया ! देखो न, मुझे तुम्हारी तरह गाना भी नहीं आता। मेरे गले से एक भी गीत नहीं निकलता। आकाश में उड़ने को मेरा मन बहुत होता है, पर क्या करूँ ? मेरे पंख नहीं हैं। हाथ-पैरों की जगह मुझे पंख दिए होते तो मैं कितनी सुखी होती ? ये तेरे रंग-बिरंगे, सुंदर पंख मुझे बहुत अच्छे लगते हैं। मेरे सुनहले बालों का गुच्छा इनके सामने कुछ नहीं।'

बुलबुल बोला : 'लेकिन बहन ! इसमें इतनी ज्यादा दुःखी क्यों होती हो ? हम पक्षी हैं, इसलिए हमारे पंख होंगे ही। सुंदर पंख ही हमारी शोभा है। परमेश्वर ने हमें पक्षी बनाकर इतना सुंदर गला न दिया होता तो हमारा दुःख कितना बढ़ जाता, इसकी तो तुम कल्पना ही नहीं कर सकती।'

कमला बोली : 'लेकिन भैया ! मुझे तो पक्षी बनना बहुत अच्छा लगता है। मुझे यह मनुष्य का शरीर नहीं चाहिए। जिस शरीर से उड़ा नहीं जा सकता, जिस गले से बुलबुल जैसा गीत नहीं निकल सकता और जिस शरीर पर रंग-बिरंगे पंख न हों, वह भला किसे अच्छा लगेगा ?'

बुलबुल ने पूछा : 'तो क्या तुम पक्षी बनना चाहती हो ?'

कमला बोली : 'हाँ भैया ! वही। पक्षी बन जाऊँ तो चंद्रमा और सूरज तक उड़कर चली जाऊँ। आसमान में तो पलक झपकते चक्कर मार लूँ। एक-एक तारे का घर देखकर लौट आऊँ। बड़े-बड़े पहाड़ों की चोटी पर जाकर बैदूँ और वहाँ से धरती को देखूँ। बड़ी-बड़ी नदियाँ धरती पर दौड़ती हैं, मैं भी उनकी धारा के संग-संग हवा में दौड़ूँ। मछलियाँ नदी में नहाती हैं, मैं हवा में ही नहाती रहूँ और गीत गाने की तो बात ही क्या बताऊँ ! मेरा गला दुखने लग जाए तब भी मैं तो गाती रहूँ। तुम तो भैया, रात में ही गाते हो, मैं तो दिन और रात चुप होकर बैदूँ भी नहीं। मेरा दिलरुबा तो बजता ही रहे। चौदनी का गीत रात भर गाऊँ। सूरज के तेज का गीत उगेरूँ। बादल और हवा का गीत गाती रहूँ। और अपनी रंग-बिरंगी पाँखों का मैं क्या करूँ ? बताऊँ ? मेरे जैसे पाँखों विहीन बच्चों के हाथ में

एक-एक पाँख रखती आऊँ और उनको खुश कर दूँ। भैया, कोई रास्ता हो तो कृपया मुझे बताओ ताकि मैं तुम्हारे जैसी बन जाऊँ !'

बुलबुल बोला : 'अच्छी बात ! तुझे बुलबुल बनना है तो वूँ कर। यहाँ से दूर-दूर एक पहाड़ी है। उसमें एक गुफा है। वहाँ एक बूढ़ा जादूगर रहता है। तू उसके पास जाना। वह बहुत भला है। उसे बालक अच्छे लगते हैं। उसको आदमी से पक्षी और पक्षी से आदमी बनाना आता है। जाते ही पैरों में गिर कर कहना : 'बाबाजी, बाबाजी ! मुझे बुलबुल बनाओ। मैं आपको माँगोगे वही दूँगी।'

कमला खुश हो गई। उसे लगा : कब सवेरा हो और कब बाबाजी के पास जाए। सोच ही सोच में आधी रात तक उसे नींद नहीं आई। तड़के जाकर नींद आई। नींद में कमला को बुलबुल का ही सपना आया। सपने में मानो वह बुलबुल बन गई और आकाश में उड़ने लगी। तारों और चाँद-सूरज के देश में घूम आई तथा हवा के साथ खेल खेल आई।

सवेरा हुआ। सूरज भगवान उगे; दुनिया सोने की हो गई। कमला उठी। फटाफट नहा-धोकर दूध जैसी सफेद घाघरी और फूल जैसा हल्का पोलका पहना। गले में अपनी प्रिय मोती की माला डाली और अकेली जंगल में चल दी। रास्ते में गड्डे और पहाड़ियाँ आतीं तो वह गिर पड़ती, लेकिन फिर से खड़ी होकर चल देती। झाड़-झंखाड़ में घाघरी अटक कर फट जाती पर वह जरा भी नहीं रोई। एक बार को नदी में फिसल कर गिर पड़ी, लेकिन खड़ी होकर घाघरी सुखाई और आगे चल दी।

यों करते-करते कमला गुफा तक पहुँची। धूप फैल गई थी। सूरज भगवान आकाश के बीचों-बीच आ गए थे। कमला को बहुत भूख लगी। पर ज्यों ही वह गुफा के पास पहुँची कि उसकी थकान, धूप, भूख सब गायब हो गई। गुफा देखकर वह बहुत खुश हुई।

गुफा के मुँह के सामने एक बड़ी शिला रखी थी। कमला ने उसे हाँले-से एक तरफ हटया। भीतर देखा तो एक विशाल तलघर। उसमें एक दीया जल रहा था, मंद-मंद। कमला अंदर चल दी। जरा भी नहीं डरी, न उसकी छाती काँपी, न पैर ढीले पड़े।

और आगे गई तो वहाँ दो दीये जल रहे थे। दीये के पास वह जादूगर बैठा था। सफेद-सफेद रुई जैसी उसकी दाढ़ी थी। आँखों पर पुराना टूटा हुआ चश्मा

कहानी को कहने योग्य कैसे बनाएँ ? 115

था। चश्मे की एक डंडी टूटी हुई थी, जिसे डोरे से बाँधा हुआ था। हाथ में पीले मनकों की माला थी और बायीं ओर पंखों का विशाल ढेर पड़ा था। वे बुलबुल के पंख थे।

कमला को देखते ही बाबाजी बोले : 'कौन है इस समय मेरी गुफा में ?'

कमला बोली : 'बाबाजी ! यह तो मैं हूँ, आपकी बेटी कमला।'

कमला ने बाबाजी के चरणों में प्रणाम किया। बाबाजी ने आशीर्वाद दिया : 'बेटा, तेरा भला हो।'

तब कमला ने बाबाजी से कहा : 'बाबाजी ! मैं बुलबुल बनना चाहती हूँ। मुझे आकाश में उड़ना है और मीठे-मीठे गीत गाने हैं।'

बाबाजी बोले : 'हैं, हैं, कमला ! क्या तुझे मनुष्य न रह कर पक्षी बनना है ? यह तुझे क्या सूझी ? इसमें तेरी कैसी शोभा ?'

कमला ने कहा : 'बाबाजी, मुझे तो बुलबुल बनना है। मुझे गाना और उड़ना बहुत पसंद है। मैं किले में और महल में बैठी-बैठी थक गई हूँ। मुझे तो अब इस विशाल आकाश में उड़ने की ही इच्छा है।'

बाबाजी बोले : 'अच्छी बात ! तू मुझे यह अपनी मोती की माला दे दे। रोज एक-एक मोती लाना और उसके बदले एक-एक पंख ले जाना। जब तू सारे मोती दे देगी तो मैं तुझे बुलबुल बना दूँगा।'

कमला सोच में डूब गई।

बाबाजी बोले : 'यों मोती का लोभ करेगी तो बुलबुल नहीं बन सकेगी !'

कमला बोली : 'मोती का रंग तो मुझे अच्छा लगता है, पर इससे भी ज्यादा अच्छे मुझे बुलबुल के पंख लगते हैं। मुझे अब मोती से क्या लेना है ?'

कमला घर आई। दिल में खुशी समा नहीं रही थी। अब वह बुलबुल बनने वाली थी।

रोजाना कमला बाबाजी की गुफा में जाती, मोती बाबाजी को देती और एक पंख ले आती। यों करते-करते आखिरी दिन आया।

कमला बाबाजी के पास पंखों का ढेर लेकर चली। मन ही मन वह बोल भी रही थी : 'आहा ! आज वह जरूर बुलबुल बन जाएगी।'

कमला बाबाजी के पास आई।

बाबाजी ने पूछा : 'क्यों, क्या सोच रही हो ? पक्षी बनना है ?'

कमला ने उत्तर दिया : 'जी हाँ, मुझे पक्षी बनना है।'

बाबाजी ने कमला से कहा : 'ध्यान लगा।'

कमला ध्यान लगाने बैठी। तभी बाबाजी ने पंखों का ढेर कमला के ऊपर डाला और तब एक, दो, तीन बोले। बोलते ही कमला एक पक्षी बन गई, पर वह बुलबुल नहीं थी चंडोल थी। बाबाजी बोले : 'कमला ! मैंने तुझे चंडोल बनाया है। बुलबुल तो सिर्फ रात में ही गाता है, पर चंडोल दिन में भी गाता है और रात में भी। बुलबुल की राग मीठी होती है पर चंडोल की तो उससे भी ज्यादा मीठी होती है। बुलबुल के पंख सुंदर होते हैं पर चंडोल के पंख तो उससे भी सुंदर होते हैं। तू मुझे बहुत अच्छी लगती है, इसलिए मैंने तुझे चंडोल बना दिया।'

उड़ता-उड़ता चंडोल बुलबुल के पास आया। बुलबुल ने दौड़कर कमला से मुलाकात की। बोला : 'आ, आ ! मेरी प्यारी बहन कमला !'

कमला बोली : 'हट ! क्या मैं अब भी कमला हूँ ? देख तो सही, मैं अब सुंदर चंडोल बन गई।'

चंडोल दिन में गाए और रात को सोये। बुलबुल रात में गाए और दिन में सोये। पर सुबह-शाम दोनों मिलते और मीठी-मीठी बातें करते। दोनों पक्षी रोजाना मिलते और किले की खिड़की पर या कंगूरे पर बैठ कर गीत गाते।

अगर तुम उनको देखना चाहो तो कमला के किले के पास जाना और खिड़की के सामने देखना।

इसी तरह बंगला, पंजाबी, मराठी व अन्य स्वदेशी भाषाओं की कहानियों को गुजराती में रूपांतरित किया जाना चाहिए।

'पंजाब की कहानियाँ' नामक अंग्रेजी संग्रह में एक कहानी इस प्रकार है :

The Death and Burial of Poor Hen-sparrow

Once upon a time there lived a cock-sparrow and his wife, who were both growing old. But despite his

* Tales of the Punjab by. F.A. Steel.

years the cock-sparrow was a gay, festive old bird, who plumed himself upon his appearance, and was quite a ladies' man. So he cast his eyes on a lively young hen, and determined to marry her, for he was tired of his sober old wife. The wedding was a mighty grand affair, and everybody was as jolly and merry as could be, except of course the poor old wife, who crept away from all the noise and fun to sit disconsolately on a quiet branch just under a crow's nest, where she could be as melancholy as she liked without anybody poking fun at her.

Now while she sat there it began to rain, and after a while the drops, soaking through the crow's nest, came drip-dripping on to her feathers; she, however, was far too miserable to care, and sat there all huddled up and peepy till the shower was over. Now it so happened that the crow had used some scraps of dyed cloth in lining its nest, and as these became wet the colours ran, and dripping down on to the poor old hen-sparrow beneath, dyed her feathers until she was as gay as a peacock.

Fine feathers make fine birds, we all know, and she really looked quite spruce; so much so, that when she flew home, the new wife nearly burst with envy and asked her at once where she had found such a lovely dress.

'Easily enough,' replied the old wife : 'I just went into the dyer's vat.'

The bride instantly determined to go there also. She could not endure the notion of the old thing being better dressed than she was, so she flew off at once to the dyer's, and being in a great hurry, went pop into the middle of the vat, without waiting to see if it was hot or

cold. It turned out to be just scalding; consequently the poor thing was half boiled before she managed to scramble out. Meanwhile, the gay old cock, not finding his bride at home, flew about distractedly in search of her, and you may imagine what bitter tears he wept when he found her, half drowned and half boiled with her feathers all away, lying by the dyer's vat.

'What has happened ?' quoth he,

But the poor bedraggled thing could only gasp out feebly—

'The old wife was dyed—

The nasty old cat !

And I, the gay bride,

Fell into the vat !'

Whereupon the cock-sparrow took her up tenderly in his bill and flew away home with his precious burden. Now, just as he was crossing the big river in front of his house, the old hen-sparrow, in her gay dress, looked out of the window and when she saw her old husband bringing home his young bride in such a sorry plight she burst out laughing shrilly and called aloud, 'That is right ! right ! Remember what the song says—

'Old wives must scramble

through water and mud.

But young wives are married

dry-shed o'er the flood.'

This allusion so enraged her husband that he could not contain himself, but cried out, 'Hold your tongue, you shameless old cat !'

Of course when he opened his mouth to speak, the poor draggled bride fell out and going plump into the

कहानी को कहने योग्य कैसे बनाएँ ? 119

river, was drowned. Whereupon the cock-sparrow was so distrassed with grief that he picked of all his feather's until he was as bare as he ploughed field. Then going to a pipal tree, he sat all naked and forlon on the branches, sobbing and sighing.

'What has happened ?' cried the pipal tree, ghastr at the sight.

'Don't ask me !' wailed the cock-sparrow 'it isn't manners to ask questions when a body is in deep mourning.'

But the pipal would not be satisfied without an answer, so at last poor bereaved cock-sparrow replied :—

'The ugly hen painted.

By jealousy tainted,

The pretty hen died.

Lamenting his bride,

The cock, bald and bare,

Sobs loud in despair !'

On hearing this sad tale, the pipal became overwhelmed with grief, and declaring it must mourn also, shed all its leaves on the spot.

By and by a buffalo, coming in the heat of the day to rest in the shade of the pipal tree, was astonished to find nothing but bare twigs.

'What has happened ?' cried the buffalo; 'you were as green as possible yesterday ?'

'Don't ask me !' whimpered the pipal. 'Where are your manners ? Don't you know it isn't decent to ask questions when people are in mourning ?'

But the buffalo insisted on having an answer, so at last, with many sobs and sighs, the pipal replied :

'The ugly hen painted.

By jealousy tainted,

The pretty hen died.

Bewailing his bride,

The cock, bald and bare

Sobs loud in despair;

The pipal tree grieves

By shedding its leaves !'

'Oh dear me !' cried the buffalo. 'how very sad ! I really must mourn too !' So she immediately cast her horns, and began to weep and wail. After a while, becoming thirsty, she went to drink at the riverside.

'Goodness gracious ?' cried the river, 'What is the matter ? and what have you done with your horns.'

'How rude you are !' wept the buffalo. 'Can't you see I am in deep mourning ? and it isn't polite to ask questions.'

But the river persisted, until the buffalo, with many groans replied :—

'The ugly hen painted.

By jealousy tainted.

The pretty hen died.

Lamenting his bride,

The cock, bald and bare,

Sobs loud in despair:

The pipal tree grieves

By shedding its leaves;

The buffalo mourns

By casting her horns !'

'Dreadful !' cried the river, and wept so fast that its water became quite salt.

By and by a cuckoo, coming to bathe in the stream, called out, 'why, river ! what has happened ? you are as salt as tears ?'

'Don't ask me !' mourned the stream, 'it is too dreadful for words !'

Nevertheless, when the cuckoo would take no denial, the river replied :—

'The ugly hen painted.

By jealousy tainted,

The pretty hen died.

Lamenting his bride,

The cock, bald and bare,

Sobs loud in despair;

The pipal tree grieves

By shedding its leaves;

The buffalo mourns

By casting her horns;

The stream weeping fast,

Grows briny at last !'

'Oh dear ! oh dear me !' cried the cuckoo, 'how very very sad ! I must mourn too !' So it plucked out an eye, and going to a corn-merchant's shop, sat on the doorstep and wept.

'Why, little cuckoo ! what's the matter ?' cried Bhagtu the shopkeeper. 'You are generally the prettiest of birds, and today you are as dull as ditch-water !'

'Don't ask me !' snivelled the cuckoo. 'It is such terrible grief ! Such dreadful sorrow ! Such—such horrible pain !'

122 कथा-कहानी का शास्त्र

However, when Bhagtu persisted, the cuckoo wiping its one eye on its wing replied—

'The ugly hen painted.

By jealousy tainted,

The pretty hen died;

Lamenting his bride,

The cock, bald and bare,

Sobs loud in despair;

The pipal tree grieves

By shedding its leaves;

The buffalo mourns

By casting her horns;

The stream weeping fast,

Grows briny at last

The cuckoo with sighs

Blinds one of its eyes !'

'Bless my heart !' cries Bhagtu, 'but that is simply the most heart rendering tale, I ever heard in my life ! I must really mourn likewise !' Whereupon he wept and wailed, and beat his breast until he went completely out of his mind; and when the queen's maidservant came to buy of him, he gave her pepper instead of turmeric onion instead of garlic and wheat instead of pulse.

'Dear me, 'friend Bhagtu !' quoth the maid servant, 'Your wits are wool-gathering ! What's the matter ?'

'Don't please don't !' cried Bhagtu, 'I wish you wouldn't ask me, for I am trying to forget all about it. It is too dreadful-too, too terrible !'

At last, however, yielding to the maid's entreaties, he replied, with many sobs and tears :—

कहानी को कहने योग्य कैसे बनाएँ ? 123

'The ugly hen painted.
 By jealousy tainted,
 The pretty hen died.
 Lamenting his bride,
 The cock, bald and bare,
 Sobs loud in despair;
 The pipal tree grieves
 By shedding its leaves;
 The buffalo mourns
 By casting her horns;
 The stream, weeping fast,
 Grows briny at last;
 The cuckoo with sighs
 Blinds one of its eyes;
 Bhagtu's grief so intense is,
 He loses his senses !'

'How very sad !' exclaimed the maid-servant. 'I don't wonder at your distress; but it is always so in this miserable world !— everything goes wrong !'

Whereupon she fell to railing at everybody and everything in the word, until the queen said to her, 'What is the matter, my child ? What distresses you ?'

'Oh !' replied the maid servant, 'the old story ! Every one is miserable and I most of all ! Such dreadful news !:—

'The ugly hen painted.
 By jealousy tainted,
 The pretty hen died.
 Lamenting his bride,

The cock, bald and bare,
 Sobs loud in despair;
 The pipal tree grieves
 By shedding its leaves
 The buffalo mourns
 By casting her horns,
 The stream, weeping fast,
 Grows briny at last,
 The cuckoo with sighs
 Blinds one of its eyes;
 Bhagtu's grief so intense is,
 He loses his senses;
 The maid-servant wailing
 Has taken to railing !'

'Too true !' wept the queen, 'too true ! The world is a wale of tears ! There is a nothing for it but to try and forget !' Whereupon she set to work dancing away as hard as she could.

By and by in came the Prince, who, seeing her twirling about, said, 'Why mother ! what is the matter ?'

The Queen without stopping gasped out—

'The ugly hen painted.
 By jealousy tainted,
 The pretty hen died.
 Lamenting his bride,
 The cock, bald and bare,
 Sobs loud in despair;

The pipal tree grieves
 By shedding its leaves;
 The buffalo mourns
 By casting her horns;
 The stream, weeping fast,
 Grows briny at last;
 The cuckoo with sighs
 Blinds one of its eyes;
 Bhagtu's grief so intense is,
 He loses his senses;
 The maid servant wailing
 Has taken to railing;
 The queen, joy enhancing,
 Takes refuge in dancing !

'If that is your mourning, I'll mourn too !' cried the Prince, and seizing his tambourine, he began to thump on it with a will. Hearing the noise, King came in and asked what was the matter.

'This is the matter !' cried the Prince, drumming away with all his might:—
 The ugly hen painted.
 By jealousy tainted,
 The pretty hen died.
 Lamenting his bride,
 The cock, bald and bare,
 Sobs loud in despair;
 The pipal tree grieves
 By shedding its leaves;
 The buffalo mourns

By casting her horns;
 The stream, weeping fast,
 Grows briny at last;
 The cuckoo with sighs
 Blinds one of its eyes;
 Bhagtu's grief so intense is,
 He loses his senses;
 The maid servant wailing
 Has taken to railing;
 The queen, joy enhancing,
 Takes refuge in dancing;
 To aid the mirth coming
 The Prince begins drumming !

'Capital ! Capital !' Cried the King. 'that's the way to do it !' So, seizing his zither, he began to strum away like one possessed.

And as they danced, the King, the queen, the Prince and the maid servant sang :—

The ugly hen painted.
 By jealousy tainted,
 The pretty hen died;
 Bewailing his bride,
 The cock, bald and bare,
 Sobs loud in despair;
 The pipal tree grieves
 By shedding its leaves;
 The buffalo mourns
 By casting her horns;
 The stream weeping fast,

Grows briny at last;
 The cuckoo with sighs
 Blinds one of its eyes;
 Bhagtu's grief so intense is,
 He loses his senses;
 The maid servant wailing
 Has taken to railing;
 The queen, joy enhancing,
 Takes refuge in dancing;
 To aid the mirth coming,
 The Prince begins drumming;
 To join in it with her
 The king strums the zither !

So they danced and sang till they were tired, and
 that was how every one mourned poor cock-sparrow's
 pretty bride.

उपर्युक्त कहानी से मैंने गुजराती में कहानी यों लिखी :

मुर्गी की कहानी

एक बार एक बूढ़े मुर्गे ने जवान मुर्गी से विवाह किया। इससे उसकी पहली बूढ़ी मुर्गी बहुत नाराज हुई और रूठ कर नीम की एक डाल पर जा बैठी। इतने में पानी बरसा। जिस डाल पर मुर्गी बैठी थी, उसके ऊपर एक कौआ का घोंसला था। घोंसले में रंग-बिरंगे चिथड़े थे। बरसात के कारण चिथड़ों का रंगीन पानी मुर्गी पर गिरता रहा। इससे मुर्गी के पंख रंगीन हो गए।

अब तो बूढ़ी मुर्गी जवान दिखने लगी। हँसती-हँसती वह नवविवाहिता मुर्गी के पास पहुँची। नई मुर्गी ने बूढ़ी मुर्गी से पूछा : 'बहन ! तुमने इतने सुंदर पंख कैसे बनाए ?'

128 कथा-कहानी का शास्त्र

बूढ़ी मुर्गी नाराज तो थी ही, इसलिए बोली : 'मैंने तो रंगरेज की रंग से भरी कुंडी में डुबकी लगाई थी, इसी से मेरी पोंछें इतनी सुंदर हो गई। अगर तुमको भी अपने पंख इतने सुंदर बनाने हों तो रंग की कुंडी में डुबकी लगा लो।'

नई मुर्गी उड़कर रंगरेज की दुकान पर आई। वहाँ रंग की कुंडी भरी हुई थी। वह उसमें कूदी और डूबकर मर गई।

बेचारे मुर्गे का घर बरबाद हो गया था, इसलिए वह पीपल के पेड़ पर उदास होकर बैठ गया।

पीपल ने पूछा : 'मुर्गा भैया, मुर्गा भैया ! आज तुम इतने दुःखी होकर क्यों बैठे हो ?'

मुर्गा बोला : 'मुर्गी डूबी रंग में।
 मुर्गा शोक तरंग में।।'

पीपल ने कहा : 'अरे रे, यह तो बहुत दुःख की बात है। तुम्हारे इस दुःख में मैं अपने सब पत्ते झाड़ देता हूँ।' यों कहते हुए पीपल ने अपने सारे पत्ते झाड़ दिए।

थोड़ी देर में एक भैंस पीपल के नीचे आई।

भैंस बोली : 'पीपल भाई, पीपल भाई ! आज यों कैसे ? कल तो तुम्हारे शरीर पर बहुत सुंदर पत्ते थे, और आज एकाएक क्या हो गया ? एक भी पत्ता नहीं रहा ?'

पीपल बोला : 'बहन ! कहने जैसी बात नहीं है !'

भैंस ने पूछा : 'भैया ! कहो तो सही, आखिर बात क्या है ?'

पीपल बोला : 'मुर्गी डूबी रंग में।
 मुर्गा शोक तरंग में।।
 पीपल के सब पत्ते झड़े।'

भैंस बोली : 'अरे रे ! यह तो बड़े दुःख की बात है। इस दुःख में मैं भी अपने सींग तोड़ लूँगी।' यों कहते हुए भैंस ने अपने दोनों सींग तोड़ डाले।

कहानी को कहने योग्य कैसे बनाएँ ? 129

बाद में भैंस नदी पर पानी पीने गई।

नदी ने पूछा : 'भैंस बहन, भैंस बहन! तुम्हारे सींग कहाँ गए?'

भैंस बोली : 'अरी बहन। कुछ मत पूछो, कहने जैसी बात नहीं है।'

नदी बोली : 'बता तो बहन! ऐसी क्या बात हो गई?'

भैंस बोली :
'मुर्गी डूबी रंग में।
मुर्गा शोक तरंग में।।
पीपल के सब पत्ते झड़े।
भैंस के दोनों सींग उड़े।।'

नदी बोली : 'अरे रे! यह सुनकर तो मुझे बहुत दुःख हो रहा है। मैं भी अब सूख जाऊँगी।' यह कह कर नदी सूख गई।

तभी एक कोयल नदी पर पानी पीने आई।

कोयल ने पूछा : 'नदी बहन! यह तुमको क्या हो गया? कल तो तेरे दोनों सुंदर किनारों में पानी बह रहा था और आज तो पानी की एक भी बूंद नहीं रही?'

नदी बोली : 'अरी बहन! क्या कहूँ। कुछ कहने की बात नहीं है। गजब हो गया।'

कोयल बोली : 'बताओ तो सही बहन! तुम पर ऐसा कौनसा दुःख टूट पड़ा है?'

नदी ने कहा :
'मुर्गी डूबी रंग में।
मुर्गा शोक तरंग में।।
पीपल के सब पत्ते झड़े।
भैंस के दोनों सींग उड़े।।
नदी सूखकर बिन पानी।'

कोयल बोली : 'तब तो मुझे भी दुःख प्रकट करना चाहिए। मेरा मन करता है कि रो-रोकर अपनी आँखें फोड़ लूँ।'

यों कहती हुई कोयल इतने जोर से रोने लगी कि उसकी एक आँख फूट गई।

130 कथा-कहानी का शास्त्र

कानी कोयल वहाँ से उड़ कर एक बनिये की दुकान पर जा बैठी।

बनिया बोला : 'अरी कोयल! तेरी एक आँख को क्या हो गया?'

कोयल ने कहा : 'सेठ! क्या बताऊँ, कहने की बात नहीं है। बहुत बुरा हुआ है।'

बनिया बोला : 'बता तो सही, आखिर ऐसा क्या हुआ है?'

कोयल ने कहा :
'मुर्गी डूबी रंग में।
मुर्गा शोक तरंग में।।
पीपल के सब पत्ते झड़े।
भैंस के दोनों सींग उड़े।।
नदी सूखकर बिन पानी।
एक आँख से कोयल कानी।।'

यह सुनकर बनिया इतना दुःखी हुआ कि शोक ही शोक के मारे पागल हो गया। इसी बीच बनिये की दुकान पर कोई चीज खरीदने के लिए रानी की दासी का पति आया। बनिया पगलाया-सा वहाँ बैठा था। उसे देख कर उसने पूछा : 'सेठ! बावले की तरह क्यों बैठे हो? तबीयत तो ठीक है?'

बनिया बोला : 'अरे भैया, क्या कहूँ! बहुत बड़ा दुःख आ पड़ा है।'

दासी का पति बोला : 'ऐसा क्या दुःख आ पड़ा है, कुछ कहो तो!'

बनिया बोला :
'मुर्गी डूबी रंग में।
मुर्गा शोक तरंग में।।
पीपल के सब पत्ते झड़े।
भैंस के दोनों सींग उड़े।।
नदी सूखकर बिन पानी।
एक आँख से कोयल कानी।।
बनिया पागल हो गया।'

यह सुनकर दासी का पति इतना सोच में डूब गया कि सिर पकड़ कर बैठ गया। तभी दासी आई।

कहानी को कहने योग्य कैसे बनाएँ ? 131

दासी ने पूछा : 'मेरे भरतार ! इस तरह किस सोच में डूबे हो ?'

पति ने कहा : 'कहने जैसी बात नहीं है। जुलम हो गया।'

दासी ने पूछा : 'कुछ कहो तो ! कहे बिना क्या पता लगे ?'

दासी का पति बोला : 'मुर्गी डूबी रंग में ।
मुर्गा शोक तरंग में ।।
पीपल के सब पत्ते झड़े ।
भैंस के दोनों सींग उड़े ।।
नदी सूखकर बिन पानी ।
एक आँख से कोयल कानी ।।
बनिया पागल हो गया ।
दास सोच में खो गया ।।'

अपने पति की यह हालत देखकर दासी रोती-रोती रानी के पास गई।
दासी को रोते देखकर रानी ने पूछा : 'अरी, तू रोती-रोती कैसे आई ? क्या हुआ है तेरे घर में ?'

दासी बोली : 'रानी माँ ! कहने जैसी बात नहीं है। बहुत बुरा हुआ है।'

रानी ने पूछा : 'क्या हुआ ? झट—से बता ताकि कोई उपाय सोचें !'

दासी बोली : 'मुर्गी डूबी रंग में ।
मुर्गा शोक तरंग में ।।
पीपल के सब पत्ते झड़े ।
भैंस के दोनों सींग उड़े ।।
नदी सूखकर बिन पानी ।
एक आँख से कोयल कानी ।।
बनिया पागल हो गया ।
दास सोच में खो गया ।।
दासी रोने लग गई ।।'

रानी बोली : 'यह तो गजब हो गया। अब इस सारे दुःख को भूलने के लिए मुझे तो नाचना पड़ेगा। नाचने से सारा दुःख दूर हो जाएगा।' यह कहकर रानी नाचने लगी।

तभी वहाँ राजकुमार आ पहुँचा।

राजकुमार ने पूछा : 'माँ, माँ ! आप यह क्या करने लगीं ? आपको क्या हो गया है ?'

रानी बोली : 'बेटे ! बहुत भारी दुःख आ पड़ा है। उसको भुलाने के लिए मैंने नाचना शुरू कर दिया है।'

राजकुमार ने पूछा : 'माँ ! बताओ तो सही, आप पर ऐसा क्या दुःख आ पड़ा है ?'

रानी बोली : 'मुर्गी डूबी रंग में ।
मुर्गा शोक तरंग में ।।
पीपल के सब पत्ते झड़े ।
भैंस के दोनों सींग उड़े ।।
नदी सूखकर बिन पानी ।
एक आँख से कोयल कानी ।।
बनिया पागल हो गया ।
दास सोच में खो गया ।।
दासी रोने लग गई ।
रानी नाचने लग गई ।।'

राजकुमार बोला : 'अच्छा, यह बात है। तो सुनो, मैं अब ढोलक बजाता हूँ, ताकि नाच अच्छी तरह से हो।' यों कहकर राजकुमार ढोलक बजाने लगा।

इसी बीच राजा को पता चला तो वह भी आया। जब उसे पूरी बात मालूम हो गई तो वह खुद ताली बजाने लगा। फिर तो सब एक साथ बोलने लगे :

'मुर्गी डूबी रंग में ।
मुर्गा शोक तरंग में ।।'

कहानी को कहने योग्य कैसे बनाएँ ? 133

पीपल के सब पत्ते झड़े ।
 भैंस के दोनों सींग उड़े ।।
 नदी सूखकर बिन पानी ।
 एक आँख से कोयल कानी ।।
 बनिया पागल हो गया ।
 दास सोच में खो गया ।।
 दासी रोने लग गई ।
 रानी नाचने लग गई ।।
 कुँवर बजाता ढोलक बाजा ।
 ताली लगा पीटने राजा ।।'

बाँचने वाले महसूस करेंगे कि अंग्रेजी भाषा से कहानी का रूपांतरण करने की बजाय देसी भाषाओं से अनुवाद करना अधिक सरल है। 'बुद्धिया माँ की कहानी' पुस्तक की अनेक कहानियाँ बंगला से रूपांतरित की गई हैं। यह प्रयत्न अधिक सफल रहा है।

अब इस विषय को यहीं समाप्त करता हूँ। बस, इतना बताने की इजाजत चाहता हूँ कि जिन-जिन ग्रंथों से अवतरण लिए गए हैं, उन-उन ग्रंथों के लेखकों पर किसी भी तरह का निजी आक्षेप करने का या किसी तरह की स्तुति करने का मेरा आशय नहीं। इन अवतरणों पर जो कुछ लिखा गया है वह टीका-टिप्पणी अथवा समालोचना की दृष्टि से नहीं लिखा है। इस प्रकरण में इनके विषय में मुझे जो कुछ लिखना था, वही लिखा है, और वह शुद्ध भाव से लिखा है, ऐसी मेरी मान्यता है। बालकों के लिए इन सभी लेखकों की सेवा कम है, ऐसा कोई भी नहीं कह सकता। □

पाँचवाँ प्रकरण कहानी किस तरह कहें !

सभी पूर्व तैयारियों के बाद कहानी कहने वाला अपने श्रोता के सामने उपस्थित होता है। ऐसे में सवाल खड़ा होता है कि कहानी किस तरह कही जाए! बड़ा महत्त्वपूर्ण सवाल है यह !

कहानी के चयन में कुछ कमी हो, उसके क्रम में कुछ फेरफार हो, उसे कहने योग्य बनाने में पर्याप्त सफलता न मिली हो—ये सब बातें कुछ हद तक चल सकती हैं परन्तु किसी को कहानी कहना ही न आए तो कहानी कहने का काम पहले ही कदम पर अटक जाएगा। कुशल कहानी कहने वाले की जरा-जरा-सी कमियों पर सुनने वालों का ध्यान शायद ही जाए पर अकुशल व्यक्ति की कोई भी त्रुटि श्रोताओं के लिए असहनीय हो जाती है। वस्तुतः कहने की शैली पर ही कहानी कहने की सफलता निर्भर करती है। कहानी कहने वाले को यह बात अवश्य जाननी चाहिए कि यह विशेषता किस तत्त्व में विद्यमान रहती है।

लोगों की एक सामान्य धारणा होती है कि कहानी कहना तो बहुत आसान बात है, परन्तु मेरी अपनी मान्यता यह है कि अच्छे-अच्छे शिक्षकों तक को कहानी कहना नहीं आता। एकाध कहानी पढ़कर विद्यार्थियों को सुना दी, और हो गई कहानी, हो गया कहानी कहने का उद्देश्य पूरा, यही मानते हैं वे। यही कारण है कि जहाँ-जहाँ भी मैंने कहानी सुनाई जाती सुनी है वहीं-वहीं मुझे असंतोष हुआ है।

कई अध्यापकों की कहानियाँ भली-भाँति पढ़ी हुई नहीं होतीं। जिससे वे कहानी कहते-कहते बीच में भूल जाते हैं। कई अध्यापकों द्वारा उनकी चुनी हुई कहानियाँ नीरस तथा श्रोताओं के स्वभाव के प्रतिकूल होती हैं। कई अध्यापकों की कहानी सुनाने की शैली शुष्क और भावहीन होती है। कोई अध्यापक अत्यधिक भाव प्रकट करते हुए कहानी कहता है तो किसी के चेहरे पर कहानी का एक भी भाव प्रकट नहीं होता। कोई अध्यापक कहानी को अनुलेखन लिखने की तरह कहता है तो कोई भाषण के विषय की भाँति बोलता है। कई अध्यापक कहानी को रसात्मक बनाने के लिए चित्र अथवा मॉडल दिखाने के प्रयोग करते हैं। इन तमाम

कारणों से कहानी कहने और सुनने में शिथिलता आती है, कक्षा का वातावरण शुष्क हो जाता है : कई बार तो अनुशासन और शांति को उत्तेजन मिलने के बजाय अव्यवस्था और अशांति को जन्म मिलता है। ऐसी स्थिति में कहानी जमती नहीं, सुनने वालों के समक्ष कहानी का कला-क्षेत्र प्रकट नहीं होता और कहानी के द्वारा कल्पना, सर्जनशक्ति और भाषा-संस्कार आदि विकसित करने का उद्देश्य निष्फल हो जाता है। कहना न होगा कि कहानी कहने वाले को सफलता अर्जित करने के लिए उपर्युक्त दोषों से मुक्ति पा लेनी चाहिए। यहाँ मैं उन बातों का उल्लेख करना समीचीन समझता हूँ जो कहानी कहने वालों को अपने ध्यान में रखनी चाहिए।

शिक्षकों को पहली बात यह समझनी है कि कहानी एक कला है और कहानी कहना भी एक कला है। किसी भी कला को उसके सम्पूर्ण स्वरूप के साथ दूसरों के समक्ष प्रस्तुत करना और उनको उसका भोक्ता बनाना बहुत मुश्किल काम है। प्रत्येक कहानी में कोई-न-कोई विशिष्टता समाई हुई होती है। कोई कहानी हास्य रस की होती है तो कोई शोक-प्रधान; किसी में गूढ़ विनोद होता है तो किसी में गूढ़ निराशा। कुछ कहानियाँ ऐसी होती हैं कि जिनमें बोध के सिवा और कुछ नहीं होता तो कुछ ऊपर-ऊपर से ही अर्थविहीन होती हैं। कई कहानियाँ अद्भुत चमत्कारों की खान जैसी होती हैं तो कई यथार्थपरक। कई कहानियाँ परियों की भभक-भरी कल्पना में रंगी होती हैं, जबकि कई कल्पनाविहीन नितांत शुष्क।

सभी कहानियाँ बहुरंगी, विविध वेश, भावों और रस वाली होती हैं। कहानियों में विद्यमान इन तमाम विशिष्टताओं को श्रोताओं में उँडेल देने का काम कहानी सुनाने वाले का है। उसे कहानी का प्रत्येक भाव तथा उसकी वस्तु श्रोताओं को अर्जित करानी है। कहानी के मूल में जो भाव निहित है, उसे हूबहू अपने कथन में खड़ा करके श्रोताओं के हृदय में सम्प्रेषित करना कहानी कहने वाले का काम है। ऐसा कार्य करने वाले व्यक्ति की तैयारी सुन्दर ही होनी चाहिए। यह कलात्मक काम है अतः कहानी कहने वाले के अंतःकरण में कला की आत्मा स्फुरित होनी चाहिए।

प्रत्येक कलाकृति के दो भाग होते हैं, वैसे ही कहानी के भी दो विभाग किए जा सकते हैं। रंग, माप, समनुरूपता आदि चित्र कला के शिल्प पक्ष हैं तो भाव प्रदर्शन और विचार प्रस्फुटन कला पक्ष। स्वर, ताल आदि संगीत के शिल्प पक्ष हैं तो गायन कला पक्ष।

इस प्रकार कहानी में अमुक विचार अथवा अमुक भाग को आगे रखना, जिसमें श्रोताओं को तल्लीन किया जाए, इसका कला विभाग है तथा इस भाव या विचार को संतुलित रखने, उसे उसके पूर्ण स्वरूप में विकसित करने तथा यथाकाल विकसित करने की जो तैयारी है, वह इसका शिल्प पक्ष है। कला प्रमुख है, कलाकारी गौण। फिर भी कलाकारी की अवगणना करने में जोखिम है। उसका कारण यह है कि कारीगरी की देह के द्वारा हमें कला की आत्मा के दर्शन कराने हैं। कहानी कहने में शब्दों का चयन, शब्द संतुलन, शब्दों की यथार्थता जिस प्रकार कहानी का कारीगरी विभाग है, उसी प्रकार किस वस्तु को किस जगह रखें, किस रस को कितना विकास दें, विषयान्तर को कितना स्थान दें आदि बातें कला पक्ष में समाहित हैं। जिस प्रकार कलात्मक चित्र साधारण तौर पर देखने में सुन्दर लगता है, फिर भी यदि उसमें कारीगरी की कमी-बेशी लगे तो चित्रकार को उसमें न्यूनता नजर आती है, उसी प्रकार कहानी कला के प्रसंग में भले ही कोई कहानी सुनने में अच्छी लगे, परन्तु कारीगरी की न्यूनाधिकता की वजह से इसमें कुछ अधूरापन है, कुछ छूट गया है ऐसा कहानी के भोक्ता को लगे बिना रह ही नहीं सकता। कहानी कहने वाले को हमेशा कहानी इस ढंग से सुनानी चाहिए कि कहानी के मूल विचार को विकसित करने के लिए वह अन्य संदर्भों को आवश्यकतानुसार एवं यथासमय व्यवहार में लाए। विषयान्तर होना अथवा गौण वस्तु को विशेष महत्त्व देना कहानी को बेसुरा बनाने जैसा कृत्य है।

कई कहानी कहने वालों को सभी रसों का परिपाक करना आता है अतः वे लोग एक ही कहानी में मुख्य और आनुषांगिक सभी रसों की छटा दिखाने हेतु ललचा जाते हैं। इससे कहानी की काया बेडौल हो जाती है, उसका दायां हाथ पतला रह जाता है तो बायां हाथ सूज जाता है। कहानी कहने वाले का दायित्व है कि वह कहानी की काया को सुडौल-सुगठित और समनुपातिक रखे। जिस कहानी कहने वाले को कथा के केन्द्रीय स्थल का ज्ञान होता है, वह जहाँ से चाहे कहानी शुरू कर सकता है, क्योंकि केन्द्र में खड़ा-खड़ा वह कहानी की त्रिज्या को देखने की दृष्टि रखता है। इसी भाँति कहानी की केन्द्रीय आत्मा को जानने वाला व्यक्ति कहानी कहने में कहानी की त्रिज्या का ज्ञान रखता है।

कहानी को ज्वार के अंतिम चरण तक ले जाने वाला वार्ताकार अगर भाटे की जानकारी नहीं रखता तो उसकी कहानी निष्फल जाती है। वस्तुतः उसकी

वास्तविक विशेषता इसी में है कि श्रोता को कहानी के ज्वार के अंतिम सिरे पर खड़ा रखे तथा थोड़ी देर वहीं रोके रखकर यह दिखाए कि ज्वार कितना चढ़ाव पर है। तभी व्यक्ति को भाटे की स्वाभाविकता का पता चलता है।

कई वार्ताकारों की ऐसी दशा हो जाती है कि बिस्तर बिछाते-बिछाते सवेरा कर डालते हैं। वे कहानी कहते ही जाते हैं, वह चरम बिन्दु तक पहुँचने का नाम ही नहीं लेती। न उन्हें कहानी की पराकाष्ठा का ध्यान रहता, न वे पाठकों को बाँधे रह सकते। परिणाम यह आता है कि कहानी कहने और सुनने वाले दोनों को ऐसा लगता है कि कथा अभी तक अधूरी है और कथा में जो कुछ कहा जाना था, वह तो शेष ही रह गया। वार्ताकार को निशाने पर तीर मारना आना चाहिए। यह काम कला का है।

कहानी कहने में सफलता प्राप्त करने के लिए कहानी कहने वाले को कहानी की आत्मा को अपनी आत्मा में उतारना चाहिए। जिसे स्वयं कहानी कहने में आनंद नहीं आता, जो स्वयं उसमें तल्लीन नहीं हो पाता, जो स्वयं उसके रस में सराबोर नहीं हो पाता वह दूसरों को उसके रस में अवगाहन नहीं करा सकता। कहानी पढ़ते-पढ़ते जिसके समक्ष कहानी का चित्र खड़ा हो जाता है, जिसके अंगों में कहानी की चपलता अधीरता पैदा कर देती है, जिसके चेहरे पर कहानी का रस प्रत्यक्षतः छलकने लगता है, संक्षेप में, जिसे कहानी जीवंत प्रतीत होती है, वही व्यक्ति वस्तुतः कहानी की आत्मा को पहचान पाता है।

कहानी पसंद आना और उसकी आत्मा के साथ तदाकार हो जाना, ये दो अलग-अलग स्थितियाँ हैं। अच्छी कहानी होने के कारण वह पसंद आनी ही चाहिए, ऐसी बात नहीं है। सभी कहानियों की आत्मा को पहचान पाना कठिन काम है। उसमें भी मनुष्य-स्वभाव की भिन्न-भिन्न रुचियों का अपना महत्व होता है। कई लोगों को भयानक रस पसंद आता है तो कई ऐसी रस वाली कहानियाँ कतई पसंद नहीं करते। कई ठंडे और क्रियारहित स्वभाव वाले मनुष्यों को दौड़धूप और मारपीट की कहानियाँ पसंद नहीं आती तो कई क्रियाओं (एक्शन) से भरपूर कहानियों के रसिया होते हैं। कई विनोदी स्वभाव के लोगों को विनोद वार्ताओं का शौक होता है तो कई मातमी स्वभाव के लोगों को वैसी ही कहानियाँ अच्छी लगती हैं। प्रत्येक वार्ताकार को यह जान लेना चाहिए कि श्रोताओं को कौन-कौन से रसों की कहानियाँ पसन्द आती हैं। बहादुर वार्ताकार को वणिक-बुद्धि की चतुराई वाली

कहानियाँ पसंद नहीं आतीं। कभी-कभी विनोदी स्वभाव वाला वार्ताकार शोक-प्रधान अथवा भयानक रस की कहानी सुनाने की भूल कर बैठता है। व्यवहार कुशल लोग तात्विक कहानियों को व्यावहारिक वार्ताओं का रंग देकर उनके तत्व को विकृत कर देते हैं। कई बार कहानी कहने और सुनने वाले कहानी में इसी वजह से आनंद नहीं ले पाते क्योंकि कहानी कहने वाला व्यक्ति अपने स्वभावानुकूल कहानी का चयन नहीं कर पाता।

महिलाएँ सामान्यतया अमुक प्रकार की कहानियाँ ही कह सकती हैं तो पुरुष अमुक कहानियों की ही छटा बिखेर सकते हैं। भाट-चारणों के मुँह से अमुक वार्ताएँ सुनने का ही मजा आता है तो साधुओं की कहानियाँ भिन्न प्रकार की होती हैं। फिर गाँवों और शहरों की कहानियों में अंतर रहता ही है। अलग-अलग उम्र के लोगों के मुँह से अलग-अलग किस्म की कहानियाँ ही खिलती हैं। ये तमाम बातें कहानी कहने वाले व्यक्ति को दृष्टि में रखनी चाहिए।

पूर्ण वार्ताकार बन पाना कठिन है। हाँ, प्रत्येक व्यक्ति अपनी मर्यादा के भीतर वार्ताकार बन सकता है। जो आदमी स्वयं कहानी का रसास्वादन करता है वही औरों को कहानी का आस्वादन करा सकता है। कई बार ऐसा होता है कि हम किसी चित्र को महज देख कर जब उसके पास से गुजर जाते हैं जो उस चित्र के मर्म को, उसके सौन्दर्य और उसकी विशेषता को जान नहीं पाते। इसी भाँति अगर हम सतही दृष्टि से किसी कहानी को मात्र आँखों से निकाल लेंगे तो उसकी आत्मा को पकड़ पाने से वंचित रह जाएँगे। कहानी की आत्मा उसके शीर्षक में या शुरू के परिच्छेदों में तो समाई हुई होती नहीं। कई कहानियाँ नारियल जैसी होती हैं। जब तक उनकी जोटी और टोपी को नहीं हटाएँगे, तब तक हमें उनकी मृदु-मधुर गिरी खाने को नहीं मिलेगी। कई कहानियाँ ऊपरी स्तर पर सुन्दर होती हैं लेकिन उनकी आंतरिक घटना एवं आत्मा क्षुद्र और निस्तेज होती है। वार्ताकार को अनेकानेक कहानियों से मैत्री स्थापित करनी पड़ती है और अनेकानेक कहानियाँ हृदयंगम करनी पड़ती हैं। कई कहानियाँ उसे छोड़नी पड़ती हैं, कइयों को प्राचीन हथियारों की भाँति तोषागार में संभाल कर रखना पड़ता है तो कई कहानियाँ अत्यंत ममतापूर्वक रमाने-खेलाने योग्य होती हैं।

कहानी कहते-कहते कोई चाहे तो सच्चा कलाकार बन सकता है। पर इसके लिए कहानियाँ कहने में उसकी अपनी सफलता जरूरी है। किसी चित्र को बार-बार

देखने पर उसमें अन्तर्निहित भाव हमारे समक्ष स्वतः अभिव्यक्त हो जाते हैं। वैसे ही कहानी को बार-बार पढ़ने से उसका गूढ़ार्थ स्वतः हमारी समझ में आ जाता है। प्रत्येक चितेरा अपनी चित्रकृति में एक विचार को केन्द्र में रखता है और उसी के चतुर्दिक अपने चित्र की सृष्टि करता है। प्रत्येक चित्र के मूल में एक भाव और कल्पना विद्यमान रहती है। इसी भाँति प्रत्येक कहानी में एक मुख्य विचार और विशिष्ट कल्पना व्याप्त रहती है। हमारी खास खूबी इसी में है कि उस विचार और कल्पना को खोज निकालें। ज्योंही वार्ताकार के हाथ में विचार तत्त्व आ जाता है, त्योंही सम्पूर्ण कथा उसके लिए एक खिलौना बन जाती है अथवा यों कहें कि वह वार्ताकार की चेरी बन जाती है।

वार्ताकार को अपनी कहानी भली-भाँति सहेजनी चाहिए। यह एक जानी-समझी बात है, पर ध्यान देने योग्य है। कई वार्ताकार आधे रास्ते जाकर कहानी रोक देते हैं और सोचने लग जाते हैं कि आगे क्या हुआ था। कई वार्ताकार शुरू का अंश भूल जाते हैं और आगे का अंश कहने लग जाते हैं। इस तरह शुरू का हिस्सा अंत में मिला देते हैं। कई लोग नामों में गड़बड़ी कर देते हैं। बहुत से वार्ताकार कहानी की मुख्य वस्तु में से कुछ न कुछ बातें भूल जाते हैं और बाद में कुछ जोड़-जाड़ कर मेल मिलाते हैं। कइयों के साथ ऐसी घटना घटती है कि कहानी भूल जाने से अथवा बहुत सारी कहानियाँ एक साथ याद आने से वे एक कहानी में दूसरी कहानी घुसा देते हैं और आगे बढ़ने पर जब गुथी उलझ जाती है तो वे दुःखी हो जाते हैं। इन तमाम कारणों से कहानी सुनाना एकदम नीरस हो जाता है तथा श्रोतागण वार्ताकार में श्रद्धा खो देते हैं। उनका उत्साह समाप्त हो जाता है। इसीलिए ऊपर कहा गया है कि प्रत्येक वार्ताकार को अपनी कहानी भली-भाँति संभालनी चाहिए। उसे इस हद तक अपनी कहानी को समझ लेना चाहिए कि मानो कहानी की प्रत्येक घटना उसकी अनुभूत घटना हो। कहानी की रूपरेखा और उसके प्राण इतनी सुन्दर रीति से उसके ध्यान में होने चाहिए कि उसे कहानी सुनाते समय कहानी, उसकी निर्मिति, अपनी वाणी और कहानी में आने वाले हावभावों की जरा भी चिन्ता न करनी पड़े। इसके लिए कहानी को शब्दशः याद करने की जरूरत नहीं है अपितु कहानी के केन्द्र को पकड़ना जरूरी है। अमुक कहानी किसकी है, अमुक कहानी में क्या है। यदि ये बातें गले उतर जाएँ तो कहानी स्वतः जबान पर चढ़ जाती है। बेशक कहानी की शोभा और उसके प्राणों के अनुरूप शब्द चयन,

प्रासानुप्रास, आंचलिकता का खास प्रयोग, तुकबंदियाँ, कविता और कहानी में आने वाली पुनरावृत्तियाँ तो वार्ताकार की जबान पर चढ़ी हुई होनी ही चाहिए और वे भी अक्षरशः।

जो लोग अध्ययन करके कथा-कहानी का शास्त्र सीखते हैं, उनमें दो-एक दोष आ जाने संभव हैं। कहानी को सरस कैसे बनाएँ, यह बात उनके मन से दूर नहीं जाती। फलतः वे लोग अक्सर कहानी में जाने-अजाने अस्वाभाविकता और अतिशयोक्तियाँ दाखिल कर बैठते हैं। नाटक का विदूषक कृत्रिमता की वजह से हमें हँसाता है। वह सच्चा आनंद नहीं देता। हास्य और आनंद सदैव एक चीज नहीं होती। वार्ताकार जितना अधिक कृत्रिम बनता जाएगा, वह श्रोताओं के लिए उतना ही विदूषक जैसा बन जाएगा। अत्यधिक अभिनय से कहानी सरस नहीं बनती अपितु नीरस बन जाती है। रंग के छिटें हों, धब्बे न हों। इसी भाँति भावों को अभिनय के द्वारा प्रकट किया जाए, गड़बड़ न हो। अभिनय भावों की प्रस्तुति में हावी न हो अपितु वह भावों को प्रकट करने का माध्यम बने। मात्र आवाज से ही भावों को प्रकट किया जा सके, तब तक हाथ-पैर अथवा अन्य इन्द्रियों की मदद लिए बिना भावों को अभिव्यक्त करने की खूबी सिद्ध करने में ही वार्ताकार का कौशल समाहित है। गद्गद् कंठ से दुःख के भावों को व्यक्त किया जा सके तो जोर-जोर से सिसकने या रोककर बताने में कृत्रिमता के सिवा और कुछ नहीं। वार्ताकार में भावों को अभिव्यक्त करने की अद्भुत कला होनी चाहिए। वह नट नहीं, नटराज होता है, नाटक का पात्र नहीं सूत्रधार होता है। अतः कहानी की कठपुतलियों को भली-भाँति नचाने की कला उसमें होना आवश्यक है।

वार्ताकार की असली विशेषता तो कहानी में हास्य-विनोद के प्रति इंगित मात्र से, एक सूचनात्मक स्मित मात्र से संकेत भर कर देने में निहित है। विनोद के प्रसंग को अभिनय के द्वारा प्रस्तुत करने से तो अविनोद ही हाथ लगता है। अभिनय करने में बहुत कंजूसी से काम लेना चाहिए। दवा बीमारी को दूर कर देती है, पर तंदुरुस्ती की वृत्तियाँ भी बता देती है। इसी भाँति अभिनय मनुष्य के भावों को तो प्रत्यक्ष कर देता है लेकिन साथ ही मनुष्य की कल्पनाशीलता की दरिद्रता भी उजागर कर देता है। जैसे-जैसे नाटक का वस्तुपक्ष सामान्य होता जाएगा अथवा नाटकों और श्रोतागण की कल्पना दरिद्र होती जाएगी वैसे-वैसे अभिनय की मात्रा में वृद्धि होती जाएगी। जो श्रोतागण आँख के टमकारे से या गले की आवाज से

अथवा शरीर के हिलने-डुलने से वार्ताकार के आंतरिक मर्म को समझने में असफल रहते हैं, हम उन्हें कम कल्पनाशील श्रोता समझते हैं। जैसे-जैसे समाज अशिश्ट होता जाता है, वैसे-वैसे उसे भवाई में अधिक आनंद आने लगता है, और जैसे-जैसे वह अधिकाधिक शिष्ट होता जाता है वैसे-वैसे उसे दृश्य नाटकों की बजाय श्रव्य नाटकों में अधिक आनंद आता है। यही कारण है कि रामलीला में हनुमान की पूंछ बहुत लम्बी लगानी पड़ती है।

कहानी एक प्रकार का शब्द-चित्र होती है अतः कहानी को सुनना एक कल्पना का विषय है। साहित्य शिक्षण का प्रयोजन यही है कि वह मनुष्य को ऊँची से ऊँची कल्पना और ऊँची से ऊँची कलात्मकता शब्द-चित्रों के माध्यम से समझा सके। कहानी सुनाना इस उद्देश्य को सिद्ध करने का साधन भी है और साध्य भी। चित्र अनेक प्रकार के होते हैं। जो चित्र आँखों के विषय होते हैं वे रूप-चित्र होते हैं श्रवणगोचर चित्र ध्वनि-चित्र होते हैं, घ्राणगोचर चित्र घ्राण-चित्र होते हैं। इसी प्रकार कान के द्वारा स्पर्श-पट पर पड़ने वाले और उसके द्वारा कल्पना का स्पर्श करने वाले चित्र शब्द-चित्र होते हैं। कहानी इसी तरह का शब्द-चित्र होती है। कलाकार का यह उद्देश्य होता है कि वह श्रोताओं के सामने हू-ब-हू चित्र खड़ा कर दे। एक चित्र खड़ा कर देने पर अन्य प्रकार के चित्र की मदद कितनी अनिवार्य अथवा व्यावहारिक है, यह निर्णय कलाकार कर सकता है। कहानी को सुनाने के साथ-साथ उससे संबंधित रूप-चित्र भी विद्यार्थियों को दिखाने चाहिए अथवा नहीं, यह एक विचारणीय प्रश्न है। यदि कहानी का उद्देश्य विद्यार्थियों के मन-मस्तिष्क पर शब्द-चित्रों और उनके माध्यम से साहित्य की शक्ति का प्रभाव देखना है तो शब्द-चित्रों में अन्य प्रकार के चित्रों की कोई गुंजाइश शेष नहीं रह जाती। कहानी सुनाए जाते समय जो शब्द-चित्र निर्मित हो रहा हो, उसकी गति को रोकने वाले सभी तरह के विक्षेपों से बचने का ध्यान रखना जरूरी है। विषयांतर होना जितना निंदनीय है उतना ही निंदनीय है रूप-चित्रों अथवा स्थूल चित्रों का प्रदर्शन करना। कई लोगों की मान्यता है कि कहानी सुनाने के साथ यदि चित्र दिखाए जाएँगे तो उनसे कहानी का आनंद अधिक बढ़ेगा और कहानी का ज्ञान अधिक सुदृढ़ होगा। यदि शब्द-चित्र बालकों पर असर नहीं डाल सकता तो रंग अथवा रूप-चित्रों के द्वारा कहानी को सफल बनाने की कोशिश करना उसके वास्तविक उद्देश्य को निष्फल करने के बराबर है।

चित्र-दर्शन के द्वारा कहानी की वस्तु या किसी की बात को समझ कर उसका आनन्द लेना एक अलग बात है। किसी खूबसूरत रेखा-चित्र या रूप-चित्र को देखने में जिस तरह से वार्ता-चित्र अवरोध डालता है उसी तरह एक सुन्दर शब्द-चित्र के आस्वादन में रंग-चित्र अवश्य बाधा डालता है। जहाँ कहीं भी कहानी सुनाने के साथ-साथ चित्र दिखाए जाते हैं वहाँ कहानी का भजा किस तरह किरकिरा होता है, कक्षा में कैसी अव्यवस्था फैलती है तथा शब्द-चित्र का कैसा दारिद्र्य नजर आता है, इसे तो वही महसूस कर सकता है जो देखने का प्रयत्न करे। कहानी सुनाने के बाद यदि कभी किसी समय शब्द-चित्र को रंग या रूप-चित्र के माध्यम से चित्रित करके दिखाया जाता है तो बालकों को अवश्य आनंद मिलेगा। कहानी का एक अन्य प्रयोजन विद्यार्थियों की कल्पनाशीलता को विकसित करना होता है। यदि कहानी सुनाने से पहले ही उसके साथ चित्र दिखाने लें तो कल्पना की उड़ान के लिए तो गुंजाइश ही नहीं रह जायेगी। जब तक कोई बालक यह कल्पना करने लगता है कि राजा कैसा होगा, जब तक वह कल्पना के द्वारा अपनी काव्यशक्ति को विकसित करने की कोशिश करने लगता है, यदि उससे पहले ही चित्र के माध्यम से माथे पर मुकुट धारण किए और हाथ में तलवार ताने कोई राजा उसकी नजरों के सामने आकर खड़ा हो जाएगा तो बालक का आनंद जाता रहेगा। उसकी कल्पनाशक्ति को विकसित होने की खुराक ही नहीं मिलेगी।

एक और बात विचारणीय है। कहानी सुनाने के मूल में हमारा एक मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों को आनंद प्रदान करना भी है। इसके लिए अनेक विधियों से कहानी को सरस बनाकर परोसने के बजाय कहानी-कला को अपनी सम्पूर्णता के साथ विद्यार्थियों के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए। यहाँ बालकों को कहानी में आनंद लेने के लिए प्रवृत्त करने की बजाय कहानी का आनंद उनके समक्ष प्रस्तुत करने की बात है। अर्थात् कहानी कहने वाले व्यक्ति का प्रयोजन यह होना चाहिए कि वह बालकों को रस-ग्राही बनाए। प्रत्येक व्यक्ति अपने आप कहानी कहने में आनंद लेने लगे, इसी में कहानी सुनाने की खूबी समाहित है। अगर ये बातें ध्यान में रहेंगी तो फिर कहानी सुनाने के साथ चित्र दिखाने की बात दिमाग में ही नहीं आएगी।

वार्ताकार चाहे कितना ही श्रेष्ठ क्यों न हो, यदि वह बालकों से वापिस कहानी सुनने की पद्धति अपनाता है तो कदापि सफल नहीं हो सकता। कहानी

सुनना वस्तुतः बालक से सुनी हुई कहानी को उगलवाना है। जबकि कहानी आस्वादीय वस्तु है। अगर कहानी सुनने से बालक अनुरजित होता है तो कहानी सुनाने का काम पूर्ण हुआ। हमारे लिए यही समझ पर्याप्त है। सुनी हुई कहानी को वापिस सुनने की परम्परा तब से शुरू हुई है, जब से कहानी सुनने-सुनाने का सिलसिला विद्यालयों में प्रविष्ट हुआ है। लाल बुझकड़ों की कहानियाँ सुनने वाले लोग बड़े होकर अपने बच्चों को बालपन की सुनी हुई कहानियाँ जब तक सुनाने नहीं बैठ जाते, तब तक उनसे शायद ही कभी कोई उन कहानियों को 'उगलवाता' होगा। दादी माँ की गोदी में लेटे-लेटे जो कहानियाँ कभी सुनी थीं, वे स्वयं दादी माँ बन जाने पर बिना 'उगलवाए' अपने-आप मस्तिष्क की पुरानी यादों में स्फुरित होने लगती हैं। जहाज में यात्रा करते हुए या किसी सराय में राहगीरों-यात्रियों-मुसाफिरों के साथ रात बिताते हुए अथवा किसी मित्र-मंडली में कई वर्षों पहले सुनी हुई कहानियाँ हमारे मस्तिष्क में वैसी की वैसी तरताजा विद्यमान रहती हैं और बिना कहलवाए कहानी के रूप में सुनाने के लिए निकल आती हैं।

शिक्षण में कहानी का विशिष्ट स्थान है, लेकिन बालकों को कहानी सुनाकर वापिस उनसे कहलवाने की पद्धति अपनाए जाने से विद्यार्थियों को भी नुकसान होता है और स्वयं कहानी को भी क्षति पहुँचती है। निश्चय ही कहानी कहलवाने से विद्यार्थी की भाषा विकसित होती है अतः कहानी का एक उद्देश्य इसके माध्यम से बालक की भाषा का विकास करना माना जाता है, लेकिन कहानी उगलवाकर विद्यार्थी की भाषा का विकास करने का मोह शिक्षकों को त्याग देना चाहिए। यह तो वही बात हुई इधर तो आप तपेली में खिचड़ी बनाने के लिए दाल-चावल डालें और उधर कलछी डालकर खाने के लिए निकालने का उपक्रम करने लगें। ऐसे में तो आपको कच्चा अनाज ही खाने को मिलेगा, खिचड़ी नहीं। इसी भाँति आज आपने जो भाषा-शक्ति अपने विद्यार्थियों को परोसी है, यदि उसे वापिस उगलवाने का यत्न करेंगे तो खिचड़ी के कच्चे अन्न कणों की भाँति आपको कच्ची भाषा-शक्ति ही हाथ लगेगी। जब बीजारोपण और फलागमन की क्रियाएँ एक साथ संभव होंगी तभी कहानी सुनाने और उसके प्रति-कथन की क्रियाएँ भी साथ-साथ संभव होंगी। पर ऐसा होता कहाँ है।

प्रत्येक वार्ताकार को अपनी कहानी आडंबर-रहित तथा विषयांतर से मुक्त रखनी चाहिए। कई लोग ज्ञान देने के अवांछनीय हेतु से एक ही कहानी में ढेर सारी

बातें गूँथ देते हैं। इससे कहानी के गठन में शिथिलता आ जाती है और बहुत सारी बातों की खिचड़ी बन जाने से विद्यार्थियों को न तो आनंद आता, न ज्ञान हाथ लगता है। कहानी का प्रवाह अजस्र और गतिशील होना चाहिए। एक भी आडी-टेढ़ी बात कहने की जरूरत नहीं है। कथा के पात्रों के मनोभावों की जितनी गुंजाइश हो उतनी ही मात्रा में उन्हें व्यक्त करना चाहिए। अन्यान्य बातों के उदाहरणों को त्याग देना चाहिए। कथा का शब्द चयन इतना सटीक और अर्थपूर्ण हो कि बालकों को कथा समझने में कहीं रुकना न पड़े। इसी भाँति कथा में कहीं भी ऐसा अर्थ-गांभीर्य न आ जाए कि जिसे स्पष्ट करने के लिए कथा के प्रवाह को धीमा करना पड़े। जब कहानी विषयांतर हो जाती है तो उसका वेग थम जाता है, धारा सूख जाती है और श्रोतागणों का आनंद काफूर हो जाता है। वस्तुतः कहानी शाखा-प्रशाखा विहीन लंबे तने वाले ताड़ के वृक्ष जैसी होती है, जिसके ठेठ माथे पर जाकर पत्ते होते हैं।

कहानी कहते समय श्रोताओं से सवाल नहीं पूछा जाता, न उनसे अनुमोदन कराया जाता। कहानी को आडंबर के बगैर कहा जाना चाहिए। अधिक चीखने-विल्लाने या अधिक हाव-भाव प्रकट करने से कहानी अच्छे ढंग से नहीं कही जा सकती। उल्टे जहाँ जोर-जोर से बोला जाता है वहाँ कहानी सुनी ही नहीं जाती। इसी भाँति जहाँ अधिक हाव-भाव प्रकट किए जाते हैं वहाँ कहानी हावभाव में ही खो जाती है। वार्ताकार को कहानी के पात्रों के सभी अभिनय करने की भी जरूरत नहीं है। लेकिन जहाँ शब्द की बजाय क्षणिक अभिनय से कहानी की जीवंतता को अधिक अर्थपूर्ण रीति से दिखाया जा सके, वहाँ तो अभिनय किया ही जाना चाहिए। कई बार तो जो बात शब्द नहीं कह सकता, उसे शरीर के हावभाव अधिक सफलता से सम्प्रेषित कर देते हैं। इसके बावजूद वार्ताकार को अभिनय के प्रति सावधानी से ही काम लेना चाहिए। अभिनय अपनी मर्यादा से बाहर चला जाता है तो वार्ता की कला कृत्रिम हो जाती है तथा उसका प्रयोजन असफल चला जाता है। अभिनय तो वही व्यक्त कर सकता है जो स्वाभाविक और अनायास रीति से कर सके। पर जिसको जबरन अभिनय करना पड़े, जिसमें अस्वाभाविकता हो या जिसे इसके लिए सीधे प्रयत्न करना पड़े, उसे तो अभिनय कभी करना ही नहीं चाहिए। ऐसे लोग अभिनय न करें, इसी में कहानी के श्रोताओं को लाभ है।

वार्ताकार की वाणी में स्पष्टता होनी चाहिए। उसकी आवाज में भावानुरूप हर्ष, शोक आदि सभी भाव ध्वनित होने चाहिए। कहानी न मंद गति से सुनाई जाए, न द्रुत गति से। सामान्यतया कहानी की रफ्तार को स्वयं कहानी ही तय कर देती है, फिर भी अगर मध्यम गति से कहानी कही जाए तो अच्छा रहे। आवाज से हम कहानी में विद्यमान भावों को जिस सुन्दरता से प्रकट कर सकते हैं, वैसी सुन्दरता से अन्य साधनों के द्वारा प्रकट नहीं कर सकते। आवाज में हम हास्य प्रकट कर सकते हैं, शोक प्रकट कर सकते हैं और आवाज में कथा के प्राण संचरित कर सकते हैं। स्वर परिवर्तन एवं आरोह-अवरोह की कला वार्ताकार के लिए वांछनीय तत्त्व है। शुरुआत यथा संभव धीमी आवाज में ही होनी चाहिए। गला फाड़-फाड़कर कभी कोई बात नहीं कही जा सकती। चीखने से कहानी दिमाग में नहीं जाती, मात्र कर्कश आवाज आती है। उससे बालक के कान की शक्ति घटती है। बालक को मात्र सुनाई दे सके, उतनी ही आवाज पर्याप्त है।

वार्ताकार को एकाधिक कहानियों की तैयारी रखनी चाहिए। संभव है आपकी कहानी बालक पहले सुन चुके हों, संभव है आपका चयन बालकों के अनुकूल न हो—ऐसे में आप तत्काल दूसरी कहानी कह सकते हैं। जो आदमी दो-पाँच कहानियाँ पढ़-सुन कर कहानी कहने निकल पड़ता है, वह कभी सफल नहीं होता। इसके लिए तो अनगिनत कहानियाँ जाननी जरूरी है और हर समय आदमी को कहानी सुनाने के लिए तैयार रहना चाहिए।

वार्ताकार को कहानी सुनाते समय एक बालक की भाँति आनंद लेना चाहिए तथा इतनी तटस्थता रखनी चाहिए मानो कहानी कहने वाला कोई और है, वह तो मात्र श्रोता है। इस तरीके से ही वह बालक की दृष्टि को समझ सकता है और स्वयं अपना आलोचक बन कर अपनी त्रुटियाँ सुधार सकता है। इन दोनों बातों के अतिरिक्त वार्ताकार को कहानी में स्वयं तल्लीन हो जाना चाहिए। कहानी के भावों को जगाने के साथ-साथ उसे स्वयं उन भावों को अनुभव करना है—यह बात कहीं विस्मृत न हो जाए। □

द्वितीय खंड

छठा प्रकरण

कहानी कहने का समय

कोई भी कहानी किसी भी समय कही जा सकती है, फिर भी कथा कहने में समय का सवाल विचारणीय है। कथा-कथन का शास्त्र इतना अधिक प्रगतिशील याकि निश्चित नहीं है कि जिस प्रकार संगीत में अमुक राग अमुक समय पर ही गाई जाती है उसी प्रकार अमुक कहानी अमुक समय पर ही कही जाए, ऐसे नियम निश्चित किए जा सकें। फिर भी ऐसा नहीं है कि कथा-कथन में समय की महिमा पर ध्यान नहीं दिया जाता।

हमारी आदत ऐसी पड़ गई है कि सुबह के समय तो हम कहानी सुनाते ही नहीं। चोर को कंधा देने के समय अर्थात् भारी दुपहरी भी कोई कहानी नहीं सुनना चाहता। लेकिन जैसे-जैसे सूर्य भगवान पश्चिम के आकाश में नीचे उतरते जाते हैं वैसे-वैसे एक के बाद एक कहानी के अंश खिलने लगते हैं। शाम को चार बजे बाद भट्टजी की कथाएँ शुरू होने लगती हैं। गरुड़ पुराण, पुरुषोत्तम मास का माहात्म्य, एकादशी माहात्म्य, शिवरात्रि की कथा आदि शास्त्रीजी की वाणी से प्रवाहित होने लगती हैं। दक्षिणी बाबा लोग भी इसी समय हरिकथा शुरू करते हैं। अधिकांशतया यह समय धार्मिक कथा-वार्ता का रहता है। धर्मपरायण स्त्री-पुरुष दिन भर का पौना भाग ऐहिक प्रवृत्तियों में बिताने के बाद शेष थोड़ा समय ऐसी धार्मिक प्रवृत्तियों में बिताते हैं। यह हमारे देश की पुरानी रूढ़ि है।

बालक पूरा दिन खेल में बिताते हैं। किसान-मजदूर शाम तक काम में लगे रहते हैं। घरेलू औरतें बड़ी मुश्किल से रात को काम से निवृत्त होती हैं। बूढ़ी औरतों को दिन की बजाय रात ज्यादा लंबी लगती है। शूरीयों के हथियारों और घोड़ों को रात में ही आराम मिलता है। हिसाब-किताब लिखने वालों और नौकरी-पेशा लोगों को रात में ही कम काम होता है। बीमार लोगों को रात पड़ते सोचना पड़ जाता है कि रात कैसे गुजारे? राजाओं और सेवों को रात में नींद आनी मुश्किल होती है और रंक लोगों को दिन की वास्तविकता भुलाकर कल्पित सपनों में भटकना पड़ता है। साहसिकों, नवयुवकों, अध्येताओं तथा योगियों को रात प्रिय लगती है। व्यापारियों

को भी रोजनामचे और खातेबही के पत्रे बंद करके मूर्ख बेटे को बुद्धिमान बनाने हेतु कहानी कहने का समय रात में ही मिलता है। अतः रात पड़ते ही कहानी के पंख फड़फड़ाते लगते हैं। निंदियाये नन्हें बालकों की नन्हें पलकों से वे पंख पहले-पहल टकराते हैं। आधे जागते, आधे सोते नन्हें बालकों को ऊँचा मुँह किए लाडली माता या कहानी के रसिक पिता के मुँह से निकलने वाली कहानियाँ सुनते जिन लोगों ने देखा होगा, उनको यह समझाने की जरूरत ही कहाँ पड़ती है कि कहानी के समय वे किस तरह से जमे रहते हैं। तभी तो जब कथा कहने वाले माणभट (कथावाचक) माण बजाना शुरू करते हैं तो उसकी आवाज सुनते ही किसान, मजदूर और भौंति-भौंति के कारीगर भोजन से निवृत्त होकर उमंग के साथ उनके इर्द-गिर्द इकट्ठे हो जाते हैं। चौपाल में कभी बारहठजी शूरवीरों की कहानियाँ कहते हैं तो उन्हें सुनने के लिए गरासिये और राजपूत देर रात गए तक इकट्ठे रहते हैं। किसी चौक में या किसी के मकान के बरामदे में या किसी वृद्ध के चबूतरे पर जब बूढ़े-बुजुर्ग इकट्ठे होते हैं तो दुनिया भर की बातें हाँकते हैं। उधर किसी अँधेरे कोने में किसी स्मारक के पास नवयुवकों की मंडली रात के अँधेरे में धीमे-धीमे न जाने कैसी कहानियाँ कहती हैं। कपास को साफ करती-करती गली-मोहल्ले की महिलाएँ चाँदनी रात में देर सारी कहानियाँ कहती हैं मानों कहानियों की बाढ़ आ गई हो। बीमार सेठों को नींद दिलाने वाली दो ही चीजें होती हैं, एक चंपी और दूसरी कहानी। राज्य के भार से उकताये हुए अथवा अनुद्योग के कारण थके हुए राजा को भी रात होते ही कहानी का काढ़ा पीना पड़ता है। जब कैसे ही करने पर बैरिन रात नहीं बीतती तो रोगी को कहानी की भीठी मरहम लगानी पड़ती है। नींद न आने के कारण ही तो बूढ़े लोग कई बार रात को कहानी कहने के लिए बैठते हैं।

कुछ भी कहो पर कहानी कहने का सर्वमान्य समय और कुदरती समय रात का ही होता है। भवाई देर रात गए जमती है और कहानी पहली रात में। निरी वास्तविकता भरे दिन में कहानी की कल्पना उड़ नहीं सकती। यह जंगलों की कल्पना, साहसों की उठान, अद्भुत चमत्कार और ये भयंकर पराक्रमों के प्रचंड प्रभाव रात में ही अच्छे लगते हैं, रात ही इन सबों को झेल सकती है। कैसा अद्भुत संबंध है रात का और कहानी कहने का!

जब मैं अफ्रीका में था तो पूरा का पूरा दिन खाने-पीने की माथापट्टी में और नई-नई चीजें देखने में न जाने कहाँ चला जाता था कि पता नहीं रहता था। पर

ज्योंही रात पड़ती तो वही का वही समुद्र, वही आकाश, वही स्टीमरों का शोर, वही का वही अरबों, खोजों और सुथारों का पाड़ौस आँखों और कानों को भारी-भरकम लगने लगता तो कहानी को अपने आप अवसर मिल जाता। तब हम राजी-खुशी कहानी की गोद में अपना सिर रखते और सवेरा उगा देते। न जाने कब से चली आई है यह कहानी और रात्रि की मित्रता!

पर इस सचाई का अपवाद भी है। शायद भागवत की कथा सात दिनों तक सुबह से लेकर शाम तक चलती है। शीतला माता की कहानी, वारों की कहानी तथा व्रतों की कहानियाँ भोजन करने से पहले सुनने की महिमा है। शाला में भी दिन के समय ही कहानियाँ कही जाती हैं।

अपवाद से नियम सिद्ध होता है। इस नियम का अनुसरण करते हुए कहा जा सकता है कि कहानी कहने और सुनने का समय तो रात्रि ही है। जहाँ-जहाँ कृत्रिम बंधन आड़े आते हैं वहाँ-वहाँ कहानी का समय बदलता है, यह बात अपवादों से स्पष्ट है।

शाला में कहानी कहने का समय होता है। वहाँ पर कहानी कहना एक तरह की कृत्रिमता है। फिर अमुक समय में ही कहानी कहना, एक और कृत्रिमता है। कृत्रिमता की पतें ज्यों-ज्यों ऊपर चढ़ती जाती हैं त्यों-त्यों कहानी के आनंद को नुकसान पहुँचाती हैं। भले ही शाला में कथा-कथन का स्थान रखा जाए, और भले ही दिन का समय अनिवार्यतः निश्चित रखा जाए, परन्तु अमुक समय ही कहानी कही जाएगी और अमुक समय नहीं कही जाएगी, ऐसी किसी भी जड़ता से उसे मुक्त करने की जरूरत है। कहानी आनंद के लिए सुनाई जाती है और आनंद समय-विभाग-चक्र के अधीन नहीं होता—यह बात समझनी मुश्किल नहीं है। अतएव विद्यालय के समय-विभाग-चक्र में कहानी सुनाने हेतु अलग से समय नहीं रखा जाए, अर्थात् कहानी को विद्यालय के पूरे समय-विभाग-चक्र में से सर्वत्र स्थान दिया जाना चाहिए। जब बालक कहानी सुनने की रुचि प्रकट करें तभी कहानी सुनाने का समय मानने की रीति सबसे अच्छी मानी जाएगी। जहाँ ऐसा संभव न हो, वहाँ इतना तो अवश्य करने की जरूरत है कि कहानी कहने का जब निश्चित समय हो, तब जो लोग कहानी न सुनना चाहें उन्हें समय-विभाग-चक्र की बाध्यतावश कहानी सुनाने नहीं बिठा लेना चाहिए। किंडरगार्टन और इसी के मार्ग पर चलने वाली अन्य शालाओं में यह एक कमी है। अगर कहानी को

समय-विभाग-चक्र में रखा गया है और अमुक समय कहानी कहने का प्रबंध किया गया है तो इतना तो अवश्य ही करना चाहिए कि जिन विद्यार्थियों का कहानी सुनने का मन न हो, उन्हें सुनने के लिए बाध्य न किया जाए।

रात और दिन में से कहानी सुनने के लिए जिस तरह रात को अधिक अनुकूल माना जाता है उसी तरह पूरे वर्ष में कई दिन कहानी सुनाने के लिए अधिक अनुकूल माने जाते हैं। नागपंचमी को नागदेवता की कहानी, शीतला सप्तमी को शीतला माता की कहानी, बाघ-बारस को बाघ की कहानी तथा अन्य त्यौहारों पर उनसे संबंधित कहानियाँ कही जा सकती हैं। हमारे यहाँ यह परम्परा बहुत पुरानी है। जब बौद्ध चौथ (श्रावण कृष्ण चतुर्थी को आने वाला स्त्रियों का त्यौहार) आती है तब बड़ी भाभी 'गाय के बछड़े' (घऊंला) की कहानी कहती है। शीतला सप्तमी को शीतला माता के सामने शीतला महाराज की कहानी कही जाती है। संकट सोमवार को शंकरजी की कहानी और पुरुषोत्तम मास में रोजाना पूरे माह तक पुरुषोत्तम महाराज की कहानियाँ सुनते महिलाओं को मैंने देखा है। कहानी अपने खास दिनों में ही अच्छी लगती है। विद्यालय ये कहानियाँ भूलें नहीं। त्यौहारों पर तो उनकी कहानियाँ कही जानी ही चाहिए। ऐसी वार्ताओं का सही समय उनका त्यौहार ही है। सभी चीजें समय पर अच्छी लगती हैं, वैसे ही कहानियाँ भी अपने समय पर शोभा देती हैं। शिवरात्रि हो, उपवास किया हो, शंकरजी की बील पत्र द्वारा पूजा हो रही हो, उस समय 'हरणां का स्मरण' शीर्षक कहानी बड़ी शोभा देती है। 'रांधण छठ' (श्रावण कृष्ण षष्ठी के लिए महिलाओं का यह त्यौहार आता है) के दिन विविध प्रकार का भोजन पकाया जाता है। बच्चे पेट भरकर खाते हैं और फिर निबटते फिरते हैं। उस समय मौका देखकर 'जे बाई अणसीखी' की कहानी जब बालकों को सुनाई जाती है तब कैसा मजा आता है, यह तो कहने वाला या सुनने वाला ही बता सकता है। ऐसी अर्द्ध ऐतिहासिक, अर्द्ध कपोलकल्पित, अर्द्ध पौराणिक और अर्द्ध आधुनिक कहानियाँ हम तीन सौ पैंसठ दिनों की इकट्ठी कर सकते हैं तथा प्रतिदिन बालकों को एक-एक कहानी सुनाकर अपनी संस्कृति के अनेक पक्षों से उन्हें परिचित करा सकते हैं। ऐसी कहानियों को वार-त्यौहारों की कहानियाँ कह कर पुकारते हैं।

जिस प्रकार जन्माष्टमी की एक कहानी, रामनवमी की दूसरी कहानी और हेली की तीसरी कहानी होती है, उसी प्रकार ऋतुओं की भी कहानियाँ होती हैं। ये

वार्ताएँ ऋतुओं के अनुसार कही जाएँ तो बालक को ऋतुओं का अन्तर भली भाँति सरलता से समझ में आ जाता है। वर्षा ऋतु आती है और आकाश में इन्द्रधनुष उभरता है तब इन्द्र और धनुष की कहानी चलती है, जब मेंदक झाँऊ-झाँऊ करता है तब 'साले, मैं तुझे डराऊँ' नामक कोई कहानी कैसी मजेदार लगती है, ग्रीष्म ऋतु आती है और तेज धूप के समय कमेड़ी 'घू घू घू' करने लगती है तब 'तेजी भुआ, तेजा फूँफा डूब मरा' नामक कहानी कही जाती है। इसी तरह जब गरमी में कुओं का पानी गहरे चला जाता है, मेंदक भी जमीन में छिप जाते हैं तब मेंदक को धरती माता क्यों छिपने देती है नामक मराठी कहानी का उपयोग करके खुशी से सुनायी जा सकती है। ऋतुओं-ऋतुओं की, जिन्हें अंग्रेजी साहित्य में प्रकृति की बातें कहा जा सकता है, कहानियाँ कही जा सकती हैं।

क्या कारण है कि अमुक पेड़ के पत्ते पतझड़ में भी नहीं खिरते? इससे संबंधित एक कहानी अंग्रेजी साहित्य में है। बड़ी सरस कहानी है। अंग्रेजी साहित्य में ऋतुओं से संबंधित तथा ऋतुओं के परिवर्तन से संबंधित सुंदर-सुंदर कहानियाँ हैं। एक कहानी कोहरे की है, दूसरी सूर्य-किरणों की, तो तीसरी झड़ते पत्तों की। इन तमाम कहानियों को हम कुदरत की कहानियों के नाम से पुकारते हैं तथा इनको सुनाने का समय वस्तुओं के बदलाव के साथ ही निर्धारित करते हैं।

लाजवंती की कहानी तथा 'मुझे भूलना मत' की कहानी अंग्रेजी में है। हम बालकों के साथ घूमने निकले हों और एकाध प्राकृतिक प्रसंग हमारी आँखों के सामने प्रकट हो, तो ऐसी एकाध कहानी बालकों को आनंदमग्न कर देती है। जब बालक वन में या बाग में, सागर या नदी तट, पर्वतों में या कंदराओं में घूमते हों तभी ऐसी कहानियाँ सुनाने का समय होता है। ऐसा समय चूक जाने वाला अध्यापक कहानी को चूक जाता है। छोटे-मोटे प्रवासों में ऐसी कहानियाँ कहने का समय कई बार हाथ लग जाता है। कौचा के पेड़ को देखकर मियाँ और हिन्दू की कहानी अपने आप कहने का मन हो आता है। अच्छे शिक्षक कभी माधा बाव या राणकदेवी की देवली पर जाकर आने के बाद ये दोनों ऐतिहासिक दंतकथाएँ अवश्य सुनाते हैं।

समुद्र किनारे घूमते-घूमते 'वाटर बेबीज' नामक पुस्तक में लिखी कहानियाँ जैसी या यही कहानियाँ हम सुना सकते हैं। कल्पित कहानियों का क्षेत्र छोड़कर अगर

हम विज्ञान की कहानियाँ ले लें तो ऐसे भ्रमण के आयोजन ऐसी कहानियों से छलक उठते हैं। रास्ते में किसी सुगृही का घोंसला देखने पर 'बैया और बंदर' वाली कहानी अवश्य चलेगी, लेकिन इससे आगे चलने पर इस तरह के घोंसले बनाने वाले पक्षियों की बातें चलेगी। गिलहरी और उदई के घरों को देखकर हम अपने मित्र प्राणियों और अमित्र प्राणियों की कहानियाँ शुरू कर सकते हैं। कहीं से कोई सियार दौड़ता आए तो उसे देखकर सियारों की इतनी सारी कहानियाँ कही जा सकती हैं कि एक भागवत तैयार हो जाए! पर्यटन द्वारा हमें भूगोल की कहानियाँ भली-भाँति जानने का अवकाश मिलता है। सागर पार की कहानियों में चीनियों की चपटी नाक और लंबी चोटी की कहानी कम रोचक नहीं है। काले-काले और नंगे-नंगे हबशियों की कहानियाँ राक्षसों की कहानियों को भी परे रख देती हैं। किसी मार्ग में कोई भूत रहता हो तो उसकी कहानियाँ चलती हैं : किसी रास्ते या पेड़ के नीचे दो बहादुर लड़कर मर गए हों तो उनके स्मारकों की कहानियाँ चलती हैं, अथवा किसी गाँव के सिवान में लोकदेवता के चबूतरे पर नागदेवता की तथा मंत्र-तंत्र की कितनी ही कहानियाँ चलती हैं। इन तमाम कहानियों को संग्रहीत करके प्रकाशित किया जाए तो कितनी ही रासमालाएँ छप सकती हैं। किसी पहाड़ी पर बैठकर शिक्षक पृथ्वी, नदी, पर्वत, सूर्य, चंद्र आदि की अद्भुत कहानियाँ कह सकते हैं। ऐसी कहानियाँ कहने का समय कौन-सा होना चाहिए, इसे इस निबंध को पढ़कर समझा जा सकता है।

कई कहानियाँ प्रसंगानुसार होती हैं। कोई प्रसंग खड़ा होते ही उससे संबंधित कहानी की परंपरा शुरू हो जाती है। कहीं चोरी हुई हो तो चोरों को किस बहादुरी अथवा युक्ति से भगाया, इस तरह की कहानियाँ चलने लगती हैं। कई लोग प्रचलित कहानियाँ सुनाते हैं तो कई लोग आप बीती कहानियाँ इतनी सुन्दरता से कहते हैं कि एक रोचक कहानी तैयार हो जाती है। गली में साँप निकला हो तो घंटे-आध-घंटे साँपों की बातें चलेंगी ही। कोई बालक डरने लगता है तो फिर भूतों की बातों का अंत थोड़े ही आता है। एक के बाद एक सभी को याद आने लगती हैं। कई बार ऐसा मौका ही आ जाता है। बस उस मौके पर जिस विषय पर कहानी चल पड़ती है, चल पड़ती है, फिर उसका अंत कहाँ आता है। शिक्षकगण हमेशा प्रसंगानुसार कहानियाँ सुनाने के शौकीन होते हैं। पर इनकी प्रसंगानुसारी कहानियों का क्षेत्र एकदम सीमित होता है। अधिकांशतया इनकी कहानियाँ शिक्षाप्रद, चरित्र गढ़ने वाली या धर्मनीति से युक्त होती हैं। शिक्षक लोग प्रसंग आने पर कहानी कहना शायद ही कभी भूलते हैं। कोई विद्यार्थी गलती कर बैठे तो

वैसी गलती का क्या परिणाम हो सकता है, इसके बारे में भी शिक्षक भाइयों की जेब से एक-दो कहानियाँ निकल सकती हैं। कोई बालक समय-पालन की बात मुँह से निकालता है तो शिक्षक उसे दो-चार कहानियाँ सुना देते हैं। कई बार पाठ-पाठ में बातों को समझाने तथा भली-भाँति हृदयंगम कराने के लिए अच्छे शिक्षक कहानी का उपयोग करते हैं। वे तमाम कहानियाँ, जो प्रसंगानुसार कही जाती हैं, समय-विभाग-चक्र, ऋतुचक्र या त्यौहार चक्र के अधीन नहीं होतीं, वरन् जब जैसा संजोग मिल जाए, तभी कहने जैसी हैं।

कई कहानियाँ ऐसी होती हैं कि जब कहा जाए तभी कही जाती हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि जब कही जाएँ तभी शोभा देती हैं परंतु कई शालाओं में जहाँ साप्ताहिक या पाक्षिक लोकवार्ता का समय रखा जाता है, वहाँ उन्हें हाजिर रहना पड़ता है। वह समय लोक कथाओं का होने के कारण उसमें लोक कथाएँ कही जाती हैं। यह समय थके-थकाये विद्यार्थियों को कहानी के द्वारा आनंद और आराम देने का होता है, अर्थात् समयानुसारी कहानियों का यहाँ कोई खास सवाल नहीं है। हाथ में जो कहानी आ गई, उसे ही निर्धारित समयावधि में सुनाना होता है।

कुछ समय ही ऐसे होते हैं कि जब कहानी कहनी ही होती है। यहाँ कहानी से समय पर जाने की बात नहीं है अपितु समय पर आधार है। ग्रहण के समय लोग इकट्ठे बैठे हों तो उस समय जो बात या कहानी निकली, वही सही है। कई बार श्मशान में यही होता है। शरद पूनम की रात को लोग उत्सव मना रहे हों और कहानी जम जाए तो जम जाए। ब्राह्मणों की विदाई हो और फिर खाने-पीने के बाद उन्हें समय बिताना हो तो कहानियों का टोटा नहीं रहता। ठाले बैठे लोगों के पास कहानियों का वही समय होता है कि जब वे कहानी कहने-सुनने के लिए ठाले बैठे हों।

रास्ते में तो अमुक कहानियाँ ही चलती हैं। बारत की विदाई की कहानी तथा ईधन बटोरने के लिए निकली हुई सहेलियों की कहानी का समय पंथ है। पंथ काटने के लिए कई लोग कहानियों की शरण लेते हैं। जब नन्हें बालक चलते-चलते थक जाते हैं तो उन्हें कहानी सुनाने की युक्ति कई लोग जानते हैं। भोजाई को बुलाने के लिए देवर गया हुआ हो और भोजाई पीहर को याद कर-करके पूरी राह रोती चल रही हो, तब कोई आत्मीय देवर भाभी को नई-नई कहानियाँ सुनाता है। ऐसे समय कैसी कहानियाँ कही जाती हैं, यह नहीं कहा जा सकता। परंतु वह समय

भी कहानी कहने का सही समय होता है। पुराने जमाने में तो रास्ते में कहानी कहना एक चतुराई समझी जाती थी। इस बारे में एक कहानी कथा-प्रकरणों के बीच रास्ते में कह देना समीचीन होगा :

एक किसान था। उसका इकलौता बेटा अकल का दुश्मन था। किसान ने सोचा कि मैं गाँव भर का पटेल हूँ, घर में सौ बीघा जमीन है, दोर-दोंदों की गिनती नहीं और पीछे यह बेटा है निपट मूर्ख। इसका क्या करना चाहिए ?

किसान ने सोचा कि इसका विवाह किसी चतुर स्त्री के साथ कर दूँ और फिर देखूँ कि वह इसे किस तरह परोटती है ?

तब पटेल ने अच्छे घर की बेटी से उसका विवाह कर दिया। कुछ दिन बीते और बाप-बेटा एक गाँव के लिए चल दिए।

पिता ने सोचा कि देखें जरा बहू ने बेटे को कितना दिमागदार बनाया है ?

बाप ने बेटे से कहा : 'बेटा, रास्ता काटो।' बेटे की बुद्धि मोटी थी। बेटे ने गाड़ी से फावड़ा-कुदाल उठाई और नीचे उतर कर रास्ते को काटने लगा।

बाप समझ गया कि बेटे की बुद्धि में कोई फरक नहीं पड़ा। उसने गाड़ी वापिस लौटाई। घर आकर बहू को अपनी पीहर भेज दी और अगले दिन बेटे का एक दूसरी स्त्री से विवाह कर दिया।

कुछ दिन बीत होंगे कि पटेल गाड़ी जोत कर बेटे से फिर बोला 'चल, हम गाँव चलते हैं।'।

बेटा गाड़ी में बैठ गया।

दो-तीन कोस गए होंगे कि पटेल ने कहा : 'बेटा, रास्ता काटो। बेटा तो झट से फावड़ा-कुदाली लेकर नीचे उतरा और रास्ता खोदने लगा।

बाप ने मन ही मन सोचा कि अभी तो बेटा वैसे का वैसा है। इस नई बहू में भी कोई अकल नहीं दिखती।

पिता ने गाड़ी लौटा ली और बाप-बेटा घर आ गए। घर आकर पटेल ने बहू को पीहर भिजवा दिया।

कुछ दिनों बाद पटेल ने बेटे का तीसरा विवाह किया। कुछेक दिन बीते होंगे कि पिता बेटे को गाड़ी में बिठाकर दूसरे गाँव खाना हुआ।

154 कथा-कहानी का शास्त्र

जब गाड़ी ने रास्ता पकड़ लिया तो पटेल बेटे से बोला, 'बेटा, रास्ता काट न।'।

बेटे में कोई फरक तो आया नहीं था। वह पहले की भाँति गाड़ी से नीचे उतरा और रास्ता बराबर करने लगा।

बाप बोला : 'चलो बेटा, घर चलते हैं।' बाप-बेटे गाड़ी फेरकर घर लौटे। तीसरी बहू को भी पीहर भेज दिया।

इसी तरह चौथी बहू, पाँचवीं बहू और छठी बहू ब्याही गई, पर बेटा तो वैसा का वैसा रहा मूर्ख। आखिर में एक अच्छे कुल की कन्या दूँदकर बेटे से ब्याही।

यह सातवीं बहू समझदार और सयानी थी। पहली ही रात उसने पटेल के बेटे से पूछा : 'तुम्हें तुम्हारे पिता ने इतनी औरतें क्यों ब्याही ? ब्याह के बाद उनको पीहर क्यों लौटा दी, जानते हो ?

बेटे ने कहा : 'मुझे नहीं पता क्या बात है ? पहले तो मुझे ब्याहते हैं, फिर कुछ दिनों बाद पिताजी कहते हैं कि चल बेटा गाँव चलते हैं। गाड़ी दो-चार कोस जाती है कि पिताजी कहते हैं : 'बेटा रास्ता काट न।' जब मैं कुदाली फावड़ा लेकर रास्ता काटने लगता हूँ कि तभी पिताजी कहते हैं, 'चलो बेटा, वापिस घर चलते हैं।' घर आकर वे बहू को पीहर भेज देते हैं और कुछ दिनों बाद नई बहू ले आते हैं। ऐसा कहते-कहते छः बार हो गया। अब कल पापा कहेंगे कि 'चल बेटा, गाँव चलते हैं और रास्ते में कहेंगे : 'बेटा, रास्ता काटो।'।

सातवीं बहू समझ गई कि यह तो उसके पति की ही गलती है।

तब बहू बोली कि अब जब आपके पिताजी 'रास्ता काटो' कहें तो आपको कहानी कहनी चाहिए। बहू ने उसे एक कहानी भी सिखा दी थी।

जब थोड़े दिन बीत गए तो पटेल ने गाड़ी जोड़ी और बेटे को साथ लिया।

बेटा अब बोलता भी क्यों ? अब तो वह समझदार बन गया था।

गाड़ी मारग में आ गई। दो-चार कोस चले होंगे कि पिता ने कहा : 'बेटा, रास्ता काटो।'।

पिता ने सोच रखा था कि अभी उसका बेटा फावड़ा-कुदाली लेकर रास्ता काटने लगेगा, पर वह तो अचरज में पड़ गया।

कहानी कहने का समय 155

बेटा बोला : 'एक था राजा । उसके सात रानियाँ थीं ।'

पटेल मरम की बात समझ गया । घर लौटकर वह अपने काम में लग गया ।
बेटा भी बाप की चतुराई समझ गया और मन ही मन उनकी प्रशंसा करने लगा ।

कई कहानियाँ स्थान के साथ जुड़ी होती हैं, जिन्हें हम स्थानबद्ध कथाओं के नाम से पहचानते हैं । स्थानक का रक्षक अथवा स्वयं स्थानक ये कहानियाँ चौबीस घंटे सुनाते रहते हैं । किसी मंदिर की ध्वजा पर जाने-आने वालों के लिए ऐसी कहानियाँ हर समय लिखी रहती हैं और राहगीर उन्हें पढ़े बिना आगे नहीं जा सकते । एक-एक स्मारक पर ऐसी कहानियाँ हर समय खुदी रहती हैं । कई नालों के पास ऐसी भूत-प्रेत की कहानियाँ जागीर की भौति सुरक्षित रहती हैं । ईशान दिशा वाले झूंगर के पास से निकलें तो दाढ़ी वाला धुंधलीमल तत्काल गाड़ीवान के या साथियों के दिमाग से निकलता है । वला गाँव से चमारड़ी की ओर चलें तो मलाबा गाँव का एक खेत श्रवण की पितृ भक्ति और वला के शापित टीले की कहानी कहने लगता है । अभेल वालों की देहरी पर अभेल की कहानी, तलाजा के पहाड़ों की गुफाओं में बेचारे बनिए की कहानी, थान के पास वाले वन में बाँडे बेली की कहानी, वला के जाल के पेड़ों में मामा की कहानी तथा दूना के तेल में साहसी व्यापारी की कहानी—ये ऐसी कहानियाँ हैं जो अपनी स्थान की महिमा, स्थान का इतिहास और स्थान की कीर्ति गाती हैं । ऐसी स्थानबद्ध कहानियाँ सुनने का समय चौबीसों घंटों का होता है ।

कई कहानियाँ व्यक्तियों के साथ जुड़ी होती हैं । अर्थात् कई कथाकार अमुक भौत की कहानियाँ कहने में कुशल होते हैं । वे व्यावसायिकों की भौति कहानी नहीं कहते । कहानियाँ कहने का उनका शौक ही उनका व्यवसाय होता है । जिस प्रकार संगीत के कई उस्ताद जब मौज होती है, तभी गाते-बजाते हैं । उनका गाने का मन नहीं होता तो वे बड़े से बड़े महाराजा की भी परवाह नहीं करते, इसी तरह की बात कई कहानी कहने वालों के साथ है । जब रंग चढ़ गया तो चढ़ गया, फिर वे कहानी सुनने वालों के थकने न थकने की चिंता नहीं करते, ऐसे शौकीन लोगों का कहानी कहने का समय उनकी धुन का समय होता है । इस धुन का हमें इंतजार करना पड़ता है । ऐसे धुनियों की कहानियाँ निःसंदेह अद्भुत होती हैं, लेकिन खराबी इतनी ही है कि ऐसे धुनी लोग आसानी से हाथ नहीं आते ।

कुछ लोग ऐसे होते हैं कि वे अमुक रंग में हों तभी उनसे कहानी का मजा आता है । कहानी चाहे कैसी ही क्यों न हो, इसकी कोई चिंता नहीं, बस एक बार उन्हें लहर आ जानी चाहिए । अफीम की पीनक में ये लोग जो कहानियाँ सुनते-सुनाते हैं, उनकी कहानियों का संग्रह कथा जगत में एक नई ही दुनिया हो जाता है । 'रोजी घोड़ी की बात' कभी खतम नहीं होती । ऐसे एक दायरे में कही जाने वाली कहानियाँ कम नहीं होतीं । ये बड़ों-बूढ़ों के दायरों में ही चलती हैं, यही इनकी खूबी है । ऐसे कथाकारों की कहानियाँ सुनने का समय वही होता है, जब इन्हें अफीम उग जाती है । अगर इन कहानियों को हम अफीम-जन्मी कहानियाँ कहें तो कैसा मजा रहे ?

हर तरह का काम-धंधा करने वाले लोग अपने काम-धंधों से जब मुक्त होते हैं तभी कहानियाँ कहने बैठते हैं । गरासिये लोग अपने शूरवीर पूर्वजों की कहानियाँ मस्ती से सुनते हैं । गवैये लोग अपने पूर्वज संगीतज्ञों-उस्तादों की ओछी बड़ाई नहीं हॉकते । नाइयों के पास भी हजामत करने से संबंधित किस्से कहानियाँ होती हैं । अरबों और हज्रामों की कहानियाँ हज्राम बार-बार सुनाते हैं । सोना चुराने के कौशल की कहानियाँ सुनारों ने जरूर संभाल कर रखी होंगी । इन तमाम कहानियों में धंधों की खूबियाँ और व्यावसायिकों की मनोवृत्ति चित्रित होती है । ऐसी कहानियाँ जब व्यापारी फुर्सत में होते हैं या जब उन्हें धंधे से छुट्टी होती है तब वे कहने का मौका तलाशते हैं और अपने धंधों की होशियारी का बखान करते हैं । ऐसी कहानियों का समय छुट्टी या फुर्सत का दिन गिना जाए तो कोई एतराज नहीं है । इन कहानियों को 'धंधेदारों की कहानियाँ' शीर्षक नाम देकर एक नया वर्ग बनाया जा सकता है ।

इसके अलावा मल्लाह और मछुआरे भी तो कहानियाँ कहते होंगे । वे कब कहते हैं, यह मेरी जानकारी में नहीं है । इतना तय है कि कई कहानियाँ निश्चित समय पर अच्छी लगती हैं, जबकि कई कहानियाँ स्वच्छंदी होती हैं । कई कहानियाँ अपना समय दूसरों से स्वीकृत कराती हैं जबकि कई कहानियाँ दूसरों के समय के अधीन होती हैं । इस विवेचन से जाहिर है कि कथा-कथन के लिए खास समय होता भी है और नहीं भी । इस संबंध में कहानी कहने वाले को अपने स्तर पर स्वतंत्रतापूर्वक विचार कर लेना चाहिए । □

सातवाँ प्रकरण

कहानी का विशिष्ट उपयोग

कहानी कहने के कई उद्देश्य होते हैं। उनमें से एक उद्देश्य कहानी के द्वारा विद्यार्थियों को शालाओं में चलने वाले तथा अन्य उपयोगी विषयों का शिक्षण कराना है। आज कक्षाओं में विविध विषयों के शिक्षण के लिए विभिन्न पद्धतियाँ आयोजित की जाने लगी हैं। इतिहास और भूगोल केन्द्रानुसारी पद्धति से पढ़ाने में सरल माने जाते हैं। भाषा-शिक्षण में परिचय अथवा प्रत्यक्ष पद्धति की महिमा गाई जाती है। विज्ञान जैसे विषयों में स्वानुभव पद्धति को महत्त्व दिया गया है और सभी जगहों पर व्याख्यान पद्धति की बजाय प्रश्नोत्तर-पद्धति को ऊँचा स्थान दिया गया है। इन तमाम पद्धतियों में हम एक नई पद्धति शुरू कर सकते हैं अथवा यों कहें कि प्राचीन युग की एकमात्र जूनी-पुरानी पद्धति को हम फिर से ताजा कर सकते हैं। यह पद्धति है 'कथा-कहानी की पद्धति'।

चारों धाम की यात्रा करके आने वाली एक बुढ़िया अपने गाँव के छोटे-छोटे बच्चों से लेकर बूढ़े-बुजुर्गों तक को कहानी कहते हुए भूगोल का ज्ञान कराती थी। वह बुढ़िया प्रांतों और वहाँ के मुख्य-मुख्य शहरों के नाम नहीं बताती थी, उत्तर से दक्षिण में और दक्षिण से उत्तर में बहने वाली नदियों के नाम नहीं बताती थी, न यों बताती थी कि पश्चिम में सिंधु नदी आई और उत्तर में हिमालय आया। वह तो अपने प्रवास के दौरान अनुभव किए गए नए-नए और अद्भुत घटना-प्रसंगों को गंभीरता के साथ ऊँचे स्वर में सब को सुनाती थी। कभी वह लाहौर की किसी धरमशाला में किसी ठग के चंगुल में फँसने से किस चतुराई के साथ बच निकली थी, यह किस्सा बताती, तो कभी साथ में चलने वाली कोई महिला शर्म छोड़कर साधु के वेश में मीरां बन गई, यह कथा सुनाती, और कभी काशी के बाजार या दिल्ली के किलों की बातें इस चातुरी से सुनाती कि उनमें सुनने वालों को कल्पित कहानियों से भी ज्यादा मजा आता था।

हमारे पड़ोस में केसर नामक एक वृद्धा का बेटा रहता था, जो बहुचरा माता का भक्त था। देश-परदेश घूमकर डोरे-धागे बनाता था और बारह महीनों में दो वर्षों की कमाई कर लाता था। जब वह घर लौटता तो हम सब उसके आसपास

इकट्ठे हो जाते थे। वह नई-नई चीजें लाता था। काशी के पीतांबर, नाशिक के लोटे—तांबलोटे, गंगाजी का कलश आदि चीजों का प्रदर्शन हम गौर से देखते थे। एक-एक चीज के साथ वह अपने अनुभव की बातें इस तरह से कहता था कि जो अद्भुत कहानियों को भी टक्कर मारें। नाशिक के भूत की बात तो अब भी मेरे कानों में वैसी की वैसी गूँजती है। बीस वर्षों के बाद अब भी उनकी कहानी के 'हुंबक हुंबा, हुंबक हुंबा' शब्द तरोताजा हैं। हमने भूगोल विषय में बहुत बातें पढ़ी और बहुत बातें भूली, लेकिन उनकी तुलना में केसर माँ के बेटे की कहानियों से जितना जाना-सुना, वह सब का सब याद है, इसी से कहानी की महिमा सिद्ध होती है। वे कहानियाँ परियों अथवा राक्षसों की नहीं थीं, वे तो मनुष्य के जीते-जागते अनुभव की कहानियाँ थीं। अनुभव की बातें जब सच्ची होती हैं तो वे भी परियों की कहानियों के ही समान रोचक, सुंदर व आकर्षक लगती हैं।

हमने पूरी महाभारत माणभट (कथावाचक) के मुँह से सुनी थी। कैसा निराला आनंद था उसका। रात को बारह-एक बजे तक माणभट की माण (पीतल का कलश) की रणकार बजती रहती थी और हम सब फटी आँखों और खुले कानों महाभारतमय बन जाते थे। उस चलते-फिरते समाज-शिक्षक माणभट ने हमें पूरी महाभारत कथा-पद्धति से इस तरह सिखाई कि सीखने का भार भी महसूस नहीं हुआ और ऐसा सीखा कि उसमें से ज्यादा से ज्यादा बातें आज भी याद हैं। याद ही नहीं अपितु हमारी स्मृति में वैसी की वैसी तरोताजा हैं, वैसी की वैसी अंकित हैं। जब भी शूर वीरता का विचार आता कि हमें 'मारो, मारो' सुनाई देता, धरती धूजने लगती और उथल-पुथल मच जाती। हम इस तरह के वाक्य बोलने लगते। उस समय माणभट (कथावाचक) का रौद्र चेहरा, कुद्ध भौंहें, फटी आँखें और तना हुआ ललाट आँखों में तैरने लगता है। आज भी इतना समझने-जानने के बाद लगता है कि माणभट कथा-कहानी का शास्त्र हमसे कहीं अधिक जानता था; उसकी कहानी हमारी कहानी से अधिक सफल थी।

चौपाल में काठियावाड़ी राजपूतों के पराक्रम की कहानियाँ इतिहास की कथाएँ ही थीं। इन्हीं कथाओं के आधार पर छोटी-बड़ी रासमालाएँ हैं और आज भी पुरातात्विकों के लिए यह क्षेत्र इतना ही विशाल है। चारण लोग राजपूतों को उनके पूर्वजों के पराक्रम तथा वंशावली की शूरवीरता की कहानियाँ सुनाकर मानो

जानकारी देते थे। इस तरह से एक कान से दूसरे कान चलने वाली कथा पीढ़ी दर पीढ़ी उत्तरती चलती और लोग शिक्षित बने रहते।

आज कवि प्रेमानंद का ओखाहरण विद्यार्थियों को धोकना पड़ता है। घेलाजी शुक्ल चैत्र मास में अपने घर की बगल वाली दीवार के पास पोथी लेकर बैठते थे और हमारी गली के लोग ओखाहरण की कथा सुनने के लिए उनके आसपास बैठते थे। सारी व्यवस्था अपने आप बन जाती थी। ओखाहरण के प्रसंग को वे इतनी सरसता से गाते थे कि हम लोग नींद गँवाकर, शाला का काम करना बंद करके बल्कि कई बार घर से चुपचाप निकल कर, ताकि भाता-पिता को पता न लगे, जाकर कथा सुनने जा बैठते थे। हममें से शैतान लड़के तक जब घेलाजी शुक्ल गाते थे, तब चुपचाप रहते थे। घेलाजी कथा ही नहीं सुनाते थे वरन् प्रेमानंद द्वारा कथा में सहेजकर रखा गया रस भी चखाते थे। उस रसास्वादन की स्मृति ही आज इतना लिखने को प्रेरित कर रही है।

भागवत की कथा (सप्ताह) भी लोककथा का बड़ा समूह है। कथा-कहानी पद्धति से कहा गया पूरा भागवत अनेक लोगों को आज याद है। सात-सात दिनों तक लोग अनथक भाव से भागवत सुनते थे। उसमें धार्मिक भावना से कहीं अधिक कथा-रस की प्रबलता थी। श्रावण मास में चलने वाली हमारी पौराणिक कथाओं को सुनाने के आयोजनों की आज के विद्यालयों में लोकवार्ता के वर्गों से तुलना की जा सकती है। धर्म संबंधी प्रसंगों को भी कहानी के माध्यम से जन-जन तक पहुँचाने की योजना में लोक-शिक्षकों की सामाजिक मानसिकता को सहेजकर रखने की शक्ति का दर्शन होता है। चातुरी सिखाने के लिए तो पंचतंत्र की कहानियाँ खास तौर से लिखनी पड़ी थीं। इसी भाँति अनेक विषय सिखाने हेतु तथा समाज की रुचि-अरुचि संस्कारित करने के लिए कहानियाँ शिक्षक का धर्म निभाती थीं।

आज भी हम कहानियों के द्वारा अनेक विषय सिखा सकते हैं अथवा अनेक विषयों के ज्ञान का मार्ग खोलकर बता सकते हैं। कहानियों के भंडार की कभी छानबीन करके देखें तो पता लगेगा कि कितनी-कितनी प्रकार की कहानियाँ इसमें मौजूद हैं। वहाँ कल्पित कहानियाँ हैं तो सत्य-कथाएँ भी हैं, वहाँ विज्ञान की कथाएँ हैं तो धार्मिक कथाएँ भी हैं, वहाँ कलात्मक वृत्ति जागृत करने वाली कहानियाँ हैं तो कलात्मक श्लाघा सिखाने वाली कहानियाँ भी हैं, वहाँ साहित्य की

आत्मा जगाने वाली कहानियाँ हैं तो इतिहास-भूगोल को सरस बनाने वाली कहानियाँ भी हैं। इन कहानियों का हम शिक्षा की दृष्टि से उपयोग कर सकते हैं।

कहानियों का मतलब हमेशा कल्पित कहानियों से नहीं लिया जाना चाहिए। जिनमें कथा-तत्त्व होता है, उन तमाम घटनाओं का समूह कहानी ही कहलाता है। इतिहास की घटनाएँ भूतकाल की कहानियाँ हैं, खगोल की घटनाएँ आकाश की कहानियाँ हैं; भूस्तर की कहानियाँ पृथ्वी की परतों की कहानियाँ हैं। पृथ्वी कैसे जन्मी, उसके ऊपर वनस्पति, प्राणी और आदमी कैसे आए, चंद्रमा और मंगल पर कैसी स्थिति होगी आदि कहानियाँ परियों की कहानियों से कम आश्चर्यजनक और रोचक नहीं होतीं। 'पगड़ी और तुरा' की तथा तीन राक्षसों की कहानियाँ हमें परी-कथाओं से भी ज्यादा अच्छी लगी थीं। चक्रवात, जलप्लावन या गर्मचश्मे कोई कम बलवान राक्षस नहीं होते कि जिनकी बातें सुनते-सुनते हमारे रोंगें खड़े न हो जाएँ। रेशम की उत्पत्ति या उदई के पराक्रम की, कीड़ियों के कोठार की या किसी जानवर के फॉसिल की कहानी कम चमत्कारिक नहीं होती। संक्षेप में, यदि यों कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि यह सम्पूर्ण विश्व और इसके चमत्कार एक महान एवं अद्भुत महाकथा या कि महाभारत है। यह महाभारत पांडवों-कौरवों के महाभारत से भी विशाल है। इस भारत की कथा अनंत है। इसमें भीम जैसे विशालकाय हिमालय की कथा है तो भीम के एकाघ साधारण सारथी जैसे शुद्ध क्रीट-पतंगे की भी कथा है। पक्षी अपनी उत्पत्ति की एक महाकथा कह रहे हैं; पशु अपनी संतति के इतिहास की एक अजीब कादंबरी सुना रहे हैं; फूल और पेड़-पौधे अपने चेहरों पर अपना वृत्तांत लिखकर हमारे रास्ते में सामने ही खड़े हैं। हम वनस्पति शास्त्र में कहानी लिख सकते हैं, प्राणि-विद्या के अध्ययन में कहानी ला सकते हैं। खरगोश इतने तरह-तरह के क्यों होते हैं, यह कहानी सात समुद्र पार करके अमृत ले आने की कहानी से भी कम भव्य नहीं है। तरह-तरह के रंग-बिरंगे कबूतरों का पूर्वज कोई जंगली कबूतर कैसा था और हम सभी का पूर्वज एक वानर कैसा था, इस तरह की लंबी-लंबी कहानियाँ कम चमत्कारपूर्ण और कम आश्चर्यजनक नहीं होतीं।

ये सभी विषय हम कहानियों के द्वारा सिखा सकते हैं। इसके लिए अनेक-अनेक तथ्यों को कहानी में गूँथ कर उस विषय को अत्यंत रोचक किया जा सकता है।

साहित्य के प्रति हमें बालकों में अभिरुचि जगानी हो तो जो कहानियाँ साहित्य की दृष्टि से पूर्ण हैं, वे उन्हें सुनाई जानी चाहिए। वार्ताएँ स्वतः साहित्य है, यह एक प्रकार की सामग्री है, जबकि साहित्य की दृष्टि को पोषित करने वाली घटनाएँ कहानी के रूप में संजोनी—काम में लेनी, यह दूसरे प्रकार की सामग्री है। साहित्यकारों के चरित्रों में से सुंदर प्रसंगों को कहानी में ग्रंथने का भी एक आनंद होता है। छोटी-छोटी कहानियों के बतौर यदि साहित्यकारों की विचित्रताओं को विद्यार्थियों के समक्ष रखा जाए तो साहित्य के अध्ययन को पोषण मिलता है।

किसी ग्रंथ की रचना का इतिहास या किसी फटी-टूटी पुस्तक के पुनर्जीवन की कहानी कम प्रेरक नहीं होती। किस तरह जेल में बैठे-बैठे या जहाज में सफर करते-करते लेखकों ने पुस्तकें लिखीं, ये कहानियाँ परियों की कहानियों से कम महत्त्व की नहीं होती। अमुक पुस्तक जो आज लाखों की संख्या में बिक रही है, जब उसे ग्रंथकर्ता छपा रहा था, तब वह भूखा मर रहा था। उसे घर का किराया भरने के लिए रसोई के बरतन भाड़े पर देने पड़े थे। अमुक पुस्तक को सरकार ने बार-बार जप्त किया था, फिर भी वह पुनः प्रकाशित होती है; अमुक पुस्तकों को राज्यसत्ता या धर्मसत्ता ने किस तरह जला दिया था, अमुक पुस्तकें एक बार लिखे जाने के बाद खो गई या जल गई या चूहे खा गए, वह फिर से कैसे लिखी गई अथवा अधूरी ही रही, अमुक पुस्तक अमुक लेखक ने लिखी थी, पर अमुक व्यक्ति ने युक्ति से उसे अपने नाम से छपा लिया, यह अथवा इस तरह की प्रत्येक कहानी सुंदर साहित्य की रुचि जगाने वाली तथा जानकारी देने वाली होती है।

साहित्य के अध्येता के लिए मुद्रणकला के इतिहास की कहानी भी कम रोचक नहीं होती। ऋषि-मुनि किस तरह के पदार्थ पर अपनी पुस्तकें लिखते थे, उन लोगों की अत्यंत प्राचीन काल की, धूल की परतें चढ़ी कहानियाँ कम रोचक नहीं होतीं। पत्थर के पृष्ठ की पुस्तक यह एक कहानी बनती है, पेड़ की छाल के पत्रों की पुस्तक यह एक और कहानी बनती है और कागज के पत्रों की पुस्तक यह तीसरी कहानी बनती है। आज के युग में पुरानी से पुरानी कौन-सी किताब है और अंतिम से अंतिम कौन-सी किताब है, ये बातें भी किसी कहानी का विषय हो सकती हैं। किसी पाटण के भंडार की या किसी जले हुए पुस्तक भंडार की बात विद्यार्थी जरूर

एकाग्रता से सुनेंगे ही। ऐसे साधनों की कहानियाँ साहित्य के विद्यार्थी के लिए सचमुच की कहानियाँ हैं, अतः इन्हें कहानियों के रूप में लिखे जाने पर ये विद्यार्थियों को बहुमूल्य ज्ञान देंगी।

जिस तरह हम साहित्य के बारे में बात कर रहे हैं वैसे ही संगीत के बारे में भी बात कही जा सकती है। संगीत विषय के प्रति भी कहानियों से रुचि पैदा की जा सकती है। कहानी से सारे विषय नहीं सीखे जाते, अथवा ऐसा कोई दावा कथा-कहानी का शास्त्र कर भी नहीं रहा। संगीत, साहित्य, कला और ज्ञान मात्र प्रत्येक मनुष्य के अपने हृदय में प्रकट होते हैं, यह सही है; लेकिन आसपास की परिस्थिति के लिए कहानी का कोई कम महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं है। कुदरत ने जो वरदान दिया है वह मूल वस्तु है, पर जिसमें मूल वस्तु न्यूनाधिक है, उस पर परिस्थिति का असर सुलभ है। इसी से कहानी द्वारा शिक्षण कराने की विचारणा संभव है।

संगीत का प्रेम संगीत के श्रवण से उद्भूत होता है, पर संगीत से संबंधित कहानियों से संगीत-प्रेम का अंकुर तो प्रस्फुटित हो ही सकता है। राग-रागिनियों की उत्पत्ति की कहानियाँ एक नया-निराला क्षेत्र है कहानियों का। गवैयाँ का पागलपन या उनकी उपासना-साधना की बातें अद्भुत कहानियों को भी पीछे छोड़ देती हैं। रमा के पिताजी की या किसी खां साहब की संगीत विषयक सनक की किसी कहानी का भी संगीत में कोई महत्त्व है, यह समझाना निश्चय ही बहुत आसान हो जाता है।

जिस तरह नवयुवक इश्क की बातें सुनते तृप्त नहीं होते, उसी तरह जिन लोगों में संगीत का जरा-सा भी शौक है, वे ऐसे उस्तादों की सनक की कहानियाँ सुनते तृप्त ही नहीं होते। संगीत के पीछे कैसी खुमारी चढ़ गई है, अथवा ईश्वर की भाँति संगीत की कैसी पूजा-उपासना हो रही है, इस तरह के बयान कम मनोहर नहीं होते। उस्तादों की मूर्खताओं की बातें मनोरंजक भी होती हैं और बोधदायी भी। संगीत के चमत्कारों की बातें आंदोलित कर देने वाली तथा कल्पित कहानियों को टक्कर मारने जैसी होती हैं। दीपक राग गाने पर शरीर में जलन पैदा होने और मल्हार राग गाने पर वर्षा होने और जलन कम होने की कहानियाँ क्या कम अद्भुत होती हैं! गवैयाँ की प्रतियोगिताओं की कहानियाँ, राज-दरबार में गवैयाँ के मानापमान की कहानियाँ, संगीत कितनी मुश्किल से सीखा जाता है इसकी

कहानियाँ—ये तमाम संगीत के प्रति रस जगाने वाली कहानियाँ हैं। ये तमाम बातें संगीत-शिक्षण में उपयोगी हैं। फिर हम बीन का इतिहास बताते हुए, हारमोनियम के देश की संगीत विषयक खबरें देते हुए अथवा जलतरंग किस तरह तैयार किया जाता है, इसकी जानकारी देते हुए संगीत का शौक पैदा कर सकते हैं। इन तमाम बातों को कहानी के रूप में कहने के बड़े मजे और लाभ हैं। प्रत्येक व्यक्ति संगीत में कुशल नहीं हो सकता, लेकिन प्रत्येक व्यक्ति को संगीत का कद्रदान तो बनाया जा सकता है। शाला के ऐसे वातावरण से और कुछ नहीं तो व्यक्ति में संगीत की कद्र करने की क्षमता तो पैदा होती ही है।

इतिहास अपने आप में कहानी ही है। इतिहास को कहानी के रूप में पढ़ाया जाना चाहिए, ऐसा कहना कोई नयी बात नहीं है। फिर भी आज जबकि पाठ्यपुस्तकें बढ़ गई हैं और इतिहास की किताबें हाथ में लेकर शिक्षक और विद्यार्थी इतिहास धोकर-धुकाकर में लीन हैं, तब तो हमें इतिहास पढ़ाने की पुरानी पद्धति को ही याद करना चाहिए। छापेखाने नहीं बने थे, तब तक तो इतिहास कहानियों में ही रहता था और कहानियों के ही मार्फत एक आदमी से होते हुए दूसरे तक पहुँचता था। आज भी गाँव के अनपढ़ लोग चौपाल पर बैठे-बैठे या खेत में गए हों तो खेत के एक किनारे लेटे-लेटे जूने-पुराने इतिहास को कहानी के माध्यम से ही तरीताजा रखते हैं। कहानी के द्वारा मिलने वाला इतिहास पुस्तकों से प्राप्त होने वाले इतिहास की बजाय अधिक चिरंजीवी होता है। इसके दृष्टान्त हैं हमारे रामायण, महाभारत, भागवत आदि पुराण। लोग-बाग इन विशाल ग्रंथों एवं काव्यों की कहानियों को मौखिक-परंपरा द्वारा ज्यों का त्यों संभाले हुए हैं, इसका मुख्य कारण कहानी ही है। इतिहास के लिए कहानी को ढूँढ़ने नहीं जाना पड़ता। बाबर के किसी जीवन-प्रसंग को कहानी बनाकर पेश किया जाएगा तो विद्यार्थियों की स्वतः जानने की इच्छा होगी कि वह कौन था और उसने क्या किया था। 'ताज' की कहानी तो किसी परीकथा से भी ज्यादा रोचक है। 'अशोक के शिलालेख' की कहानी में कोई शिक्षक चाहे जितना इतिहास भर सकता है। गिरनार पर खड़े-खड़े काठियावाड़ के इतिहास की सौ कहानियाँ सुनाई जा सकती हैं। वडवाण का श्मशान या राणकदेवी का मंदिर राव खेंगार का पूरा इतिहास सुना देता है। शिहोर का 'ब्रह्मकुंड' सिद्धराज के राज्य की कथा का द्वार खोल देता है। काठियावाड़ की कहानी जाननी हो तो इस तरह की सूची बनाई जानी चाहिए : ब्रह्मकुंड, शंकर का

लिंग किसने तोड़ा, लोलियाणे की मीनारें, तलाजा की गुफाएँ, मोर संघवाणी, मूळमाणक, पीरम का मोखड़ाजी, हमीरजी गोहेल, माधा बाव, गीर का जंगल, बरड़ा के ढूँगर ऊपर, चाँच के वृक्ष नीचे आदि-आदि।

हलामण जेठवा और सोन कंसारी की, होथल पदमणी और लाखा फुलाणी की, बिजाणंद और शेणी की, राव मंडलिक और नागभाई की, या जसमा ओडण और सिद्धराज की—ऐसी-ऐसी कहानियाँ इतिहास का जीवंत स्वरूप नहीं हैं तो और क्या हैं? काठियावाड़ में काठी कहाँ से आए, भील पहले कहाँ रहते थे, नागरों के मकान घोघा में ही ज्यादा क्यों हैं, द्वारिका, शत्रुंजय, गिरनार और प्रभासपाटन यात्रा के धाम कैसे बने, ये तमाम घटनाएँ सुन्दर-सुन्दर कहानियों के द्वारा इतिहास ही तो रच रही हैं।

इसी तरह हम भूगोल की कहानियाँ भी तलाश कर सकते हैं तथा विद्यार्थियों में उसके प्रति अनुराग जगा सकते हैं।

हम कहानी द्वारा बालक में प्रकृति-प्रेम जगा सकते हैं। अभी तो जैसे प्रकृति के और हमारे बालक के बीच कोई संबंध ही नहीं। वे वनस्पतियों की जातियों अथवा प्राणियों की संततियों को नहीं जानते; न उन्हें नदियों, तालाबों, पर्वतों या जंगलों के बीच का फर्क पता, न उन्हें यह ज्ञान कि आकाश-पाताल के गर्भ में क्या-क्या भरा हुआ है। वे तो फकत पुस्तकों को पहचानते हैं, उनमें जो कुछ लिखा है उसी को शास्त्रवाक्य मानकर संतोष कर लेते हैं। प्रकृति की बातें क्या कम होती हैं। जिस तरह कल्पित कहानियों का टोटा नहीं है उसी तरह सच्ची कहानियाँ बनाने के साधनों का भी टोटा नहीं है। कल्पित कहानी के द्वारा बालक का ध्यान जब प्रकृति की तरफ खींचा जाता है तो निश्चय ही उनकी ममता और समता का भाव बढ़ता है, जबकि सच्ची कहानियाँ सुनाई जाने से बालक प्रकृति को पहचान सकता है, उसे प्रकृति संबंधी ज्ञान प्राप्त होने लगता है।

'हार के मोती की जीवनगाथा' शीर्षक कहानी से समुद्र की कितनी सारी बातों की जानकारी मिलती है। 'हमारी धरती के भीतर रहने वाले मित्र' शीर्षक कहानी में हम कितनी ही तरह के कीट-पतंगों की बातें कह सकते हैं। 'शहद की बूँद' शीर्षक कहानी में हम मधुमक्खियों के सम्पूर्ण जीवन से संबंधित कितनी सारी जानकारी-परक बातें कह सकते हैं। गुलाब की यात्रा की कहानी, समुद्र के बालकों की कहानी, हवा के राजाओं की कहानी, हमारे शरीर में रहने वालों की कहानी—

कहानी का विशिष्ट उपयोग 165

इस तरह की कहानियों से प्रकृति संबंधी अनेक तरह की बातें बालकों के समक्ष प्रस्तुत की जा सकती हैं। पत्थर की कहानी में तो पूरा भूस्तर आ जाता है। पृथ्वी के बच्चों की बात कहने बैठें तो हम अपने एक चन्द्रमा और शनि के आठ चंद्रमाओं की कहानी कह देंगे। 'एक मच्छर ने कहर ढाया' शीर्षक कहानी में हम मलेरिया, डेंगू आदि तरह-तरह के ज्वरों की कहानी कह देंगे। एक मक्खी के पराक्रम की कहानी में हम बालक के सामने आरोग्य सम्बन्धी कितने ही नियम प्रस्तुत कर सकते हैं। बालकों को कहानियाँ पसंद आती हैं। यह स्वाभाविक है कि सीधी-सादी विज्ञान की कहानियाँ उन्हें पसंद न आएँ। जब हमें विज्ञान की कहानी पसंद आने लगती है तब हम बालक नहीं रहते। लेकिन जब तक हम अद्भुत कहानियों के शौकीन बने रहेंगे तब तक हम इस बाल्यावस्था को नहीं लौटेंगे।

कहानी की वस्तु के साथ बालकों को कम तकलीफ होती है, बस, उन्हें तो कहानी का ठाठ शानदार चाहिए। चाहे भूगोल की बात हो या ब्रह्मांड विज्ञान की, प्रजननशास्त्र की बात हो या अर्थशास्त्र की, अगर उन्हें कहानी के ठाठ में जमा कर कहा जाएगा तो बालक आपकी कहानी सुनेंगे और उसमें आनंद लेंगे। आजकल हमारे चारों ओर अद्भुत प्रकृति का जो विस्तार हो रहा है, अगर उसे एक बार कहानी के रूप में जमा कर देखें तो पता लगेगा कि प्रकृति का ज्ञान कितना आसान और सरल हो जाता है। पृथ्वी गोल है, ऐसा कहकर हम उसे सिद्ध करने लग जाएँ तो बालक को कोई मजा नहीं आएगा। लेकिन अगर हम यों शुरू करें कि : 'एक था नाविक। वह बोला : 'सामने पृथ्वी से छूता हुआ आकाश नजर आ रहा है, मैं उसको जाकर अभी छूता हूँ।' वह नाव लेकर रवाना हुआ। आकाश पर उसकी नजर थी और वह जहाज चलाये जा रहा था। कई दिनों तक चलते-चलते आखिर जहाज जमीन के पास आ गया, पर आकाश तो दूर का दूर ही रहा। तब वह जमीन पर सीधे नजर डालता हुआ चलने लगा। कितने ही जंगल पार कर गया, कितने ही समुद्र पार कर गया, कितने ही पर्वत लौंघ गया, पर आकाश तो सामने का सामने और दूर का दूर ही रहा। यों करते-करते एक दिन वह अपने गाँव आ पहुँचा। उसका घर था समुद्र-तट। उसने सोचा कि ऐसा कैसे हुआ! तब जाकर शोध हुई कि 'पृथ्वी गोल है।' इस तरह की कितनी ही कहानियाँ बनाई जा सकती हैं, जिनमें विषय का सत्य तो हो ही, अन्य घटनाएँ बनावटी या कल्पित हो सकती हैं—ऐसी कहानियाँ गढ़ी जा सकती हैं।

भूगोल से संबंधित एक कहानी काका साहब ने बनाई थी। कहानी की कहानी और भूगोल का ज्ञान मिलता सो अलग। 'जब हम छोटे थे' यों कहते हुए तरह-तरह के विषयों पर कितनी ही कहानियाँ रची जा सकती हैं। अल्पजीवी और दीर्घजीवी पेड़ों के संदर्भ में अभिमानी भिंडे और गंभीर वटवृक्ष की प्रचलित कहानी कही जा सकती है। आवल के उपयोग के लिए आवल को एक बार अपने फूलों को देखकर घमंड हो गया, इसलिए ईश्वर ने उसे चमार कुंड में डुबो दिया शीर्षक कहानी कही जा सकती है। मुझे विज्ञान का ज्ञान कम था अतः मुझे तो कहानी गढ़नी पड़ती थी। पीढ़ों की कहानी कहनी होती तो मैं जंगल में पैदा होने वाले विशाल पेड़ों, उन्हें काटने और लट्टों को पानी में तैरा कर अमुक स्थान तक पहुँचाने की बात कहता और सुंदर, रोचक कहानी गढ़ लेता। कभी ईंटों की तो कभी पत्थरों की कहानी कहता और वे कैसे बनते हैं इसकी मजेदार जानकारी देता। हमारे पास तो ऐसे संग्रह नहीं हैं, पर अंग्रेजी में इस तरह के ढेरों संग्रह हैं। ऐसे साहित्य की एक अलग सूची बनाई जानी चाहिए।

प्रजननशास्त्र की जानकारी देने के लिए भी कहानियाँ कही जा सकती हैं। कल्पित कहानियों में भी इस विषय की वस्तु विद्यमान रहती है। नागपंचमी में, कुमार संभव की कहानी में तथा ऐसी अन्य लोक कथाओं में प्रजनन के गहन सत्य व्यक्त हुए हैं। वनस्पति में फूल कैसे लगते हैं, कई-कई जात के खरगोश कैसे होते हैं, कबूतरों की इतनी सारी जातियाँ कैसे हैं, अंडों में से बच्चे कैसे निकलते हैं आदि प्रसंगों की कहानियों से बच्चों को अप्रत्यक्ष रूप से मनुष्य की उत्पत्ति के बारे में जानकारी मिलती है। इसी से विद्यार्थी का प्रजननशास्त्र में प्रवेश होता है।

ऐसे अनेक विषय हैं जिन्हें कहानियों के द्वारा समझा सकते हैं। कठिनाई सिर्फ इतनी ही है कि घटनाओं में से शिक्षकों को कहानी बनाना आना चाहिए। अगर वे यह नहीं जानते कि किन-किन तत्त्वों की कहानी बनती है तो वे यह काम हर्गिज नहीं कर सकते। जब तक बालक को कहानी का सच्चा रूप-रंग नहीं दिखेगा, तब तक वह उसे सुनेगा ही नहीं। अगर हम बालकों से कहें कि 'शाहजहाँ नाम का दिल्ली का बादशाह था। उसकी एक बेगम थी। बेगम बहुत सुंदर थी। बादशाह उसे बहुत चाहता था। इतना सुनते-सुनते तो बालकों को उबासियाँ आने लगेंगी। ताज की कहानी यों नहीं कही जा सकती। उसे तो इस तरह शुरू करना चाहिए कि 'एक थी बादशाह की बेगम। उसका दाँत हिलने लगा।' इतना कहते ही बालकों

का ध्यान खिंचने लगेगा। उस दौत का क्या हुआ, यह जानने के लिए आगे की कहानी सुनने के वास्ते वे उत्सुक हो जाएँगे। तब हम कहेंगे : 'यों करते-करते उसका दौत गिर गया। तब बादशाह बोला—'बेगम साहब! बेगम साहब! इस दौत पर मैं एक बड़ा-सा महल बनवाऊँगा। ऐसा महल बनवाऊँगा कि उसके जैसा पूरी दुनिया में दूसरा महल कोई नहीं बना सके। महल में लकड़ी कहीं नहीं लगेगी, पूरा महल संगमरमर का होगा। ऐसा महल बनवाऊँगा कि उसके चारों ओर बाग होगा और जगह-जगह फँवारे होंगे।' बेगम बोली : 'तब तो बहुत अच्छा। वह मेरे दौत की बहुत सुंदर कब्र कहलायेगी।' बादशाह बोला : 'कल से ही काम शुरू करवा दूँगा। लाखों खर्च कर दूँगा। मैं ठहरा दिल्ली का बादशाह! मेरा नाम है शाहजहाँ, यह तो तुम जानती ही हो! मेरे जैसा रसिक बादशाह और कौन हुआ होगा?' तब बादशाह ने महल बनवाया। पर उसका क्या नाम रखा जाए? बादशाह बोला : 'बेगम साहब! तुम्हारे नाम पर ही इस महल का नाम रखूँगा।' बेगम का नाम था मुमताज बेगम। बादशाह ने महल का नाम रखा 'ताजमहल'। आगे में यह सुंदर महल आज भी खड़ा है। देश-देशांतर के मुसाफिर उसे देखने आते हैं। लोग-बाग उसे दुनिया का स्वर्ग कहते हैं—ऐसा है यह 'ताजमहल'। जब तुम बड़े हो जाओ तब उस महल को देखने जरूर जाना !'

अगर हमें स्वदेश के अभिमान की कहानी कहनी हो तो 'हमारे गांधीजी जब छोटे थे तब इस तरह कहते थे....' यों नहीं कहनी चाहिए। 'सच्चा मोहन' नामक कहानी में महादेवभाई देसाई ने ऐसी कहानियों का अच्छा संग्रह किया है। गुरुओं की बाल्यावस्था के कई सुंदर प्रसंग बालकों के स्तर एवं रुचि के अनुरूप संकलित किए जाएँ तो उसका बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है।

कहानी के द्वारा किन्हीं विषयों को पढ़ाने की इच्छा रखने वाले शिक्षक को यह बात कभी नहीं भूलनी चाहिए कि कहानी का मूल उद्देश्य बालकों को आनंद देना है। विज्ञान की अथवा ऐसी ही अन्य कहानियों द्वारा विज्ञान आदि विषयों को बालकों के मस्तिष्क में ठसाने के लोभ में कहीं कहानी की आत्मा मर न जाए, अथवा बालकों का आनंद उड़ न जाए, यह बात बसबस ध्यान में रखनी चाहिए। इसी प्रीति किसी को भी अपने मस्तिष्क में भरने नहीं देनी चाहिए कि प्रत्येक विषय को कहानी के द्वारा ही सिखाया जाएगा। विषयों को अनेक तरीकों से सिखाया जा सकता है। एक खास तरह की शिल्पकृति तैयार करने के लिए जिस प्रकार कई-कई

तरह की छैनियाँ अलग-अलग समय में काम में ली जाती हैं, उसी प्रकार शिक्षण के समय तरह-तरह की पद्धतियाँ काम में ली जाती हैं। विवेकवान अध्यापक यह बात भली-भाँति जानता है कि कब उसे कथा-कहानी की शिक्षण पद्धति काम में लेनी है और कब नहीं लेनी। शिक्षकों के लिए इतना जानना ही पर्याप्त है कि कहानी एक प्रबल साधन है जिसे वे शिक्षण कार्य में सफलतापूर्वक काम में ला सकते हैं। इस तरह से कहानी कहने की इच्छा रखने वाले शिक्षक को अपने शिक्षण विषय का उत्तम ज्ञान होना चाहिए। कहानी बुनने की चातुरी तभी फलदायी सिद्ध होती है कि जब कहानी में गूँथा जाने वाला विषय प्रामाणिक होने के साथ-साथ कहानी के वेश में भी हो। अगर ऐसा न हो तो कहानी एक कल्पित कहानी बनकर रह जाती है और विषय-शिक्षण की समस्या कदापि हल नहीं होती। बेशक कहानी के अन्य लाभ तो विद्यार्थी को हाथ लगते ही हैं। □

आठवाँ प्रकरण

कहानी और नाट्य-प्रयोग

छोटे बच्चों में अनुकरण-शक्ति प्रबल होती है। अनुकरण करना एक स्वाभाविक वृत्ति है और यही इस शक्ति का कारण भी है। माता को कपड़े धोते देखकर बालक भी धोना चाहता है, माता को रोटी बेलते देखकर बालक भी रोटी बेलना चाहता है, माता को घर में झाड़ू बुहारते देखकर बालक भी बुहारने को दौड़ता है। हम चलते हैं, बोलते हैं या जो भी काम करते हैं, वह सब बालक सूक्ष्म दृष्टि से देखता है और स्वयं उसी तरह करने लगता है। बाल्यावस्था में बालक जो अनेक विध ज्ञान एवं शक्ति प्राप्त करता है, उन्हें प्राप्त करने के अनेक साधनों में से एक साधन है बालक की यह अनुकरण वृत्ति। यह शक्ति एक साधन मात्र है। साधन के बतौर जब तक अनुकरण-शक्ति को काम में लाया जाता रहेगा, तब तक बालक के विकास की गुंजाइश बनी रहेगी, लेकिन जिस क्षण यह शक्ति साधन न रहकर साध्य बन जाएगी, उसी क्षण से बालक का विकास अवरुद्ध हो जाएगा।

मनुष्य जीवन भर दूसरों का अनुकरण करता रहे और अपने अंतःकरण की इच्छा के अनुरूप काम न करे तो हमें समझ लेना चाहिए कि उसकी अनुकरण करने की वृत्ति को इतना असाधारण पोषण मिल गया है कि जिसके परिणामस्वरूप उसकी अनुकरण-वृत्ति के दबाव से स्वयं स्फुरित क्रिया करने की शक्ति बिलकुल कुचल गई। अनुकरण करने की वृत्ति प्रेरणा है, इस प्रेरणा से व्यक्ति को कुदरती लाभ मिलता है, लेकिन केवल प्रेरणा द्वारा मिलने वाले विकास तक जाकर रुक जाना ही तो पशु से मनुष्य न बनने के समान है। इसी में तो अनुकरण-वृत्ति के अवकाश को मर्यादित करने की जरूरत है। जो बालक दूसरों का ही अनुसरण करता है, उसके बारे में ऐसा कहा जा सकता है कि वह स्वयं अपनी वृत्ति का अनुसरण नहीं करता।

शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य को व्यक्तित्व प्रदान करना है तथा अनुकरण शक्ति अथवा वृत्ति का इस व्यक्तित्व-निर्माण में उपयोग करना है। अतः जिन शिक्षाओं का प्रबंध बालक की अत्यधिक अनुकरणशीलता को सुदृढ़ करने का प्रयत्न करता है और उन पर बल देता है उन-उन शिक्षाओं का प्रबंध बाल-व्यक्तित्व के विकास में

बाधक बन जाता है, लेकिन जिस प्रबंध में बाल-व्यक्तित्व के विकास के निमित्त अनुकरण को मर्यादित रखा जाता है, उस शिक्षण का प्रबंध यथार्थ है। व्यक्तित्व के विकास हेतु अनुकरण हथियार अथवा साधन के बतौर स्वीकार्य है, पर व्यक्तित्व के स्थान पर अनुकरण का अधिष्ठान होना त्याज्य है। हम असली नकली के अंतर को जानते हैं, हम नौकर और सेठ का फर्क जानते हैं, हम यंत्र और इंजीनियर का भेद जानते-समझते हैं। व्यक्तित्व असली वस्तु है, अनुकरण नकल है; व्यक्तित्व सेठ है, अनुकरण नौकर है; व्यक्तित्व इंजीनियर है, अनुकरण यंत्र है।

शिक्षण में अनुकरण का स्थान निर्धारित करने के बाद अब हम यह देखते हैं कि इस वृत्ति को किस तरह का अवकाश है। बालक माता की भाँति काम करने लपकता है तो वह उसे करने देने से इनकार कर देती है; बालक पिता की भाँति काम करने दौड़ता है तो वह उसे करने से मना कर देता है; हम जैसा करते हैं वैसे बालक को करने देना माता-पिता को उचित नहीं जान पड़ता, क्योंकि तब माता-पिता को अपना काम छोड़ कर बालक पर ध्यान देने के लिए रुक रहना पड़ता है; बालक के हाथों से किए जाने वाले काम से होने वाला नुकसान सहना पड़ता है, तथा बालक के अपूर्ण काम से उनको संतोष करना पड़ता है।

बड़ों और छोटों के बीच इस स्थल पर जब विरोध पैदा होता है तब बालक अनुकरण करके वास्तविकता ढूँढने का प्रयत्न करता है। जब बालक अनुकरण की शरण लेकर अपनी आत्मा विकसित करना चाहता है अर्थात् अनुकरण के साधन द्वारा जब वह व्यक्तित्व की तलाश का आग्रह करता है, तब बड़े-बुजुर्ग उसे केवल अनुकरण करने वाला ही बने रखना चाहते हैं। वे उसे नाना विधियों से सभी क्रियाएँ करने का अवकाश नहीं देते और बड़े-बुजुर्गों की क्रियाओं को हूबहू करने देने की बजाय उन क्रियाओं को गलत-सलत करने को छोड़ देते हैं। उदाहरण के बतौर जब बालक सचमुच के छोटे चकले-बेलन से सचमुच में रोटी बेलना चाहता है तब यह कहते हुए कि तुम इस काम को करने लायक नहीं हो, उसे वह काम करने नहीं दिया जाता, लेकिन उसके बजाय बालकों के हाथ में सांसारिक खेल के खिलौने थमा दिये जाते हैं—जो छोट-सा चकला और छोट-सा बेलन होता है। इससे बालक की आत्मा तृप्त नहीं होती, न ही उसके व्यक्तित्व को लाभ प्राप्त होता। लेकिन जब बालक जान जाता है कि उसकी वृत्ति को किसी भी तरह से अवकाश नहीं मिल पा रहा, उसे सचमुच की दुनिया का यथार्थ परिचय प्राप्त करने से सभी

रोक रहे हैं तो वह अपने चारों ओर और अपने अंतःकरण में कल्पित सृष्टि रच लेता है और अंततः उसी में आनंद लेने लगता है। इसी रोक की हुई वृत्ति से घर-घर की, गाड़ी-गाड़ी की, सामान-सामान की विविध क्रीड़ाएँ जन्म लेती हैं। इच्छा से कहिए या अनिच्छा से, बालक को ऐसे खेलों में आनंद लेना पड़ता है। जब बालक को इस तरह की कल्पना में विहरना पड़ता है तब बाल-जीवन का अवलोकन करने वाले लोग भ्रांतिवश मनोविज्ञान का ऐसा सिद्धांत गढ़ते हैं कि बालक वास्तविकता की बजाय कल्पना-प्रधान अधिक है। पर सच में तो बालक इस तरह का कल्पनाशील तो तभी बनता है जब उसे वास्तविकता के प्रदेश से धकेल दिया जाता है। इस बात की मनोविज्ञानी को खबर नहीं होती। ऐसी छोटी-छोटी क्रीड़ाओं में मनोविज्ञानवेत्ता तथा शिक्षाशास्त्री बालकों की ऐसी नाट्य-प्रयोग करने की वृत्ति देखते हैं और इसी वृत्ति पर वे नाट्य-प्रयोग को शिक्षण में लागू करने की विचारणा गढ़ते हैं।

वस्तुतः अनुकरण करने की शुद्ध वृत्ति में ही बालक की नाट्य-वृत्ति के दर्शन होते हैं। अगर इस शुद्ध वृत्ति को अवकाश मिले और बालक को कल्पना के प्रदेश में न धकेला जाए तो बालक सचमुच अपनी नाट्य-वृत्ति का उत्तम फल हमें प्रदान कर सकता है। बालक में नाट्य-वृत्ति तो सहज-स्वाभाविक वृत्ति है ही। इस वृत्ति को दूसरे शब्दों में हम सिद्ध-अनुकरण-वृत्ति भी कह सकते हैं। मनुष्य का अपना जो व्यक्तित्व है, उस व्यक्तित्व को विकसित करने के लिए हम इस नाट्य-वृत्ति का उपयोग कर सकते हैं। इस वृत्ति का सफल और उत्तम उपयोग वहीं होता है कि जहाँ मनुष्य का खुद का व्यक्तित्व ही नाट्यकार का अथवा नट का है। अन्य सभी स्थानों पर अनुकरण साधन है, लेकिन जहाँ व्यक्तित्व स्वयं नट का है वहाँ अनुकरण साध्य भी है। ऐसे अनेक लोग हैं जो सफल नाट्यकार हैं, यही उनका जीवन-व्यवसाय है और इसी में वे भरपूर सफलता प्राप्त करते हैं। ऐसे लोगों के लिए नाट्य-प्रयोग की प्रवृत्ति अत्यंत हितकर है। ऐसे लोगों का अनुकरण, किसी नकल करने वाले कर्मचारी के काम के बराबर नहीं लेकिन इन्हें तो इस काम में ऊपर की वृत्ति का भान होता है, इनके लिए तो यही असल काम है।

सभी बालक नट नहीं होते पर अनेक बालक नटवृत्ति में रुचि लेने वाले होते हैं। कई बालक तो जन्मजात नट होते हैं। जो बालक नट होते हैं उन्हें नाट्य-प्रयोग पद्धति का तमाम शिक्षण देने की योजना होनी चाहिए। उनकी अनुकरण-शक्ति को ऊँचे स्तर तक विकसित किया जाना चाहिए क्योंकि इस विषय में उत्तम अनुकरण

का ही नाम है नट का व्यक्तित्व। अतः शाला में नाट्य-प्रयोग को समुचित स्थान दिया जा सकता है। जिस तरह हमें जीवन में अनुकरण का स्थान देना है उसी तरह शाला में नाट्य-प्रयोग को स्थान देना है, लेकिन जिस तरह हमें यह ध्यान रखना है कि अनुकरण से बालक अपना व्यक्तित्व न खो दे, उसी तरह नाट्य-प्रयोग की प्रवृत्ति से बालक सच्चे अभिनेता बनने के बजाय कहीं नाटकीय बनकर न रह जाएँ। सभी लोग अभिनेता बन जाएँ, यह संभव नहीं, अतः हमें ऐसी अपेक्षा भी नहीं रखनी चाहिए। लेकिन हमें इस ओर भी ध्यान देने की जरूरत है कि अनेक आजन्म अभिनेता समुचित शिक्षण के अभाव में कहीं मारे न जाएँ! विद्यालय में नाट्य-प्रयोगों को स्थान नहीं देंगे तो हम प्रकृति द्वारा सृजित अभिनेताओं को मनुष्य-आकृति से मार डालेंगे! कई बालक ऐसे होते हैं कि जो स्वयं अभिनेता नहीं बन सकते, पर वे नाट्य-रस का स्वाद ले सकते हैं। ऐसे बालकों के शिक्षण की, इनकी रस-वृत्ति को विकसित करने की आवश्यकता है। ऐसे में नाट्य-प्रयोगों को विद्यालयों में समुचित स्थान मिलना जरूरी है।

नाट्य-प्रयोग के लिए अनेक साधन हैं, पर उनमें कहानी सबसे उत्तम साधन है। नाटक में अभिनेता हमेशा स्वयं की पसंदीदा अन्य लोगों की वृत्तियों को खुद में व्यक्त करने का प्रयत्न करता है। अभिनेता अन्य लोगों की वृत्तियों, गुणों और भावनाओं को जितने परिमाण में स्वयं अपने में ढालकर स्पष्ट रीति से व्यक्त कर सकता है उतने ही परिमाण में वह सफल अभिनेता गिना जाता है। उच्च कोटि के अभिनेता में इस प्रकार की स्वाभाविकता है। जो अभिनेता मूल वस्तु की आत्मा को अपने में पूर्णतया प्रकट करता है, उसे तो अपनी प्रतिभा का भान होता ही है, दर्शकों को भी अपूर्व आनंद मिलता है। नाटक की सफलता इसी में निहित है कि नाट्य-वृत्ति वाली आत्माओं को उनकी वृत्ति द्वारा स्व का भान कराया जाए।

बालक जब कहानी सुनता है तो उसकी आँख के समक्ष कहानी के पात्र खड़े हो जाते हैं, कहानी के पात्र उसे जीते-जागते लगते हैं तथा उनकी भावनाओं के साथ अपनी भावनाओं की समरूपता उसके लिए अनुभवगम्य बनती है। जो बालक अभिनेता होते हैं उनको कहानी के पात्रों के भाव-विचार इतने हू-ब-हू और सचेतन लगते हैं कि वे उनके साथ तन्मयता अनुभव करते हैं, यही नहीं, अपितु वे उन पात्रों की भावनाओं आदि को व्यक्त रीति से अनुभव करना चाहते हैं। इसी से वे नाटक करने को प्रेरित होते हैं। शिक्षण में संलग्न अनेक लोगों का अनुभव है कि बालक

कहानियाँ सुनने के बाद अथवा एकाध नाटक देखने के बाद तत्काल उसे अपने ढंग से अनुभव करने, मंचित करने लग जाता है। कहानी सुनने वाले अभिनेता बालक पर कहानी के पात्र ऐसा प्रभाव डालते हैं कि उस कहानी पर नाटक खेले बिना भी वे पात्रों के भावों को जहाँ-तहाँ व्यक्त करते रहते हैं। कोई बालक कहानी के पात्र को मंचित करने लगता है तो कोई कहानी के पात्र का संगीत गाता है, कोई बालक कहानी की ग्राम्यता में आनंद लेता हुआ ग्राम्याचरण करता है तो कोई बालक कहानी की महत्ता प्रकट करने वाले पात्रों की महत्ता रौब के साथ स्वयं में प्रदर्शित करता है। बालक को ऐसा लगता रहता है कि शायद अमुक पात्र यों बोला होगा, यों चला होगा अतः बालक जाने-अनजाने कहानी को नाटक के रूप में खेलता है। नाटक से तो नाटक खेलना फौरन सूझने लगता है पर कहानी से नाटक खेलना एकदम नहीं सूझता। इसका यह अर्थ हुआ कि कहानी कहे जाने से स्वयं में आविर्भूत होने वाली नाट्य-वृत्ति को किस तरह गति दी जाए, इस बात का बालक को सुव्यवस्थित और निश्चित पता नहीं होता। नाटक देखकर नाटक खेलने में भी कहानी को ही मंचित किया जाता है, क्योंकि प्रत्येक नाटक की वस्तु साधारणतया कोई कहानी ही होती है।

बालक में मौजूद इस सहज नाट्य-वृत्ति को यदि तृप्त होने का अवसर मिलता है तो उसे अपनी इस वृत्ति को शाला से बाहर चाहे जिस परिस्थिति में और कल्पित साधनों से तृप्त करने की जरूरत ही नहीं पड़ती। अगर हमें और हमारी वृत्ति को शाला में पोषण मिला होता तो आज हम जितना कुछ दुनिया का नाटक समझ पाते हैं, उससे कहीं अधिक अच्छी तरह से समझ जाते।

बालपन में बालकों से नाटक हो सकता है, ऐसा तो हमें किसी ने बताया नहीं, पर एक बार हमने किसी गाँव में 'संगीत लीलावती' और 'हलामण-जेठवा' का खेल देखा था। उससे हमारे भीतर विद्यमान नाट्यवृत्ति में मानो चिनगारी पड़ी। घर आकर हम नाटक करने लगे। कोई हलामण बना तो कोई सयाजी और कोई सोनराणी। हम हलामण जेठवा नाटक के गीतों की एक किताब लेकर आए और उन्हें कंठस्थ कर लिया। फिर तो नाटक चल पड़ा। गली में खुले आकाश की चांदनी के तले चारों ओर के मकानों के पर्दों के बीच हम वेश पहनकर नाटक करने लगे। हलामण विदेश यात्रा पर विदा हुआ कि उसने गाया :

विदेश वाट जाऊँ छूँ आ वार, घुमली ।
प्रिया-वियोग तापसे आ वार, घुमली ।।

हलामण जंगल में गया। जंगल का दृश्य दिखाने के लिए हमने सड़क पर खड़े नीम-पीपल के पेड़ों से डालियाँ-पत्ते काट कर रंगभूमि को सजाया था।

हमारा नाटक का शौक बढ़ने लगा। धीरे-धीरे बीस-बीस बरस के बड़े लड़के भी हमारे संग आ मिले। वे हमारे मैनेजर, प्रोप्राइटर और व्यवस्थापक बने। तब हमने गली की इजाजत के बगैर 'संगीत लीलावती' का खेल खेला। पूरी गली देखने आई। बौंसों और पर्दों से थियेटर बनाया गया। हमने तरह-तरह के रंगों से मुँह रंग लिए थे तथा मुँह बना ली थीं। पचास बरस के एक आदमी को हमारी यह प्रवृत्ति पसंद नहीं आई। उनका बेटा राजा का नौकर बना था। मैं मंत्री था और एक दूसरा लड़का राजा बना था। राजा बोला : 'नौकर को बुलाया जाए!' मैंने आवाज दी : 'कौन नौकर है? फौरन हाजिर हो!' तभी वह लड़का आया। उसने तीन बार सलाम किया और बोला : 'जी हुजूर! हुकम फरमाएँ!' अपने बेटे को सिपाही बना देखकर उसका पिता चिढ़ गया। उसने हमें गालियाँ निकालीं और मंडप तोड़ डाला। हम उसी वेशभूषा में स्याही से बनीं मुँहों समेत घर में जा घुसे। उसके बाद हमने कई दिनों तक छिप-छिप कर नाटक खेला। नाटक के दिनों में हमें कुछ और सूझता ही नहीं था। शाला में पढ़ने का ढोंग करके नाटक के गीत धोकर थे और घर पर भी यही गृहकार्य करते थे। एक बार तो हमने अपने एक मास्टरजी को हमारा नाटक देखने बुलाया था।

हम रामायण का नाटक भी खेलते थे, विशेष रूप से ऋषियों के यज्ञ बनाते थे। गली की धूल से यज्ञ करते और धूल का ही होम करते। बदमाश लड़कों को राक्षस बनाया जाता। वे यज्ञ विध्वंस कर डालते थे, गंदे कर जाते थे, बिगाड़ जाते थे। यह नाटक अपूर्व उत्साह और असाधारण तल्लीनता से चलता था। इस समय हमें ऐसा लगता है कि हमें उस धूल से खेलते देखने वाले हमारे बड़े-बुजुर्गों को हम शायद पागल ही लगे होंगे।

इतिहास ने भी हमारी नाट्य-वृत्ति को छुआ था। हम ऐतिहासिक पात्रों की वेशभूषा नहीं पहनते थे, बस उनके जैसी अधिकार मुद्रा धारण कर लेते थे। दो दल बन जाते थे और आमने-सामने लड़ाइयाँ होती थीं। लड़ाई सचमुच की होती, अच्छी मारपीट होती और खून भी निकलता था। बाद में शांति-मुलह और संधियाँ होतीं। अधीनस्थ राज्य की ओर से हरजाना भरने का नाटक भी होता था। हारा हुआ दल कोई कागज का टुकड़ा या बटन देता तो वह हरजाना कहा जाता। इतिहास की

लड़ाई में हम महाभारत की लड़ाई की नीति आचरण में ढालते थे। युद्ध का समय तय करते और युद्ध हो जाने के बाद साथ-साथ मिलते-जुलते। दौंवपेचों की बजाय बाहुबल पर हमारा आधार रहता था।

ये हैं हमारी नाट्य-वृत्ति के दृष्टान्त। प्रत्येक बालक में यह वृत्ति एक बार आती है और आकर किसी न किसी तरह का विकास कर जाती है। जन्मजात अभिनेता को तो बड़ा कलाकार बनाती ही है, दूसरों को भी नाट्य-प्रयोगों में रस-मग्न कर जाती है। कइयों को संसार का नाटक समझने की दृष्टि भी दे जाती है। ऐसी वृत्ति को विकास देने का दायित्व शालाओं को अपने ऊपर लेना चाहिए।

सामान्यतया कहानी कहे जाने के बाद अगर बालकों को सूचित किया जाए कि जो-जो बालक इस कहानी पर नाटक खेलना चाहें वे अपना नाम लिखाएँ, तो सच मानें बहुत कम लड़के ऐसे निकलेंगे जो नाटक करने में उत्साह न दिखाएँ। हर लड़का कहानी कहने वाले को कहेगा कि उसे नाटक में रखा जाए। कई अरसिक बालक अपनी पसंद के दूसरे काम करने लगेंगे तो कई नाटक खेलने की बजाय देखने में खुशी महसूस करेंगे। वे नाटक देखने के लिए खड़े रहेंगे।

बालक के दिमाग में पूरी कहानी मौजूद रहती है और शिक्षक के द्वारा किया गया अभिनय उसकी आँखों के सामने रहता है। ऐसे समय बालक मानो खुद शिक्षक बन कर अथवा एक कदम आगे बढ़कर कहे तो कहानी के पात्र बनकर आनंद विभोर हो जाते हैं। प्रत्येक बालक कहानी का एक-एक पात्र बन जाता है। शिक्षक उनमें सहायक होता भी है और नहीं भी। सामान्यतया विद्यालय में जहाँ-जहाँ कहानी पर नाटक खेला जाता है, वहाँ-वहाँ बालकों को सामग्री के बारे में पूरी तरह से कल्पना लोक में विचरण करना पड़ता है। इससे कल्पनाशक्ति खिलती है, ऐसा कई लोग मानते हैं, जबकि कई ऐसा भी मानते हैं कि इससे कल्पना-शक्ति दुर्बल पड़ती है तथा बालक वास्तविकता से निकलकर अंध-मान्यता के लोक में घुस जाता है। इस प्रश्न का यहाँ समाधान करने की उतनी आवश्यकता नहीं है। पर इतना तो अध्यापक को ही ध्यान रखना चाहिए कि वास्तविकता अर्थात् कल्पना का अभाव, यह मान्यता भ्रांतिमूलक है। सच पूछें तो वास्तविकता से ही कल्पना का प्रादुर्भाव होता है। जो कल्पना वास्तविकता से जन्म लेती है वह कल्पना ही कल्पना नाम की पात्र है, बाकी जितनी उत्पत्ति अवास्तविकता में से है वह तो हवाई किले के समान है। इस विषय पर आगे कभी चर्चा की जाएगी। अभी तो इतना ही समझना

है कि जब बालक नाटक करें तब संसार के नाटक में जैसे अन्य लोग कल्पना करते हैं वैसी कल्पना न करें अपितु यथासंभव अपना वास्तविक नाटक करें तो उत्तम रहे। यहाँ साधन-सामग्री का प्रश्न उपस्थित होगा। नाट्यशाला के नाटक जितनी सामग्री की तैयारी इन बाल नाट्य-प्रयोगों में जरूरी नहीं है, तथापि मर्यादा में रहते हुए जितनी वास्तविकता लाई जा सके, उतनी लाई जाए तो अच्छा रहे।

नाटक के पात्रों का चयन करना, वे क्या-क्या बोलें और कैसे अभिनय करें आदि बातें तय करने का काम बालकों के लिए छोड़ देना चाहिए। इस छूट से थोड़ा-सा समय ज्यादा लगेगा, पर इससे बालकों को नाटकशाला का स्वराज्य चलाना आ जाएगा और वे अपनी वास्तविक अभिरुचि प्रकट करेंगे। कौन किस काम के लिए अधिक योग्य है, यह स्वयं बालक ढूँढ़ लेंगे, किसे नाटक से हटाया जाए, यह वे स्वयं तय कर लेंगे। कहानी का कौन-सा भाग बालकों को अधिक पसंद है, कौन-से भाग का अभिनय उनके हृदय में पैठ गया है, कहानी ने उन पर किस रस का प्रभाव डाला है, यह बात तत्काल पता लग जाती है। शिक्षक को तो मात्र दृष्ट बन कर देखते रहना है। जहाँ बालक मदद माँगें वहाँ उन्हें मदद देनी है तथा बालकों का नाटक देखकर उन्हें अभिनंदन व प्रोत्साहन देना है। जब नाटक खेला जाएगा तो शिक्षकों को पता लग जाएगा कि कौन-सा बालक सच्चा अभिनेता है, कौन-सा बालक भाषा की दृष्टि से नाटक में प्रविष्ट हो रहा है और कौन-सा बालक अपनी क्रिया करने की वृत्ति से इसमें सम्मिलित हुआ है। बालक अपने आप संवादों का चयन करेंगे तो शिक्षक को तत्काल पता लग जाएगा कि किस बालक को कौन-से संवाद प्रिय होने से उन्हें नाटक के किस पात्र की कौन-सी वृत्ति अधिक पसंद आई। बालकों को स्वतंत्र रीति से स्वतंत्र आबोहवा में नाटक करने देंगे तो हम उनके रुझानों को जान सकेंगे। क्षत्रिय की भूमिका अमुक बालक ही पसंद करेगा, कुछ औरताना किस्म के लड़कों को स्त्रियों की भूमिका एकदम पसंद आ जाती है। मूर्ख और अनाड़ी छोकड़ों को बंदरों, चोरों, शेर आदि की भूमिका लेनी अच्छी लगती है। कई बहादुर बालकों को हवलदार, धानेदार या सिपाही की भूमिका अच्छी लगती है। कई माँगने की वृत्ति वाले बालकों को गाँव के पुरोहित की या महाराज की भूमिका लेने की इच्छा रहती है। कई विनोदी या मजाकी बालकों को विदूषक या मसखरे की भूमिका रुचती है। रसिक बालक वेश पहनने में, चलने में या बोलने की छटा में अपनी रसवृत्ति प्रकट करते हैं। संगीत के शौकीन बालक

गायन वृत्ति को तृप्त करने का एकाधिक अवसर तलाश करते हैं। अगर बालकों को स्वयं नाटक करने का शौक लग जाए तो उन्हें कहानी के नाटकों से इतिहास के नाटकों पर, भूगोल के नाटकों पर तथा अन्य विद्यालयी-विषयों के नाटकों पर ले जाना संभव है। यहाँ महत्त्वपूर्ण सिफारिश यह करने की है कि नाटकों का काम लगभग ऐच्छिक होना चाहिए। मात्र नट वृत्ति वाले बालकों को पर्याप्त लाभ मिले, इसी विचार से नाटक की प्रवृत्ति को अवकाश मिलना चाहिए।

अब हम जरा यह विचार करें कि नाट्य-प्रयोग के लिए कैसी कहानियाँ पसंद की जानी चाहिए। कई कहानियाँ श्राव्य होती हैं अतः सिर्फ सुनाने लायक होती हैं। इनमें वर्णन की प्रधानता होती है। कई अत्यंत क्रिया-प्रधान होती हैं। इनमें घटनाएँ द्रुत गति से घटित होती हैं। जबकि कई कहानियाँ संवाद-प्रधान होती हैं। नाटक के लिए संवाद और क्रिया दोनों वस्तुएँ जिसमें हों, ऐसी कहानियाँ काम की हैं।

कौआ-मैना की कहानी, कौआ और कोठिम्बा, कौआ और गैहूँ का दाना, पेमला-पेमली तथा चमार ने मारी चिड़िया-चिड़ा राणा बैर लेने चला आदि कहानियाँ संवाद और क्रिया दोनों से भरपूर हैं।

ज्यादातर बाल-कथाएँ नाटक के रूप में मंचित की जा सकती हैं, इस नाते चयन की पर्याप्त स्वतंत्रता रहती है। चयन के उक्त नियम में सख्ती की जरूरत नहीं है। बालक जिन कहानियों को खेलना चाहते हैं वे खासतौर से खेलने योग्य हैं, ऐसा मानने में कोई एतराज नहीं है। अगर वे ढंग से उसे नहीं खेल सकेंगे तो उनका ही मजा मारा जाएगा और अपने आप भूल से चुनी हुई कहानी उनके हाथ से निकल जाएगी, उसके बजाय कोई दूसरी कहानी आएगी।

अगर शिक्षक भी नाटक में साथ-साथ खेलना चाहता है तो उसे दो-एक बातों पर ध्यान देना होगा। उसे नाटक के मैनेजर की तरह काम नहीं करना है अपितु एक पात्र की भाँति काम करना है। दूसरी बात यह कि अगर वह अभिनय नहीं कर सकता तो उसे करने की जरूरत ही नहीं है। अगली बात यह, कि अगर उसे नाटक से सच्चा अनुराग नहीं है, वह अपने में बाल-भाव प्रकट नहीं कर सके तो नाटक में शामिल होने की बजाय उसे दर्शकों में जाकर बैठ जाना चाहिए। शिक्षक को इस भाँति में नहीं पड़ना है कि अगर वह खुद नाटक में शामिल नहीं होगा तो

बालकों को मजा नहीं आएगा। ऐसी धारणा भ्रांतिमूलक होती है, बालकों को इससे नुकसान ही होता है। जब बड़ी उम्र के लोग छोटे बालकों में मछलियों के समूह में मगरमच्छ की भाँति फिरेंगे तो मछलियों की स्वतंत्रता में बाधा पड़ेगी ही। सब बात तो यह है कि अगर बालक शिक्षक से अपने नाटक में शामिल होने का अनुरोध करें तभी शिक्षक को शामिल होना चाहिए।

शिक्षक को एक बात ध्यान में रखनी है कि अगर सभी बालक नाटक में शामिल न हों तो उसे चिंता करने की जरूरत नहीं है। सभी बालकों को शामिल करने की युक्ति रचने की कोई जरूरत नहीं है। किंडरगार्टन पद्धति में सभी बालकों में आहिस्ते-आहिस्ते नाटक के प्रति रुचि जागे और वे इसमें भाग लें, ऐसी स्थिति पैदा करने का मोह है। ऐसा मोह व्यक्ति-स्वातंत्र्य वाली शालाओं में नहीं होना चाहिए। नाट्य-प्रयोगों का इतना ही उद्देश्य शिक्षक के समीप होना चाहिए कि जिन बालकों में नट-वृत्ति हो, उनमें उनका पूर्ण विकास हो, जिन बालकों में नाट्य-प्रयोगों के प्रति रुचि हो, उनकी वह रुचि और अधिक दृढ़ हो तथा जिन बालकों में नाट्य-प्रयोगों को लेकर भ्रांत धारणाएँ हों, उन्हें दूर किया जाए।

एक यह बात भी ध्यान से नहीं उतरनी चाहिए कि जिस प्रकार नाटक मात्र कल्पना नहीं है, उसी तरह वह केवल अतिशय स्थूलता भी नहीं है। अतिशयता में नाटक की कला का नाश हो जाता है। अत्यधिक शोभा, रौबदार वेशभूषा, अधिक मात्रा में पगड़ियाँ और पूछें—ये सब नाटक की आत्मा के लिए हानिकारक हैं। नाटक तो कला का विषय है अतः इसमें सर्वांग संतुलन की सुरक्षा होनी चाहिए। □

नवाँ प्रकरण

कथा-कहानी और नीति-शिक्षण

कहानी के द्वारा अन्य विषयों के शिक्षण की हिमायत कुछ लोग ही करते हैं और कुछ लोगों ने ही की है, लेकिन कहानी के द्वारा नीति-शिक्षण की हिमायत तो लगभग सभी लोग करते रहे हैं। अगर यों कहें तो गलत नहीं होगा कि नीति-शिक्षण और वह भी उपदेश देकर नीति शिक्षण लोगों के मन का एक भूत है अथवा उनके मन का एक पागलपन है। कथा-वार्ता का उद्देश्य लोगों को नीतिमान बनाना है। ईसपनीति और पंचतंत्र का उद्देश्य विद्यार्थियों को बुद्धिमान अर्थात् नीतिवान बनाना है। धर्मनीति की कहानियों की किताबें इस उद्देश्य को हासिल करने के लिए बाहर निकल पड़ी हैं। 'नीति-शिक्षण' का उद्देश्य इस उद्देश्य से अलग नहीं है। जब-जब भी कोई व्यक्ति कहानी सुनाने बैठता है तब-तब उसके सामने से नीति की बात शायद ही कभी दूर खिसकती होगी। चाहे कहानी आनंद के लिए हो, बीमार को राहत पहुँचाने के लिए हो, पूर्वजों के संस्मरण कराने हेतु हो अथवा किसी भी जात-बिरादरी के व्यक्ति की स्तुति या निंदा के बतौर हो, पर कहानी में से कुछ न कुछ नीति का सार श्रोताओं के समक्ष प्रस्तुत करने की वृत्ति कथाकार में नहीं होती, ऐसा नहीं है। बहुत सारे लोग तो ऐसे हैं कि जो कहानी सीधे-सीधे नीति-बोध नहीं करती, उसका अनादर करते हैं, और कई एकमार्गी नीतिवादी लोग ऐसे होते हैं कि जो कल्पना के बगैर बनी हुई कहानियों को ही कहानी मानते हैं, अन्य को नहीं। इसका कारण यह बताया जाता है कि जो कहानी जोड़ी हुई होती है अथवा बनावटी या खोटी है, वह खोटी होने के कारण असत्य का उपदेश देने वाली है और ऐसी असत्य बातों का आश्रय लेकर नीति बोध देने का काम अनीति को फैलाने जैसा है। ऐसा मनुष्य ही नीति के विचारों से बिगड़े हुए मस्तिष्क की निशानी है, ऐसा कुछेक विचार करने से मालूम पड़ता है। जब शिक्षक समय-विभाग चक्र के तख्ते के सामने जाकर गंभीर भाव से कहानी कहने बैठता है, तो उसके मुँह पर अपने आप कहानी का सारांश अर्थात् कहानी का रहस्य आ जाता है कहानी चाहे जैसे सुनी जाए, विद्यार्थियों को उसमें मजा आए या न आए, लेकिन अंत में सारांश तो तैयार ही खड़ा रहता है। सारांश बताना पहली

180 कथा-कहानी का शास्त्र

भूल है और फिर नीति के सिद्धांतों पर सादे स्वरूप से लेकर सूक्ष्म स्वरूप तक की मीमांसा करना दूसरी भूल है।

गूढ़ और उसके जैसे अन्य लोग कहानी में नीति-मीमांसा भरने के पूरे शौकीन हैं। जब प्रत्येक कहानी के पीछे नीति और नीति ही आकर खड़ी हो जाती है तब तो कहानी का पूरा ही स्वरूप विकृत हो जाता है, कहानी की आत्मा नष्ट हो जाती है और धीमे-धीमे कहानी सुनने वाले की इच्छा कम होती जाती है। कहानी चीनी चढ़ाई हुई कड़वी दवा जैसी नहीं होती, यह तो स्वयं ही मीठी दवा होती है। कहानी स्वयं ही अपनी शक्ति धारण करती है। कहानी में विद्यमान रहने वाले गूढ़ बोध को समझाना कहानी का प्रयोजन नहीं है, अपितु कहानी का प्रयोजन तो कहानी कहने में निहित है।

विद्यालय में जब कभी अनीति का प्रसंग पैदा होता है अथवा जब कभी ऐसी स्थिति बनती है जो शिक्षक को अच्छी नहीं लगती, तब-तब समझदार शिक्षक कहानी सुनाने लगता है। ऐसी कहानी को अधिक मूल्यवान कहा जाता है क्योंकि ऐसी कहानी प्रसंगोचित होती है। नीति का बोध देने का जब प्रसंग आता है तब कहानी कहने की तत्परता वाला कुशल गृहपति (रेक्टर) गृह की शोभा स्वरूप होता है, छात्रावासों के नीति निर्माताओं की ऐसी मान्यता है। जब लोहा गरम होता है तभी उस पर चोट मारना सार्थक होता है, इस न्याय से जब कोई मनुष्य नीति-मार्ग से च्युत होता है, जब वह नीति से विमुख होता है, तभी उसे उपदेश देने की जरूरत होती है, ऐसी मान्यता आज पूरे समाज की है।

रोग होने के कारणों का पता लगाने की बजाय रोग मिटाने के अब तक के अर्द्ध-सफल प्रयत्नों जैसा यह 'वार्ता कथन' अर्थात् कहानी सुनाने का आयोजन है। इस तरह कहानी को नीति-शिक्षण के माध्यम के रूप में मानने वाले लोग बालकों में नीति-शून्यता अथवा नीति के रोग की उपस्थिति का आरोपण करते हैं। परिणामों को देखने वाला और परिणामों के साथ लड़ने वाला व्यक्ति विज्ञान के प्रदेश में उल्टे रास्ते चलने वाला है, यह बात समझ में आती है, लेकिन नीति-शिक्षण के कार्य में हमें इतना भी समझ में नहीं आता। कोई भी रोग, कोई भी अनीतिमयता परिणाम से भयंकर नहीं होती परंतु अपने कारणों से भयंकर होती है; परिणाम तो कारणों के सहज प्रतिफल हैं। कारणों को निर्मूल करने के बजाय मनुष्य को परिणाम के साथ लड़ने का प्रयत्न त्याग देना चाहिए। मनुष्य नीतिवान है या अनीतिवान अथवा वह

कथा-कहानी और नीति-शिक्षण 181

नीतिवान क्यों नहीं होता और अनीतिमय क्यों हो जाता है, इन कारणों की खोज में ही उसकी दवा विद्यमान रहती है। उन कारणों की ओर से बेफिक्र रह कर उनके परिणामों पर मरहम-पट्टी करना मनुष्य को स्वाभाविक के बजाय अस्वाभाविक बनाने जैसा है।

यह सच है कि रोग प्रत्यक्ष रूप से दिखना बंद हो जाता है, पर रोग अधिक गहरे उतर कर अपनी जड़ें जमा लेता है। इसी से आज समाज में, तत्त्वतः विचार करें तो खुले आम अनीति का आचरण करने वाले लोगों की बजाय छिप-छिप कर अनीति का आचरण करने वाले लोग अधिक हैं और इस वर्ग की संख्या बहुत अधिक है, अतएव गुप्त रूप में अनीति का आचरण करने वाले लोगों को ही बहुमत में हल्का गिना जाता है। सच्ची बात तो यह है कि जो नीतिप्रिय है वह नीति-दंभी से ज्यादा पतित नहीं होता। पहला तो आकाशदीप जैसा है, जो अपने रास्ते पर बढ़ने वाले सभी सज्जनता रूपी जहाजों को बचाकर चलने हेतु रास्ता दिखाता है, जबकि दूसरे वाला पानी के नीचे, श्वेत लहरों के नीचे छिपा हुआ लोहे की चट्टान जैसा है जिससे टकरा कर रोजाना कितने ही जहाज डूब जाते हैं। ऐसे में मरहम-पट्टी करने की क्रिया से दंभी लोग पैदा करने की बजाय नीति-शिक्षण का काम हाथ में न लेना सही सुरक्षित कदम है।

आज मनुष्य इतना अनीतिवान बन गया है कि वह स्वयं अनीति का भय चारों तरफ देखता है। उसकी वृत्ति सभी में अनीति आरोपित करने की हो चली है। अधिकांशतः नीति-शिक्षण के झंडाबरदार अपने हृदय में विद्यमान अनीति के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए निकले हुए होते हैं। ये लोग स्वयं से नहीं लड़ सकते, इसीलिए समाज से लड़ने के लिए प्रेरित होते हैं। जो आदमी जिस वस्तु से डरता है, उसे दुनिया से खदेड़ बाहर करने को दौड़ता है, लेकिन जो आदमी जिस वस्तु से निर्भय है, उसकी उस वस्तु को खदेड़ बाहर करने में रुचि नहीं होती। महान् सत्त्व से विहीन व्यक्ति हमेशा अपने स्वभाव के विरुद्ध लड़ने के लिए धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र और तत्त्वज्ञान का उपयोग करता है, लेकिन निशाना मारने का साधन मनुष्य को बनाता है, यह उसकी भूल है। माता-पिता नीति-शिक्षण की बातें करते हैं, संस्था के संस्थापक नीति-शिक्षण की हिमायत करते हैं, शिक्षक नीति-शिक्षण के लिए दौड़ते हैं और लेखक नीति-शिक्षण के लिए पुस्तकें लिख देते हैं। ये सभी अधिकांशतः स्वयं अपने ही विरुद्ध, अपनी ही न्यूनताओं और अपूर्णताओं के विरुद्ध बगावत करने की

मेहनत करते हैं। इनमें केवल भाड़े पर काम करने वालों और उच्च सत्त्व वालों को माफ़ी मिल सकती है। ऐसी वृत्ति वाले नीति-शिक्षण के नाम पर स्वयं में विद्यमान अनीति को दूसरों के लहू में थोकने का काम करते हैं। तभी तो जैसे-जैसे नीति-शिक्षण बढ़ रहा है वैसे-वैसे दंभ भी बढ़ता जा रहा है; और दंभ धूर्तता से अधिक भयंकर है। जहाँ सौंप अधिक होते हैं और जहाँ सौंप का त्रास दिमाग से निकलता नहीं, वहाँ की वाचनमाला और कहानियों में सौंप को मारने की युक्तियाँ मिल जाती हैं। दुर्बल देश की कहानियों में दुर्बलता मिटाने और स्वस्थ रहने की महिमा की बातें अधिक देखने में आती हैं। जिस देश, प्रजा या व्यक्ति को जिस रोग से ग्रसित होना पड़ा हो, उस देश, प्रजा या व्यक्ति की कहानियों में उस रोग का अस्तित्व व्यक्त होता ही है। 'नीति-शिक्षण', 'नीति-शिक्षण' का प्रचंड घोष करने वाली जनता की नसों में भयंकर से भयंकर अनीति के तत्त्व घुस गए लगते हैं, और यही इसका निदान है।

ईसाई लोग मनुष्य को जन्म से ही जैसे पतित मानते हैं, वैसे अगर हम भी मानते हों तो नीति-शिक्षण की कहानियाँ सर्व प्रथम सुनाने की धृष्टता करने का विचार करें, यह बात दूसरी है कि यह धृष्टता बेकार जाने की है। परंतु जो बालक जन्म से अनीतिवान नहीं है, यदि ऐसा हम मानें तो अभ्यासक्रम में नीति-शिक्षण को स्थान देना हमारी भावी संतति का अपमान है, मानवीय आत्मा का अपमान है। अगर नीति-शिक्षण देने वाले लोगों के मन-मस्तिष्क की मनोवैज्ञानिक दृष्टि से जाँच करें तो पता लगेगा कि वे अनीति से डरते हैं और उससे भी ज्यादा वे समाज में अव्यवस्था के भय से डरते हैं। इन लोगों की यह मान्यता है कि अमुक नीति के नियमों से मनुष्य सामाजिक बनता है। मनुष्य को मनुष्य बनने देने के बजाय उसे सामाजिक बनाने की वृत्ति में नीति-शिक्षण को आगे करना पड़ता है। मनुष्य हमेशा अपना दौर चलाना चाहता है; राजा राज चलाना चाहता है, प्रजा प्रजातंत्र चलाना चाहती है, गृहपति गृह चलाना चाहता है, शिक्षक शाला चलाना चाहता है और व्यक्ति व्यक्तित्व चलाना चाहता है। सच पूछे तो कोई किसी को पूरी तरह स्वतंत्र नहीं रहने देना चाहता। एक प्रजा दूसरी प्रजा को अपने जैसी प्रजा बनाने का प्रयत्न करती है। जो लोग अपनी प्रजा को उनकी जीवन शैली से मुक्त करने का बीड़ा उठाते हैं, उनको अपना बलिदान देना पड़ता है। उनको कोई नीति-विशारद, नीति शास्त्री अथवा शिक्षक नहीं कहता, वरन् उन्हें समाजद्रोही, प्रजाद्रोही और

अनीति-प्रेरक कहा जाता है। ऐसे लोगों में सुकरात, ईसा मसीह या महात्मा गाँधी जैसों के नाम दिये जा सकते हैं।

नीति-शिक्षण मनुष्य को आत्मा की स्वतंत्रता से भ्रष्ट करने की कोशिश करता है। जो-जो व्यक्ति अपने जीवन में नीति पर चलना नहीं चाहते, जो-जो व्यक्ति स्वयं नीतिवान नहीं हैं, और जिनके मन, वाणी एवं कर्म नीति के जीते-जागते दृष्टान्त नहीं हैं, वही लोग नीति-शिक्षण के पूरे पक्षधर बनते हैं, उन्हीं के हाथ में नीति-शिक्षण शोभा देता है। उन्हें अपने जीवन से कुछ बताना तो होता नहीं, अतः वही लोग नीति-शिक्षण के लिए कथाओं का उपयोग करते हैं। जब माता-पिता अपने जीवन की सुगंध नहीं फैला सकते तब वे कल्पित अथवा ऐतिहासिक जीवन की कथाओं से उसका बदला उतारने का प्रयास करते हैं। यही कारण है कि प्रसंग-प्रसंग के अनुसार नीति कथा के लिए तैयार रहने वाला पिता प्राकृत लोगों में बड़ा विद्वान और नीतिज्ञ कहलाता है। सच बोलने में जो बल है, सुंदरता है, चमत्कार है, वह बल, वह सौंदर्य, वह चमत्कार सत्यनिष्ठ मनुष्य की किसी कल्पित कहानी में नहीं होता।

मैं अपने मामाजी के घर पर रहते हुए अध्ययन करता था। मेरे मामा स्टेशन मास्टर थे। (हरगोविंद भाई भावनगर के स्टेशन मास्टर थे तथा मोट्य भाई के नाम से विख्यात थे। वे दक्षिणामूर्ति विद्यार्थी भवन के संस्थापकों में से थे। उन्हीं के आह्वान पर गिनुभाई वकालत छोड़कर शिक्षण की ओर आए थे।—अनुवादक) जब भी वे संध्यादि नित्य कर्म में बैठे होते थे तब महाराजा भावसिंहजी को भी प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। उन्होंने कभी भी जल्दबाजी में संध्या पूरी नहीं की। इस निर्भयता और दृढ़ता ने मेरे मन पर जो छाप छोड़ी वैसी किसी भी नीति-कथा ने नहीं छोड़ी। उनके जीवन से जो सत्य प्रवाहित होता था वह मुझे बहुत अच्छा लगता था। उनकी संध्या उनका रोजाना का व्यायाम थी, उनकी निर्भयता उनकी आत्मा का परिमल थी। उनके व्यायाम ने तो मुझ पर प्रभाव नहीं डाला, लेकिन उनका परिमल तो मेरी आत्मा में सहज ही प्रविष्ट हो गया है।

मेरा एक मित्र है। उसे नीति-शिक्षण का बहुत शौक है। वह नीति-शिक्षण का कुछ भी मतलब नहीं जानता, ऐसी मेरी मान्यता है, पर वह सिर्फ एक बात समझता है, और वह है शिष्टाचार। वह जब भी उनके बालकों से कोई गलती होती है या उनमें कोई कमी नजर आती है, तब एकाध उपदेश वाक्य या उपदेश कथा

सुनाने लगता है। वह उनसे इसी तरह का साहित्य पढ़ने की हिमायत करता है और उन्हें वही देता भी है कि जो उपदेशात्मक हो।

बालक पर ऐसी क्रियाएँ करने से उनका बहुत नुकसान होता है। वे अपना व्यक्तित्व खो देते हैं, गुलामी स्वीकार करते हैं तथा स्वतंत्र विचारशीलता के स्थान पर परतंत्र विचारधारा का अनुसरण करते हैं। बालक नीतिवान न बनकर नीति विषयक कहानी की हकीकतों से लदा, उनका बोझा ढोता एक निरीह प्राणी बन जाता है। किसी भी विषय की हकीकतों को जानना और उस विषय के रहस्य को जानना दो अलग बातें हैं। कई विषयों की हकीकतों मात्र को जानने से मनुष्य का व्यवहार चल सकता है, पर कई विषयों के रहस्यों को जाने बिना हकीकतें भार-स्वरूप अथवा निरर्थक रह जाती हैं। नीति की हकीकतों को लेकर यही बात है।

हकीकतों से मनुष्य नीतिवान नहीं बन सकता। हकीकतों के ज्ञान से मनुष्य में नीति संबंधी रुचि हो पाना अल्प मात्रा में संभव मान लें तब भी रहस्य-भेद के बगैर यह रुचि भी अल्पायुषी ही बनकर रह जाती है। शिक्षक पढ़ाई में, माता-पिता जीवन में और गुरु व्यवहार में जब भी हकीकत और रहस्य में फर्क देखेंगे तो वे सर्वप्रथम रहस्य बताएँगे और तब हकीकत बताएँगे। रहस्य की हम सुगंध से उपमा दे सकते हैं। गुलाब की हकीकत और उसके ज्ञान को जाने बगैर उसकी सुगंध तो संभव है। गुलाब में से सुगंध सहज ही निकलकर मनुष्य की घ्राणेन्द्रिय को आह्लादित करती है। इस आह्लाद के कारण ही मनुष्य गुलाब का ज्ञान पाने को प्रेरित होता है। नीति की सुगंध का अगर बालक को स्पर्श हो जाए तो फिर वह नीति के गुलाबी रंग और उनकी गुलाबी पंखुड़ियों का परिचय प्राप्त करेगा ही करेगा। जब आदमी को आत्मा की पहचान हो जाती है तो शरीर को ढूँढ़ते कितनी देर लगती है। मेरा एक मित्र कहता है : 'नीति-धर्म तो मनुष्य के पसीने से निकलने चाहिए।' फिर भी मुँह से (उपदेश से) निकलने वाले नीति-धर्म में उनका विश्वास है, यह एक नई बात है।

पर प्रत्येक व्यक्ति मानता है कि वह स्वयं नीति-शिक्षण और धार्मिक-शिक्षण देने का अधिकारी है। मनुष्य दूसरों का भला करने का अधिकार बिना इजाजत लिए धारण करना चाहता है, पर इसके लिए साधनों के उपयोग को लेकर सावधानी रखनी पड़ेगी। हमें अधिकार है यह बात ही गफलत भरी है। दूसरों का चरित्र गढ़ने का जिम्मा अपने ऊपर लेना जोखिम का काम तो है ही, इससे भी अधिक मूर्खता

भरा भी है। बावजूद इसके आश्चर्य है कि इस काम को आसान माना जाता है! मनुष्य को आसान से आसान काम वह लगता है, जो उसे खुद नहीं करना होता। इसीलिए नीति-शिक्षण के श्रवण का और कथन का काम आसान और सहज है। जो मनुष्य उपदेश दे सकता है, जो कहानी कह सकता है, वह नीति-शिक्षण दे सकता है, ऐसा विचार लोगों को अस्वाभाविक नहीं लगता। इसी से प्रत्येक शिक्षक नीति-शिक्षण के लिए योग्य माना जाता है। जिनको कहानी कहना तो क्या, पूरा बोलना भी नहीं आता, ऐसे प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापक जब कहानी कहने लगते हैं और नीति की बातें बताने लगते हैं तब हँसी तो आती ही है, पर उससे भी कहीं ज्यादा दुःख होता है। कहानी में नीति का रहस्य न हो, तब भी चाहे जहाँ से नीति का रहस्य ढूँढ़ निकालने के रोग से ग्रसित कई लोग हैं, उन लोगों में ज्यादातर अध्यापक और माता-पिता हैं। अगर नीति-शिक्षण के इतने अधिक प्रयत्नों से थोड़ी-बहुत नीति भी बालकों में उतरी होती तो आज अनेक विद्यालयों से नीति-शिक्षण का कालांश हटा दिया गया होता अथवा हमें 'नीति-नीति' की पुकार आज करने की जरूरत ही नहीं पड़ती।

कहानी द्वारा कहे या उपदेश द्वारा कहे, मुख से कहे या लेख से कहे, मनुष्य को नीति ज्ञान देने का जबर्दस्त शौक लग गया है। इसका कारण कुछ और नहीं तो यह तो है ही कि मनुष्य में नीति की वृत्ति कहीं से आती है और कैसे विकसित होती है, इसका उसे वैज्ञानिक ज्ञान नहीं है। जहाँ-जहाँ हम शरीर-विज्ञान से संबंधित बातों का ज्ञान होता है, वहाँ-वहाँ हम शरीर-शास्त्र से संबंधित गलतियाँ नहीं करते। उदाहरण के लिए हम समझते हैं कि बालक को चलना, दौड़ना, बातें करना एकाएक नहीं आ जाता, अपितु एक लंबे समय तक स्वयं प्रेरित प्रयास करने के बाद ही बालक इन क्रियाओं पर अधिकार करता है। इनके लिए हम भी जल्दबाजी नहीं करते, करें भी तो हमारा वश नहीं चलेगा, यह हमें पता है। इसीलिए जब हम अपने आफिस जाते हैं या किसी गाँव जाते हैं तो छोटे बच्चे से यह कह नहीं जाते कि 'जब तक मैं वापिस लौटूँ तब तक मेरे जितने लंबे हो जाना या मेरे जितने वजनी हो जाना।' ऐसा कहे तो हमारी मूर्खता मानी जाएगी। इसका कारण यह है कि हम शारीरिक विकास के सामान्य नियमों को तो जानते ही हैं। लेकिन जब हम बालक को उपदेश देते हुए या कहानी कहते हुए यह कहते हैं कि देखो, अब तुम सच बोलना या चोरी मत करना, तो हम बालक का और स्वयं अपना मजाक ही उड़ाते

हैं और मानसिक-विकास के भयंकर अज्ञान का प्रदर्शन करते हैं। शारीरिक-विकास के नियमों और क्रियाओं से भी ये मानसिक विकास के नियम और क्रियाएँ अधिक उलझन भरी और कठिन हैं—यह बात हम नहीं जानते, तभी तो हम कथन मात्र से मनुष्य को शिक्षित-संस्कारित करने को भागते हैं। मानसिक-विकास की अपेक्षा आत्मा की शक्ति का विकास करना अधिक कठिन है। मनुष्य शरीर की शक्ति को बढ़ा सकता है, मनुष्य बुद्धि का वैभव प्राप्त कर सकता है लेकिन अगर मनुष्य आत्मा की शुद्धि प्राप्त करने में पूरी जिंदगी व्यतीत कर दे, तब भी सफलता दूर ही रहेगी। जो विकास अत्यंत कठिन है, सूक्ष्म है, उसी विकास को सिर्फ कहानी से सिद्ध करने की धृष्टता करके हम अपनी विचित्रता ही दिखाते हैं। सत्य का पाठ पढ़ाकर बालक से सत्य की अपेक्षा रखने वाला व्यक्ति या तो मूर्ख होता है, अज्ञानी होता है या फिर ढोंगी। हम मूर्ख हैं, पर इससे भी बढ़कर अज्ञानी और ढोंगी हैं।

प्रश्न उठता है कि तब हमें क्या करना चाहिए। कहानियाँ कहने में तो कोई एतराज है ही नहीं। अनेक रहस्यों से युक्त कहानियों में नीति के रहस्य वाली कहानियों का समावेश हो जाता है तथा रसों वाली कहानियों में धर्म रस वाली कहानियों का भी स्थान है। लेकिन हमें धर्म या कि नीति का बोध करने के लिए कहानी नहीं कहनी चाहिए। कहानी तो कहानी के वास्ते ही, कहानी का मुख्य उद्देश्य सिद्ध करने के लिए कही जानी चाहिए। जिस कहानी का कथन सम्पूर्णतया सफल होता है वह अपने प्राणों को स्वतः फैला सकती है, उसमें से उसकी महक अपने आप बाहर फूट निकलती है। अन्य कहानियों की तुलना में धर्म की कहानी में कोई विशेषता नहीं होती, यही समझ कर जिस कहानी में धर्म नीति उद्देश्य रूप में विद्यमान हो, उसे कहा जाना चाहिए। मनुष्य का स्वभाव ही ऐसा है कि जो चीज उस पर लादी जाती है, वह उसे पसंद नहीं आती, लेकिन उसी वस्तु को जब वह स्वेच्छा से स्वीकार करता है तो उसका उसे पूरा लाभ प्राप्त होता है। नीति-शिक्षण से युक्त कहानी में नीति के विचार कहानी द्वारा स्पष्ट देखने में आएँ, तो इसमें कहानी कहने वाले की विशेषता माननी चाहिए। यह कला का विषय है। कोई कलाकार ही नीति का सौंदर्य बता सकता है। कहानी कहने की कला वाली तूलिका अगर यथार्थ रीति से नीति का पक्ष ले सके और अनीति को तुच्छ बताते हुए बहिष्कृत कर सके तो बालक पर सहज ही नीति-अनीति का अंतर तथा नीति का प्रबोध अंकित हो सकेगा।

नीतियुक्त कहानी ही कहलाई जाए दूसरी कहानियों न कहलाई जाएँ, ऐसी मान्यता एक असंगत और अगम्य मन का प्रतिबिम्ब है। दो-एक बातें स्पष्ट कर लेनी चाहिए। गुण-दोष, अच्छा-बुरा, परस्पर सापेक्ष है। एक के अभाव में दूसरे की जिदगी है, एक के गुण से दूसरे का दोष है। अकेली नीतियुक्त कहानी तो कल्पना में ही होती है। नीति ठसाने वाली कहानियों में अनीति का खंडन और नीति का मंडन तो होगा ही। पापी को सजा देने के लिए कल्पित नरक को स्थान देने वाले धर्म में पुण्यशाली को स्वर्ग देने की कल्पना भी करनी पड़ी है। अंधकार प्रकाश का अभाव है, इससे अधिक कुछ नहीं, ऐसी वैज्ञानिकों की मान्यता है। कई लोगों का कहना है कि सच्ची घटनाओं को ही कहानी में सँजोया जाए और कल्पित प्रसंगों को असत्य घटना मानते हुए छोड़ देना चाहिए। कहानी की दृष्टि से कल्पित और सच्चे प्रसंगों में फर्क नहीं होता। कहानी में गुंथे गए प्रसंग कथा की दृष्टि से कल्पित हैं, लेकिन घटनाएँ तो सारे संसार में घटित होने जैसी होती हैं या कि मनुष्य की वास्तविकता संबंधित कल्पना में समा सकती है। अतः नीति-शिक्षण में तो विज्ञान की कहानियों जैसी वास्तविकता पर ही रची गई कहानियों पर आधार रखना चाहिए, इस विचार को थोड़ा-सा ही मान दिया जाना चाहिए। मनुष्य-जीवन की वास्तविकता पर ही कहानियाँ गढ़ कर नीति-शिक्षण देने के दावों को भी हम इसी तरह गिनती में नहीं ले सकते। मनुष्य जीवन की वास्तविकता का उल्टा पहलू भी है। वास्तविकता वास्तविकता होने से गुण-दोष दोनों से भरपूर है। वास्तविकता के गुण-दोषों का खुलासा हमेशा नहीं मिल सकता, क्योंकि प्रकृति की कृतियाँ अगम्य और अगणित हैं। अतः हम ऐतिहासिक सत्य-घटनाओं पर नीति कथाओं की रचना करना चाहें तो औरंगजेब की कहानी का खुलासा हम नहीं दे सकेंगे। असत्य घटनाएँ भी मनुष्य में स्वाभाविक हैं, यदि इतिहास से ऐसा आभास मिलता है तो हम उसे रोक नहीं सकेंगे।

अनेक प्रकार की कहानियाँ सुनाये जाने के हिसाब से चलती हैं और इनमें नीति से युक्त कहानियाँ भी आ जाती हैं। वे कहानियाँ अपनी आत्मा की सुगंध को अपने आप कथन की कला द्वारा प्रकट करें तो इससे अधिक कुछ और करने की जरूरत ही नहीं है।

बेशक हमें अनीति-उपदेशक कहानियाँ बालकों को नहीं सुानी हैं। अच्छी कहानियों की जैसे अपनी सुगंध होती है वैसे ही बुरी कहानियों की अपनी दुर्गंध

होती है। पर अनीतिपरक कहानियाँ कौन-सी होंगी और कौन-सी नहीं, इस पर भी विचार कर लेना चाहिए।

नीति और अनीति का आधार सामाजिक तथा धार्मिक आदर्श पर अवलम्बित रहता है। एक धर्म या समाज के लोगों को कई कहानियाँ भयंकर लगती हैं तो दूसरे धर्म या समाज के लोगों को वही स्वाभाविक लगती हैं। बहुधा नीति को लोग शिष्टता के दर्जे तक पहुँचा देते हैं, इस वजह से जो उन्हें स्वयं को अशिष्ट लगती हैं उन्हें वे अनीतिपरक कहने की भूल कर बैठते हैं। नीति के सार्वत्रिक व सर्वमान्य सिद्धांतों को भंग करने वाली कहानियों का हमें उच्छेद करना है, पर जो नीति के नाम पर चल सकें ऐसी असंस्कृत या ग्राम्य कहानी को छोड़ न दें। कई लोग शिष्टता और नीतिमयता का अपने मस्तिष्क पर ऐसा दृढ़ लेपन किए हुए होते हैं कि वे ग्राम्य कहानी के शत्रु बन जाते हैं। उनका लेपन ढोंग का पर्याय मात्र होता है। मनुष्य अपना ढोंग हर बार जानता ही हो, ऐसा नहीं होता अथवा उसका ढोंग हमेशा इरादतन नहीं होता अतः वह स्वयं ढोंग और सत्य के अंतर की परख नहीं कर सकता। एकदम स्वच्छ कहानी की इच्छा रखने वाले को जरा भी ग्राम्यता-युक्त कहानी देखते ही एक तरह का आघात लगता है। आघात की यह क्रिया गलत शिक्षा और रूढ़ि अथवा आचार की जड़ता से उत्पन्न होती है। जिस तरह हिस्टीरिया जाने-अनजाने मनुष्य द्वारा स्वयं अपने ही मस्तिष्क में घुसाया हुआ और विकसित किया हुआ रोग है, उसी तरह नीतिमयता, नीतिमयता की धुन, ग्राम्यता का विरोध भी एक तरह की रुग्ण मस्तिष्क की दशा है। यह रोग मनुष्य खुद पैदा करता है।

मनुष्य को शिक्षा देने की शुरुआत करने से पहले ही उसमें कई तरह के संस्कार मौजूद रहते हैं। कई संस्कार वह अपने साथ लेकर आता है। कई संस्कार उत्तराधिकार के रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी उसमें उतर आते हैं तो कई संस्कार उसे समष्टि के विकास के उत्तराधिकार रूप में मिले होते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो मनुष्य इस समष्टि का अंग है अतः उसे समष्टि के विकास के परिणाम का फल मिलता है। समष्टि का ही अंग होने से उसे समष्टि के विकास के पहलू का भी फल मिलता है। फिर वैयक्तिक और पूर्वजों के संस्कार के विषय में भी कुछ मानना चाहिए। संस्कारों को मनुष्य अपने पूर्वजन्म के जीवन में से लाता है, ऐसा मानने के भी कारण हैं। इसके अलावा मनुष्य के स्थूल जन्म से पहले के गर्भावस्था के दिनों

में पड़े संस्कार भी एक अलग संस्कार-समूह है। जन्म के बाद माता, पिता, जाति, गली, समाज और संक्षेप में कहें तो जिन्हें सम्पूर्ण वातावरण के संस्कार कहा जाता है, उन सभी का जबर्दस्त प्रभाव बालक पर विद्यालय में पढ़ने आने से पहले पड़ चुका होता है। संक्षेप में इन प्रभावों को निम्न प्रकार से गिनाया जा सकता है :

1. पूर्व जन्मों के संस्कार
2. समष्टि के विकास का फल
3. पूर्वजों का उत्तराधिकार
4. जन्म से पूर्व गर्भावस्था में पड़े प्रभाव
5. समाज का प्रभाव
6. वातावरण का प्रभाव।

ऐसे प्रभाव वाला, ऐसे संस्कार वाला, ऐसी पूर्व जन्मागत वृत्तियों वाला मनुष्य जब शिक्षा लेने बैठता है तो शिक्षा उसकी इस सम्पूर्ण स्थिति की उपेक्षा करती है, और मनुष्य जिस स्थिति पर खड़ा है, वहाँ से उसे ऊपर ले जाने की बजाय वह मनुष्य को स्वयं अपनी इच्छा के मुताबिक गढ़ना चाहती है। ऐसे समय बलवान व्यक्ति शिक्षा के समक्ष बगावत खड़ी करके अपने निजी स्वभाव का अनुसरण करता है, पर सभी लोग ऐसे बलवान सत्त्वशील नहीं होते। निर्बल मनुष्य प्रचलित प्रणाली के गुलाम बनकर उसके बल से दब जाते हैं और अपने स्वभाव को छिपा देते हैं। स्वभाव नष्ट तो होता नहीं। स्वभाव का नाश करने में शिक्षा कभी सफल नहीं रही, न कभी रह सकेगी। परंतु स्वभाव को उन्नत करने में, उच्चगामी करने में तथा उसकी दिशा बदलने में शिक्षा सफल हो सकती है। मनुष्य के विकास-क्रम पर गौर करें तो पता लगेगा कि मनुष्य धीरे-धीरे जड़ता से चेतनता की ओर बढ़ता गया है, अश्लीलता से वह ग्राम्यता में गया है, ग्राम्यता से शिष्टता में गया है और वहाँ से मनुष्यता में पहुँचा है। शिक्षा प्रबंध प्रत्येक मनुष्य को मनुष्यत्व प्रदान करना चाहता है, मनुष्य जहाँ जिस कक्षा में खड़ा है, वहाँ से आगे बढ़ने की उसकी मति नहीं है। अतः शिक्षा के दबाव से मनुष्य की स्वाभाविकता टल जाती है और उसमें अस्वाभाविकता आ जाती है, मनुष्य की दृष्टि में प्रत्येक वस्तु की उपयोगिता और कीमत में फर्क पड़ जाता है। अश्लीलता की कक्षा में खड़े मनुष्य को भी मनुष्यत्व का वेश पहनना पड़ता है और अपने स्वभाव पर लेपन करना पड़ता

है। आज प्रत्येक शिष्ट कहलाने वाले तथा गिने जाने वाले मनुष्यों से सत्य कहलवाएँ तो उन्हें कहना ही पड़ेगा कि इतनी अधिक शिक्षा मिलने के बावजूद उसमें से ग्राम्यता तो क्या अश्लीलता भी नहीं गई। अगर वे भलीभाँति आत्म निरीक्षण करें तो उन्हें पता लगेगा कि वे तो अपनी ग्राम्यता और पामरता को ढँक कर बैठे हैं, वह अब भी उनमें से नष्ट नहीं हुई। जब दबाववश नीच वृत्तियों पर उच्च वृत्ति का चोला पहनना पड़ता है तो नीच वृत्तियाँ किसी न किसी एकांत स्थल से, किसी छिद्र में से निकलने का प्रयास करती हैं। शिष्ट माने जाने वाले और कहे जाने वाले लोगों से एक ही प्रश्न है कि वे अपने निजी जीवन में कितने ग्राम्य, कितने अशिष्ट और कितने अश्लील हैं? जैसे-जैसे सुधारने का दंभ बढ़ता है, जैसे-जैसे दंभ की परत और मोटी होती है, वैसे-वैसे गुप्त ग्राम्यता का बल प्रबल होता है—गुप्त अश्लीलता में अधिक रस आता है। जिन लोगों की जाहिर ग्राम्यता स्वाभाविक है, वे लोग व्यवहार में या जीवन में कुछ ही ग्राम्य हैं। जो लोग अपने स्वाभाविक जीवन में अश्लील नहीं तो बहुत असम्य लगते हैं वे अपने नीतिगत जीवन में बहुत शुद्ध होते हैं।

अफ्रीका के जंगली लोगों में कम से कम विकार हैं, लेकिन हमारे सुशिक्षित एवं पैरों से सिर तक वस्त्रों से ढँके रहने वाले लोग विकारों से भरपूर हैं, यह बात सिद्ध करने के लिए प्रमाण की जरूरत नहीं है। ग्राम्यता में पलने वाले गाँव के लोग और कई कारीगर तो ऐसे हैं कि जिनके होठों पर अश्लील शब्द और गंवारु भाषा सूखती तक नहीं। ऐसे तमाम लोग निश्चय ही हल्के और नीति की दृष्टि से पतित हैं, ऐसा नहीं है। सचाई तो यह है कि इन लोगों पर शिक्षा का दंभी आवरण चढ़ा हुआ नहीं होता, अतः वहाँ किसी दुराव-छिपाव की जरूरत नहीं पड़ती, उल्टे उनके हृदय में स्वयं जो बोलते हैं, उसका अर्थ अति परिचय के कारण कुछ नहीं रहता। संक्षेप में इतना तो स्वीकार कर ही लेना चाहिए कि ग्रामीण लोग शिष्ट नागरिकों की तुलना में अधिक निर्दोष होते हैं।

इतने विवेचन के बाद अब हम ग्राम्य कहानियों पर आते हैं। अश्लील कहानियों को तो छोड़ ही दें। अब ऐसी कहानियाँ लगभग बहुत कम हो गई हैं, क्योंकि मनुष्य का विकास इतना प्रगतिशील हो गया है। सवाल कहानियों का है। ग्राम्य कहानियों से डरने जैसी कोई बात नहीं है। इन्हें लेकर हम विवेकपूर्वक निर्णय ले सकते हैं। ग्राम्य कहानियाँ जहाँ-जहाँ निर्दोष लगे वहाँ-वहाँ उन्हें रखने का प्रयत्न

किया जाए, और जहाँ-जहाँ वे दुष्टापूर्ण, अनीतिपरक हों, वहाँ-वहाँ उन्हें एकदम त्याग देना चाहिए। निर्दोष ग्राम्य कहानियों को हम दो तरह से उपयोग में लें। उन्हें ऊँचा उठाएँ, शिष्ट बनाएँ—यह तो उपयोग में लेने का एक प्रकार हुआ। इन कहानियों को उपयोग में लाकर हम जन-समुदाय की ग्राम्यता का पोषण न करें अपितु ग्राम्यता को निकल जाने दें और उनके बदले शिष्टता को आने का मौका दें। दीवार खड़ी करके वृत्तियों को रोकेँ नहीं, अपितु वृत्तियों के निकल जाने हेतु दरवाजा बना दें। ग्राम्य-कहानियाँ कहकर सुनाने में ऐसे दरवाजे-खिड़कियाँ रहते हैं। जब ग्राम्य कथाओं का जहर निकल जाए तब तुरंत उन्हें ऊँचे स्तर पर ले जाकर उनमें से ही विनोद की कहानियाँ बना लें। सच पूछें तो ग्राम्य कथाएँ विनोद वार्ताएँ ही हैं। विनोद ग्राम्य है क्योंकि अभी हम और हमारा समाज ग्राम्यता से मुक्त कहाँ हुआ! अधिक गंभीर, अधिक कृत्रिम, अधिक संस्कारित मनुष्य को श्रीयुत रमणभाई का 'हास्य मंदिर' भी निरा ग्राम्यता का प्रदर्शन लगेगा। ऐसा लगे तब भी ग्राम्यता की यही दवा है। विनोद तो गंभीर सागर के भीतर बनी मीठे पानी की झील है। ग्राम्यता में आज समाज का विनोद है। उपदेश से अथवा आदेश से या कि लालच-भरे शिक्षण से अगर हम ग्राम्यता को दबा देंगे तो हमारा विनोद भी साथ ही साथ समाप्त हो जाएगा और हम शोकग्रस्त हो जाएँगे। इसी से निर्दोष ग्राम्य कहानियों को स्थान मिला हुआ है, स्थायी रूप से नहीं, तभी तक जब तक कि समाज स्वयं ग्राम्यता से न छूटे! जैसे-जैसे व्यक्ति अथवा समाज ग्राम्यता से छूटे वैसे-वैसे उसे उच्च विनोद मिलना ही चाहिए। जब तक प्रजा में यह उच्च विनोद देने की ताकत नहीं आती तब तक ग्राम्य कहानियों को बहिष्कृत नहीं किया जा सकता।

एक और दृष्टि भी है। कुछ लोगों का खयाल है कि ऐसी कहानियों से मनुष्य ग्राम्य हो जाएगा। खयाल गलत नहीं है। ज्यादातर तो ऐसी कहानियाँ हल्के विनोद के बिजुके स्वरूप होती हैं। किसी राजा से प्रपीड़ित किसी चारण की जब इच्छा हुई कि वह राजा की जन-जन में जाकर निंदा करेगा तो उसने राजा का बिजूका बनाया और देश-परदेश में घूमने निकल पड़ा। बिजूके को लोगों के बीच पाकर कहने लगा : 'भाइयो! हमारा राजा ऐसा है।' बिजूका जन मानस में राजा के प्रति नफरत के भाव भरने लगा। इसी तरह से तमाम कहानियाँ भी मनुष्य स्वभाव के प्रति समाज में नफरत पैदा करती हैं। कहानी तमाम अच्छी-बुरी बातों का

बिजूका होती है। ग्राम्य कहानियों का अस्तित्व और उनका प्रचार यह भी समाज की क्षुद्रताओं का बिजूका है।

जिस प्रकार राजा के बिजूके को तोड़ डालने, गाड़ देने या जला देने से राजा की शुद्धि नहीं होती, उसी प्रकार समाज के बिजूके को हमारे साहित्य से या विद्यालयों से निकाल बाहर करने से समाज की ग्राम्यता या क्षुद्रता नष्ट नहीं होगी। उल्टे, बिजूके को एक बार फैला कर, हमारे प्रति नफरत पैदा करके उसे ऊपर उठाना होगा। इसका यह अर्थ नहीं कि ग्राम्य वार्ताओं की ही शरण ली जाए, पर इतना तो है ही कि निर्दोष ग्राम्य कहानी के समक्ष अपना ढोंग लंबे समय तक न चलाएँ। फिर ग्राम्य कथाओं को संस्कारित करते चलें और समाज की ऊँची कक्षा तक चढ़ते चलें, यही परामर्श है। कहानी स्वयं में सामाजिक क्रांति का साधन होती है, यह बात हमें भूल नहीं जानी चाहिए। इसी से जहाँ-जहाँ ग्राम्यता छिपी हो वहाँ-वहाँ ग्राम्य-वार्ता के प्रयोग से उसे बाहर निकाला जाए, उसे पकड़कर संस्कारित किया जाए और जहाँ ग्राम्यता खुले आम हो, वहाँ जाकर ग्राम्यता को अभयदान दिया जाए तथा उसके साथ उच्च रुचि के विनोद को रखा जाए। ऐसी कहानियाँ भी उनमें जो मर्म है, उसे ध्यान में रखते हुए अगर कही जाती हैं तो उससे नुकसान के बजाय लाभ ही होगा। □

दसवाँ प्रकरण

लोक-वार्ताएँ और कल्पना-शक्ति

लोक-कथाओं को सुनाये जाने से कल्पना-शक्ति विकसित होती है, इस कथन में थोड़ा-बहुत मतभेद है। डॉ. मोटेसरी के अलावा अभी तक के सभी शिक्षाविदों की मान्यता है कि लोक-कथाएँ सुनाई जाएँगी तो अवश्य ही कल्पना-शक्ति विकसित होगी। कल्पना अर्थात् जो वास्तविकता नहीं है। तब तो कल्पना का हमेशा सत्याश्रयी होना संभव नहीं। कुछ समय पहले पॉल रिशाद कहते थे कि सभी कवि झूठे होते हैं।^{*} इस अर्थ में अगर यों कहें कि कल्पना मात्र असत्य है तो कोई एतराज नहीं है। पर कल्पना और सत्य में विरोध नहीं, इसी भाँति कल्पना की सृष्टि करने वाले असत्यवादी हैं—ऐसा कहने का भी कारण नहीं है। कला में और काव्य में जो अद्भुत है, वह कल्पना की सृष्टि है, और इस कल्पना से संसार में सत्य को हानि नहीं पहुँचती।

वास्तविकता के उस पार मन और बुद्धि के उड्डयन की जो शक्ति है, वह कल्पना-शक्ति के विकास का प्रतिफल है। नियाग्रा प्रपात को देखे बिना उस प्रपात की बात को समझा जा सकता है। भूतकाल केवल कल्पना के बल से उधेड़ा जा सकता है, अनंत अंतर को कल्पना के द्वारा ही भेदा जा सकता है तथा अगम्य तत्त्वों को कल्पना से ही ग्रहण किया जा सकता है—यह अनुभव भूल जाने का नहीं है।

कहानियाँ कल्पना-शक्ति खिलाती हैं इसका अर्थ इतना ही है कि वे मनुष्य को उस सूक्ष्म, दूरस्थ, इन्द्रियों से परे, स्थूल बुद्धि और अवास्तविक सृष्टि में प्रविष्ट होने, उसे समझने तथा उसका आनंद लेने की शक्ति देती हैं। कहानियों के द्वारा कल्पना-शक्ति के विकास के कारण मनुष्य का साहित्य में गहरे प्रवेश होता है, कला की दृष्टि प्रखर होती है तथा उसे इस दुनिया की ईश्वरीय कविता को समझने की दृष्टि प्राप्त होती है। इसका कारण यह है कि संसार में साहित्य, कला और जो भी सुंदर है, रूपवान है, अकलित दिखाई देता है, वह सब एक ईश्वर और मनुष्य के मस्तिष्क से उपजी कल्पना का फल है।

* All poets are liars.

कल्पना-शक्ति के विकसित न होने की स्थिति में ही मनुष्य पत्थर के देवता के पीछे उसके प्रभुत्व को देख नहीं सकता। कल्पनाशील आर्यों ने ही हमें उपनिषद् के काव्य दिये हैं। जो लोग कल्पना की गर्दन लंबी करने में सिद्धहस्त हैं वही पुरातत्व की सच्ची शोध कर सकते हैं। कल्पना के द्वारा ही आज समर्थ लोग भविष्य में दृष्टिपात कर सकते हैं।

बुद्धि और इन्द्रियाँ अपने यथार्थ विकास के बाद ही जिस तरह मनुष्य के लिए उपयोगी होती हैं वैसे ही सच्चे विकास के बाद ही कल्पना मनुष्य के लिए उपयोगी होती है। साधारण मनुष्य को तो सुमधुर संगीत भी शोरगुल लगता है, वैसे ही जिस व्यक्ति की कल्पना-शक्ति संस्कारित नहीं हुई, उसे जहाँ कल्पना का क्षेत्र है वहाँ निरी वास्तविकता लगती है। आज चित्रकला में दो प्रकार की विचारधाराएँ काम कर रही हैं। एक पक्ष कहता है कि कला वस्तु का अनुसरण करे। दूसरा पक्ष कहता है कि वस्तु के उस पार जाकर वस्तु में जो सृष्टि आरोपित की जा सके, उसे आरोपित करके कला का सृजन किया जाना चाहिए। पहला पक्ष यह आग्रह रखता है कि वृक्ष जैसा है वैसा ही चित्रित किया जाना चाहिए। जबकि दूसरा पक्ष कहता है कि उगा हुआ वृक्ष तो सभी ने देखा है भला उसे चित्रित करने में कौन-सी कला है। लेकिन वृक्ष के चित्र में जो सुन्दरता लाई जा सके, जो कोमलता पैदा की जा सके, सुंदर रंगों का जो मिश्रण प्रस्तुत किया जा सके, उसे क्यों न प्रस्तुत किया जाए। कला वस्तु की प्रतिकृति है तो फिर कला का स्थान ही कहाँ है? प्रकृति सम्बंधी चित्र में एक साथ सुंदर सूर्यास्त, एकाग्र निर्मल सरोवर, वृक्षों के कुंज, मटमैले पर्वत आदि सब संजोने का प्रयोजन भिन्न-भिन्न वस्तु में विद्यमान वास्तविकता को कल्पना के बल से एकत्र करना है। सभी सरोवरों में हंस नहीं होते, सभी सरोवरों के तट पर कमल नहीं खिलते, सभी सरोवरों में छोटी-सी नाव नहीं रखी होती, फिर भी चित्रकारों को ऐसा सुयोग करना अच्छा लगता है और हमें भी इसी में आनंद आता है। इसका कारण यह है कि हम कला में सिर्फ वास्तविकता ही नहीं चाहते। हंस को उसके आकार से बड़ा चित्रित नहीं किया जाता, कमलों को उनके रंग से भिन्न नहीं बनाते, नाव मन की कल्पना मात्र होती है। फिर भी ऐसा एक सम्पूर्ण दृश्य तो चित्रकार की कल्पना ही है।

ऐसी ही बात कहानियों के बाबत है। हरेक कहानी कला की कृति है अथवा शब्द-चित्र है। बेशक कोई भी कहानी सच है ऐसा नहीं कहा जा सकता।

इसी से इतिहास और कहानी एक-दूसरे से अलग हो जाते हैं। दंतकथा को हम इतिहास नहीं कहते अथवा ऐतिहासिक कहानी को इतिहास से भिन्न मानते हैं, इसका यही कारण है। फिर भी कहानी की हकीकतें गलत नहीं होती और इसी से लोक-हृदय में कहानियों को यों कह कर फेंक नहीं देते कि वे तो गप्पें हैं। प्रत्येक कहानी पढ़ने पर लगेगा कि पूरी कहानी झूठी होते हुए भी वे घटनाएँ घटित होनी असंभव नहीं हैं। कहानी में वर्णित कोई राजकुमार, किसी नाम वाला जंगल, उस राजकुमार का अजगर द्वारा निगला जाना आदि हकीकतें कल्पनाजन्य हो सकती हैं परंतु किसी भी राजकुमार का शिकार पर निकलना, किसी जंगल में किसी आदमी का फिरना, या किसी तीसरे व्यक्ति का अजगर द्वारा निगला जाना ऐसी हकीकतें हैं जो हमेशा घटित होती हैं और इन अलग-अलग छिटपुट हमेशा घटित होने वाली घटनाओं को एक ही मंच पर सुंदर ढंग से संकलित करने का अद्भुत काम कहानीकार का है। फिर कहानियों के द्वारा मनुष्य अपने ही जीवन के छिटपुट प्रसंगों को एक ही पट पर चित्रित करने का प्रसंग ढूँढ़ता है और यों करते-करते कहानी के माध्यम से जनता के समक्ष जीवन का नाटक प्रस्तुत करता है। कहानियों के रूप में लोगों ने अपने धर्मस्मृति, प्रायश्चित्ताध्याय, समाज-शास्त्र, नीति-शास्त्र आदि शास्त्र प्रदर्शित किए हैं। कहानी का प्रत्येक पात्र कल्पित होता ही है, उसका अस्तित्व कल्पक की कल्पना-सृष्टि में ही रहता है, पर उस पात्र के द्वारा व्यक्त होने वाला जन व्यापक जनता में कदम-कदम पर सचमुच नजर आता है। अलग-अलग घटित होने वाली करुणा, शोक या अन्य प्रकार की घटनाएँ कुछ लोगों को ही आकर्षित कर सकती हैं, उन्हें छू सकती हैं। किसी मृत शरीर या वृद्ध शरीर को देखकर सिद्धार्थ जैसे किसी बोधिसत्व को ही देह की नश्वरता दिखाई दे सकती है और उसमें वैराग्य प्रकट होता है, परंतु सामान्य मानव स्वभाव इतना कोमल नहीं होता अथवा प्रत्येक मनुष्य बोधिसत्व की कोटि तक पहुँचा नहीं होता, अतएव उसके सामने तो ऐसे अनेक करुण चित्रों को कहानी के द्वारा हू-ब-हू चित्रित किया जाए तो उसके हृदय को स्पर्श करेगा, यह बात कथाकार के ध्यान से परे नहीं है।

जितना अंतर किसी तत्त्ववेत्ता में और बावले आदमी में है, जितना अंतर किसी तरंगी कवि में और हिसाबी-किताबी बनिये में है उतना है अंतर सच्ची कल्पना और झूठी कल्पना में है। जिस तरह प्रतिभा और पागलपन परस्पर नजदीक-नजदीक रहते हैं उसी तरह सच्ची कल्पना और झूठी कल्पना भी परस्पर

पास-पास रहती हैं। यथार्थ कल्पना के परिणामस्वरूप मनुष्य कहानी के पात्रों की वास्तविकता को छोड़कर मानव-स्वभाव की वास्तविकता को पकड़ लेता है, जबकि अयथार्थ कल्पना में रमने वाला मनुष्य कहानी के रहस्य को एक ओर रखकर पात्रों की संभावनाओं में भटक जाता है। वह जिनमें कल्पना का सच्चा उदय है उन पात्रों की सबलता निर्बलता में जनता के व्यक्ति का प्रतिबिम्ब देखता है, कहानी के पात्रों का सीधा अनुकरण करने के बजाय पात्रों के गुण-दोष की तरफ सहानुभूति से देखता है तथा समाज किस वस्तु को इष्ट मानता है और किसे नहीं मानता, यह खोज निकालता है। भुलावे में पड़ा आदमी पात्रों के खरेपन को स्वीकार कर बैठता है और उन्हें अपने जीवन का आदर्श मान लेता है। जीवन के आदर्श तो जीवन्त व्यक्ति से ही, अथवा जो व्यक्ति समाज में जीवन्त माने जाते हैं, उन्हीं से संभव है। इसी से चरित्र-ग्रंथ कहानी के ग्रंथ नहीं होते। ऐसी कहना गलत है कि कहानी से मनुष्य मिथ्या कल्पना करने लगता है, इसमें कहानी का दोष नहीं है वरन् वाचक का या फिर कहने वाले का दोष ही है। हम कहानी पढ़ते हैं तो उसे सच मानकर नहीं पढ़ते, फिर भी हम उसे रुचिपूर्वक और प्रेमपूर्वक पढ़ते हैं। पेमला-पेमली की या मेढक-मेढकी की कहानी में हम आज के समाज के अनेक पेमलाओं और मेढकों को देख सकते हैं और इसीलिए उनमें आनंद ले सकते हैं। मियाँ-बीबी की कहानी इसीलिए हमें रोचक लगती है क्योंकि हमारी नजरों के सामने मियाँ बीबी के नाटक हमेशा खेले जाते हैं। सास-बहू की कहानियाँ पढ़ने में हमें इसीलिए मजा आता है क्योंकि उनमें हमें अपना संसार नजर आता है, लेकिन हम पेमला बनने, मेढक बनने या मियाँ बीबी का विचार नहीं करते। इसका कारण यह है कि हम पात्रों को सच नहीं मानते वरन् पूरी बात को रूपक के बतौर लेते हैं। माता-पिता और गुरुजन अगर इस दृष्टि से कहानी पढ़ें या बालकों को सुनाएँ तो मिथ्या कल्पना का डर जाता रहेगा। इसी दृष्टि से अगर नवयुवक कहानियाँ सुनें या उपन्यास पढ़ें तो आज सरस्वतीचंद्र या कलापी को पढ़ने मात्र से जो दुर्बलता पैदा होती है और जिसकी वजह से मनुष्य बहुधा दुःखी हो जाता है या निकम्मा हो जाता है, वह न होने पाए।

कहानी सुनने से मनुष्य असत्य का आश्रय लेने लगेगा, ऐसा भय रखने की कोई वजह नहीं है। जब तक कहानी को सुनने वाला यह मानता है कि कहानियाँ सत्य घटनाएँ होती हैं तब तक वह कहानी के असत्य को ही ग्रहण करता है, यह सच है। परंतु कहानियाँ झूठी होती हैं, यह बात बालक को भी समझनी नहीं पड़ती। नितांत नन्हीं वय का बालक भी बिना कहे समझ जाता है कि कहानियाँ

कपोल-कल्पना मात्र होती हैं। कौआ और चिड़िया बातें करें, यह तो प्रत्यक्ष रूप में भी गलत है, फिर कहानी में उनके बीच बातचीत कराई जाती है। इससे यह मान लेना कि ऐसी मिथ्या कहानियों से बालक झूठे बनेंगे, भ्रामक है। एक तरह से कहानी ऐसे असत्यों का अतिरेक होती है और इसीलिए कहानियों में विद्यमान असत्यपना बालकों पर असर नहीं डाल सकता। एक ऐसा सिद्धांत है कि जब झूठ बहुत बढ़ जाता है तब वह स्वयंमेव थक जाता है; और छोटा झूठ जितना स्थाई होता है उतना बड़ा झूठ नहीं होता। नीति-शिक्षण में एक युक्ति है कि झूठे बालक को खूब झूठ बोलने देने के पश्चात् कह दिया जाए कि तुम्हारे झूठ को हम जानते हैं बहुत झूठ बोल लिए, तुम तो सच बोलो, तो बालक तत्काल सच बोलने लगता है और समझ जाता है कि झूठ बोलने से अब लोग नहीं ठगाते! इसी भाँति कहानियाँ, जिनके ललाट पर ही लिखा होता है, कि हम झूठी हैं, वे बालक को ठग नहीं सकतीं और इसीलिए वे उन्हें असत्याश्रयी बनने को प्रेरित नहीं कर सकतीं।

एक बात सही है कि कहानी से मनुष्य को असत्य-सेवन का रास्ता मिल जाता है। युक्ति-प्रयुक्ति की अलियाँ-गलियाँ कहानियों के द्वारा बालक को पता लग जाती हैं। पर इसमें कहानी के बजाय कहानी सुनाने वाले का दोष अधिक है। दुनिया में अनेक तरह के लोग हैं—झूठे भी और सच्चे भी; नीतिमान भी और अनीतिवान भी, भले भी और मोले भी, लुच्चे भी और कपटी भी; लेकिन उन लोगों को हम निरंतर भय स्वरूप नहीं गिनते। वे लोग किसी काल में संसार से हमेशा के लिए दूर हो जाते हैं, ऐसी मान्यता गलत है। हमारा कर्तव्य ऐसे लोगों के बीच में रहते हुए तथा उन्हें पहचानते हुए अपना जीवन शुद्ध सन्मार्ग पर चलाना है। हम हमेशा ऐसा नहीं मानते कि गाँव में चोर रहते हैं अतः हम भी चोर हो जाएँगे या कि खूनी लोग खून कर डालेंगे। अगर ऐसा ही होता तो प्रत्येक न्यायाधीश खूनी, लुटेरा या चोर हो गया होता। सच तो यह है कि ऐसे लोग हमारे लिए हमेशा तराजू रूपी होते हैं और हमें किसी हद तक सन्मार्ग पर ले जाते हैं। कहानियों के साथ भी यही बात है। कहानी में सभी गुण-दोषों का आलेखन होता है, पर कहानी का हमेशा ऐसा स्वभाव होता है कि वह गुणों की प्रशंसा करती है तथा दोषों को धिक्कारती है। अनीति का पक्ष लेने या दुष्ट पर ईश्वर की कृपा दर्शाने की बातें शायद ही कहानी में पढ़ने को मिलें। कहानियों के पात्रों के लिए कहानियों का अपना ही पीनलकोड और समाज-शास्त्र या नीति-शास्त्र तैयार होता है। कहानी में यह नीति-शास्त्र, यह

198 कथा-कहानी का शास्त्र

समाज-शास्त्र या कि प्रायश्चित्त-शास्त्र कहाँ विद्यमान रहता है, यह बताना शिक्षकों का या माता-पिता का काम है।

कहानी कहने वाला किस वस्तु पर बल दे, इस पर अत्यंत सूक्ष्मता से विचार करने की जरूरत है। कहानियाँ सामाजिक जीवन का प्रतिबिम्ब होती हैं, उनमें समाज के प्राण बहते हैं, ये कहानियाँ समाज के वर्तमान आदर्श और स्थिति को चित्रित करती हैं परंतु उनमें भावी सृष्टि की कल्पना कभी होती है, कभी नहीं भी होती। जो कहानियाँ जीवन की परिपूर्णता तथा उच्चता के प्रतिबिम्बों वाली हैं वे मनुष्य के लिए आदर्श रूप हैं। ऐसी कहानियों में रामायण का नाम सर्वप्रथम है। समाज के आदर्श हमेशा बदलते रहते हैं, कई बार नीतिमत्ता का स्तर भी बदलता है। इससे कहानी कहने वाले पर बड़ी भारी जिम्मेदारी रहती है। एक समय ऐसा था कि समाज चतुराई में, दूसरों से न छले जाने में और मौका पड़ने पर निकल भागने में कुशलता मानता था। कई बार यह चीज नीति की विरोधी है, ऐसा नहीं समझा जाता था। इसी से चतुराई की कहानी का महत्व अधिक माना जाता था और बड़े-बूढ़े बालकों को ऐसी बातें कह कर दुनियादारी का भान कराने का संतोष अनुभव करते थे। इसी भाँति जिस समाज के हृदय में ब्रह्मचर्य का निवास कम था, उसने परिणीत जीवन की सरस कहानियाँ अधिक कही हैं। आज हमारे जीवन का आदर्श बदलता जा रहा है, भावी युग का आदर्श नया गढ़ा चला जा रहा है। ऐसे में कैसी कहानियाँ कही जाएँ और कैसी न कही जाएँ अथवा कहानियों में कैसे परिवर्तन किए जाएँ कि जिससे पुरानी कहानियाँ पुराने लोगों के लिए जितनी उपयोगी थीं उतनी ही आज की कहानी हमारे लिए उपयोगी हो, इस पर हमें निरंतर विचार करना चाहिए। यह सवाल कहानी की रचना और कथन के दृष्टि-बिन्दु का है। विषय-वासनाओं को उत्तेजित करने वाली कहानियों को हमें पारिवारिक स्नेह प्रेरित कहानियाँ बना देनी चाहिए। चतुराई का मजा देने वाली कहानियों को हम इस तरह कहें कि उनसे दया भाव पैदा हो। भयप्रद कहानियों को निर्भयता के संस्कार पैदा करने के लिए कहा जाए तथा वहमों को प्रचारित करने वाली कहानियों में से हम विज्ञान को निकलते दिखाएँ।

सभी कहानियाँ झूठी होती हैं, ऐसे असत्याश्रय की वजह से हमें कहानियों का परित्याग नहीं कर देना चाहिए। बल्कि जैसा कि ऊपर लिखा गया है वैसे झूठी कहानियाँ सुनने से हम झूठे कैसे नहीं होते अथवा कैसे नहीं होंगे, ऐसा विवेक

लोक-वार्ताएँ और कल्पना-शक्ति 199

जगाना चाहिए। सब मानें तो रामायण और महाभारत लोककथाएँ हैं और ऐसे पवित्र ग्रंथ झूठे या कल्पित हैं, अतः हम इन्हें सुनें तो असत्याश्रयी बन जाएँगे—जब तक यह बात हमारे गले नहीं उतरती तब तक कोई भी कहानी हमें मिथ्या होने के कारण असत्याश्रयी नहीं बना सकती। बेशक मेरे कहने का ऐसा आशय नहीं है कि हमें इन कल्पित कहानियों से ही चिपके रहना चाहिए तथा वास्तविक कहानियों को अवकाश देने में अनुदार होना चाहिए।

फिर भी बहुत सारे लोग ऐसा मानते हैं कि हमें कल्पित कहानियाँ त्याग देनी चाहिए। हमारे आसपास जो प्रकृति की अद्भुत कृति है उनसे संबंधित अनेक चमत्कारपूर्ण कहानियाँ हैं। भला उन्हें छोड़कर कल्पित कहानियों का आश्रय क्यों लिया जाए! बेशक प्रकृति के चमत्कारों की कहानियाँ अत्यंत अद्भुत हैं और उन्हें सुनने पर आबाल-वृद्ध सभी को आनंद आएगा। परंतु ये जो कल्पित कहानियाँ हैं वे तो उनसे भी अद्भुत हैं। जहाँ तक मनुष्य को नितांत अर्थवादी बनाने में हमारी रुचि नहीं है, वहाँ तक ऐसी कल्पित कहानियों को हमें रखना ही पड़ेगा।

लोक-कथाओं के कथन पर एक ऐसा आक्षेप है कि ये कहानियाँ बहम से युक्त हैं अतः आदमी बहमी हो जाता है। इस टिप्पणी में कुछ वजन है, पर सवाल यह है कि किस मान्यता को बहम से युक्त मानें और किसे न मानें, ऐसा निर्णय कर पाना कठिन है। पहले जो कई बातें बहम मानी जाती थीं, उन बातों की सत्यता आज विज्ञान ने सिद्ध कर दी है और कौन-से बहम कपोल कल्पित न थे पर हमारी समझ में न आने जैसे स्थूल अथवा सूक्ष्म-विज्ञान के नियमों पर रचे गए थे, उनके बारे में अभी हम कुछ कहने की स्थिति में नहीं हैं। यह एक बात है।

दूसरी बात यह है कि कई बार कथाकारों का शौक ही ऐसा होता है कि वे शुद्ध विज्ञान को कोई रूपक दे देते हैं और उसे ढँक कर मनुष्य को सुंदर रीति से विज्ञान बताने की नई विधि अंगीकार करते हैं। एक यह बात भी ध्यान में रखने योग्य है कि बहम श्रद्धा का ही दूसरा पहलू है। आज जो वस्तुएँ वैज्ञानिक को केवल बहम प्रतीत होती हैं वे आध्यात्मिक दृष्टि से वास्तविकताएँ हैं, ऐसा मानने में अड़चन नहीं आती। विज्ञान से ऊपर एक और शास्त्र है कि जिसके ज्ञान द्वारा मनुष्य जिस वस्तु का विज्ञान द्वारा समाधान नहीं कर सकता, उसका समाधान इस ज्ञान से प्राप्त कर सकता है। यह विद्या है अध्यात्म-विद्या। भूत प्रेतादि वैज्ञानिकों की दृष्टि से बहम हैं। लेकिन अध्यात्म-विद्या अथवा योग-विद्या से मनुष्य इन योनियों

का साक्षात्कार कर सकता है। यह बात सिद्ध हो चुकी है। परियों की बातें आज तक बहमी दिमाग की कल्पना थी, अब तो परियों के फोटो तक प्रकाशित होने लगे हैं। अब भी बहम के नाम पर चलने वाली अनेक बातें भविष्य में नितांत सत्य होनी पूरी संभव हैं। पक्षियों की वाणी और शकुन नितांत बहम के नमूने हैं, लेकिन अभी विज्ञान को यह फैसला करना है कि इनमें कितनी सचाई है। एक-दो बातें हमारे खयाल से बाहर न चली जाएँ कि जिसे हम श्रद्धा कहते हैं उसके एक पहलू में बहम रहता है और दूसरे पहलू में नास्तिकता। नास्तिकता की ओर जाने की बजाय बहम की तरफ जाना बेहतर है या नहीं, यह प्रश्न विचारणीय है। इतना तो मानना ही होगा कि धर्म की दृष्टि से हम जिसे बौद्ध कहते हैं या जिन्हें हम बहम के पुतले मानते हैं, उन लोगों में जितनी श्रद्धा है उतनी श्रद्धा आज जिन्हें बहम से मुक्त मानते हैं, उनमें भी नहीं है। बहम और श्रद्धा को कहीं अलगाया जाए, यह प्रश्न जरा नाजुक है। पर इतना तो तय है कि जो व्यक्ति कुछ मान सकता है, जिसके स्वभाव में थोड़ा-बहुत बदल जाने की आदत है, उसमें सच्ची श्रद्धा आना संभव है। अकेला जड़ बहमी श्रद्धावान नहीं बन सकता। आज के धर्म से श्रद्धा उड़ती जाती है, इसका कारण यह है कि उसका आचरण करने वाले दिनों-दिन जड़ बहमी होते जा रहे हैं। लोककथाएँ सुनने से लोग बहम की बातें ज्यादा जानने लगते हैं, यह बात सही है, पर उससे वे बहमी ही बन जाते हैं, यह मानने की कोई वजह नहीं दिखती। बल्कि लोककथा में इस संबंध में ऐसा माना जाता है कि अगर यों कहा जाता है तो बालक बहमों से बच जाते हैं और आने वाले वर्षों में बहम से पराङ्मुख होकर बैठने के बजाय उनकी सचाई ज्ञात करने की कोशिश में लग जाते हैं। ऐसे रहस्य-शोधकों को पुरातत्ववेत्ता के नाम से पुकारा जाता है।

अब तक एक ऐसा बहम था कि विधवा का शकुन लेना अशुभ है या कि सवें-सवें भंगी का मुँह देखना विधवा को न्यौता देना है। इन बहम की बातों को आज हम नई दृष्टि दे सकते हैं। जो स्त्री पतिव्रत-धर्म का पालन करती है और पति के पीछे वैधव्य-दशा का तपश्चरण करती है, उस स्त्री का शकुन शुभ होता है—इस तरह हमें क्यों न समझाना चाहिए? इसी भाँति सेवा का उत्कृष्ट आदर्श प्रस्तुत करने वाले अन्त्यज के दर्शन विघ्न-सूचक मानना हमारी जड़ता का ही सूचक है, ऐसा क्यों न कहें? तत्व की बात यह है कि हमें बहमों से डरने की जरूरत नहीं है, अपितु लोककथाओं के बहमों में या तो विज्ञान को देखें, भावनाओं को देखें या फिर उन्हें नया अर्थ व स्वरूप प्रदान करें।

कइयों की ऐसी मान्यता है कि भय से युक्त कहानियाँ सुनाने से भय का संचार होता है और वह बालकों के लिए नुकसानदायी है। यह सच है। भय मनुष्य में स्वभाव से ही रहता है और ऐसी कहानियों से भय को पोषण मिलता है। आज ऐसे अनेक डरपोक लोग हैं जो बचपन में ऐसी कहानियाँ सुनने से डरपोक बने हैं, यह सही है। लेकिन अगर हम इस बारे में गंभीरता से सोचें तो पता लगेगा कि अकेली बातें सुनने से ही व्यक्ति डरपोक नहीं बन जाता। सच तो यह है कि पहले से ही अमुक बातें भयप्रद हैं ऐसी बातें बालकों में बचपन से ही ठसा दी जाती हैं, बालक तो आगे जाकर उनको दृढ़तापूर्वक ग्रहण करता है। प्रेरणा से बालक डरता है, उसका भय पशु के भय जैसा स्थूल होता है। जो उसे कष्ट पहुँचाता है, वह उसके लिए भयप्रद होता है। कुदरती तौर से वह बाहर अँधेरे से नहीं डरता; बाऊ-हाऊ की वह कोई परवाह नहीं करता; भूत-प्रेत की तो वह कल्पना भी नहीं कर सकता। लेकिन माता-पिता इन तमाम चीजों में कोई डर है, ऐसा बार-बार डरा कर उनके दिमाग में डर ठसा देते हैं और फिर कहानियाँ उस डर को सुदृढ़ करने में अच्छा योगदान करती हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि मनुष्य को डरपोक बनाने में कहानी का कोई अपराध ही नहीं है। लेकिन इसका भी एक उपाय है कि सचमुच में डर पैदा करने वाली जितनी भी वस्तुएँ हैं, उनसे न तो डरें और न डराएँ! उदाहरण के तौर पर बालकों को यह समझाया जा सकता है कि जैसे अमेरिका के लोगों से हमें डरने की जरूरत नहीं है वैसे ही भूत-प्रेतों से डरने की जरूरत नहीं है। इसी तरह श्मशान से डरने का कोई कारण नहीं है क्योंकि महायोगी भगवान शंकर की यह प्रिय भूमि है वैसे ही वह हमारी अंतिम विश्राम स्थली है। यों समझा कर हम बालकों के दिल से श्मशान का भय भगा सकते हैं। इस तरह बालकों को नया अर्थ समझाने से नौ रसों में से भयानक रस का लोप हो जाएगा, पर उसकी कोई चिंता नहीं। हमें कहानी तो रखनी ही चाहिए, बस उससे होने वाला नुकसान नहीं चाहिए। भय पैदा होना ही सबसे बड़ा नुकसान है। कहानी पर एक जो आक्षेप लगाया जाता है कि यह आदमी को बौद्ध बना देती है, इसकी वजह यह भयंकर रस ही है। सचाई यह है कि बचपन में सुनी हुई बातों को आदमी युवावस्था में भूल जाता है, अथवा यह कहें कि जवानी में उसके मस्तिष्क एवं शरीर के स्नायु इतने अधिक बलवान होते हैं कि बचपन के भय का प्रभाव मौजूद ही नहीं रहता। लेकिन जब आदमी बूढ़ा हो जाता है, उसके स्नायुओं की निर्बलता बढ़ जाती है और दिमाग को दूसरा काम नहीं होता तब पुरानी भयप्रद बातें उसके सामने आ खड़ी होती हैं

और उसे डराती हैं। पर इससे कहानियों के बहिष्कार का सवाल नहीं उठता। उल्टे इस भय के तत्त्व को हमें नई दृष्टि से देखना सीख लेना चाहिए और नई रीति से इसका परिचय कर लेना चाहिए।

कई लोग कोचरी (उल्लू की जाति का एक पक्षी) को बोलते सुनकर ऐसा मान लेते हैं कि अपशकुन हो गया। मेरे मित्र मूलजीभाई के वहाँ हम एकांत में रात को बारह बजे बैठे थे; स्थान निर्जन था, तभी एकाएक कोचरी बोली। मैंने कहा : 'मूलजीभाई, कोचरी बोली।' मेरे कहने में थोड़ा भय था। पर मूलजीभाई बोले : 'यहाँ यह स्थान इतना वीरान है कि सौभाग्य से ही कोई पशु-पक्षी रहता है, ऐसे में अगर कभी कोचरी बोलती है तो बहुत आनंद आता है। रात की नीरवता में कोचरी की आवाज बहुत मजेदार लगती है। भयप्रद लगने वाली वस्तु को भी एक नई दृष्टि से कैसे देखा जा सकता है, यह इसका एक उदाहरण है।

एक बात यह भी देखने की है कि कई भय साक्षात् होते हैं और उन्हें कहानी के माध्यम से बालकों के समक्ष प्रस्तुत करने में कोई एतराज नहीं होना चाहिए। ऐसे भयों के परिचय से ही इनकी भयंकरता नष्ट होनी संभव है। पर इस प्रसंग को ज्यादा सहारा देने की जरूरत नहीं है। जिन बहमों या भयों को नया स्वरूप न दिया जा सके और भय या बहम उन्हीं रूपों में कहानियों से निकल कर बाल-मन पर ठसने संभव हों तो ऐसी कहानियों का परित्याग कर देना चाहिए। नुकसान की कीमत पर हर तरह की कहानी कहने का भूत हमें नहीं होना चाहिए। कहानी बालक के हित के लिए होती है, अर्थात् उसका अहित करने वाली कहानी गिँज न ली जाए। पर अगर हम एक या दूसरे कारण से कहानियों को हटा देंगे तो बालकों को उन्हें मिलने वाली कुदरती खुराक से वंचित करेंगे। अतः कहानियों में जहाँ विषैली बातें हों, उन्हें हटा दें अथवा हम विष को अमृत बनाने का प्रयास करें। □

ग्यारहवाँ प्रकरण लोक-कथाओं का साहित्य

प्रत्येक भाषा में कथा-साहित्य इतना अधिक है कि जो कभी खूटे ही नहीं। आज हमारी दुनिया में जितना कथा-साहित्य प्रकाशित हो चुका है, उससे अनेक गुना अधिक साहित्य लोगों के कंठों में सुरक्षित है। जब यह सम्पूर्ण कंठस्थ कथा-साहित्य पुस्तकाकार प्रकाशित होगा तो लोगों को कथा-साहित्य के लिए विशेष पुस्तकालय खोलने पड़ेंगे।

कहानी आबाल-वृद्ध सभी के लिए मीठे जल का महार्णव है। नींद की गोदी में गच्चा खाने वाले बालक के लिए कहानी मधुर स्वप्न भरी निद्रा का सुंदर प्रस्ताव है। दर्द के मारे सुलगते बिस्तर में बेचैनी से इधर-उधर करवटें बदलने वाले रोगी के लिए कहानी शीतल लेप की तरह होती है। अनिद्रा से जलने वाली दुःखी या निराश आँखों के लिए कहानी साक्षात् निद्रा देवी है। तलवार के बार से घायल किसी सैनिक के लिए कहानी अनमोल औषधि है। कहानी बूढ़ों को जवानी देती है, माँ को बालक-जैसा भोलापन देती है तथा युवकों को युवावस्था का पुनरावर्तन कराती है। राजा-रानी के लिए कहानी मनोरंजक है; थके-हारे मजदूरों के लिए थकान मिटाने वाली है; विद्यार्थियों के लिए विद्या की देवी सरस्वती है तथा प्रवासी के लिए मीठी-महंगी विश्रान्ति है।

ये कहानियाँ किसने बनाईं, कब बनाईं, किसे कह कर सुनाईं, किसने इनका प्रचार किया, यह इतिहास का प्रकरण अब भी कोरा है; और जब तक कहानियाँ लोगों के जीवन में जीवन्त हैं तब तक कहानियों का ऐतिहासिक प्रकरण कोरा ही रहेगा। ऐसा कहा जाता है कि जब कोई वस्तु मर जाती है, निर्जीव हो जाती है अथवा जीवन से परे हट जाती है, तभी उसका इतिहास बनता है, तभी वह इतिहास की किताबों में जीने लगती है, तथापि कहानियों का पीहर ढूँढ़ने का सरस काम हम किसी काल में कर लेंगे। कितनी-कितनी कहानियों ने विदेशों में प्रवास किया है, कितनी-कितनी कहानियों ने धर्मान्तरण किया है और कितनी सारी कहानियों ने रूपांतरण किया है, इसको ढूँढ़ने का काम बड़ा ही मजेदार है। अगर कहानी के साथ हम भी भटकते मुसाफिर बन जाएँ तो जो एक कहानी हमें तिब्बत में मिलेगी,

वही कहानी मध्य अफ्रीका में दिख जाएगी, फिर वही कहानी बरफ में लिपटी हुई अपनी काया में हमें उत्तरी ध्रुव में दर्शन देगी तो वही कहानी अगर हम अरबिस्तान में घूम रहे होंगे और वहाँ के गरम प्रदेश में बिलकुल वस्त्रहीन होगी, तब भी हम उसे पहचान लेंगे। कई कहानियाँ व्यवहार-कुशल लोगों की तरह जैसा देश वैसा भेष बना कर रहती हैं तो कुछेक कहानियाँ इतनी संकुचित वृत्तिवाली होती हैं कि सारे संसार में भटक आने पर भी अपनी हिन्दू चोटी, मुस्लिम दाढ़ी या चीनी चोटला नहीं छोड़ती। स्वभाव-वैविध्य और रुचि-भिन्नता कहानियों में होती ही है। कई कहानियाँ मानो विश्व-बंधुत्व के सिद्धांत की उपासक हों, इस तरह सम्पूर्ण विश्व को अपना घर मानती हैं और जहाँ भी सेवा करने का अवसर मिल जाता है, वहीं रह जाती हैं तथा दूसरों के सुख में अपना सुख मानती हैं। कई कहानियाँ प्रेम के वशीभूत होकर अलग-अलग देशों में हमेशा के लिए बस जाती हैं, फिर तो वे उसी देश की कहानियाँ कहलाने लगती हैं, फिर तो वे सिर्फ भाषांतरण के द्वारा ही दूसरे देशों में जाती हैं। तभी तो हमें उनको जापान की कहानियाँ, पंजाब की लोककथाएँ, मलाया की जीवन-कथाएँ या कठियावाड़ की प्राचीन कथाएँ आदि विशेष नामों से पहचानना पड़ता है। फिर भी कई कहानियों ने संन्यासियों का दायित्व निभाया है। उन्होंने अनेक स्थानों पर दर्शन दिए हैं, अनेक-अनेक स्थानों की जनता की सम्पत्ति मानी गई है, फिर भी वे स्वयं में निराली ही रहीं। ऐसी कहानियों को ग्रिम्स जर्मनी की मानता है तो मोरको के हबशी उन्हें अपनी बताते हैं। स्याम वाले कहते हैं कि हमारी कहानियों को तुम ले गये हो, तो खासी लोग कहते हैं वस्तुतः इन कहानियों का आदि-गृह हमारे यहीं था। पुरातत्ववेत्ता चाहें तो इस शोध के पीछे अपना समग्र जीवन लगा सकते हैं।

अनेक दृष्टियों से प्रचलित लोक-कथाओं को हमें इकट्ठा करने की पूरी-पूरी जरूरत है। लोक-साहित्य सामाजिक जीवन का दर्पण है। लोक-जीवन को जानना हो तो हमें लोक-साहित्य में प्रतिबिम्बित होने वाले लोक-जीवन को देखना होगा। चाहे जैसा दंभी समाज हो, वह अपने अंतर्जीवन को लोक-साहित्य द्वारा व्यक्त कर देता है। लोक-साहित्य शिष्ट जनों के द्वारा लोक-जीवन पर ढँके गए आवरण को हट्य देता है तथा लोक-हृदय को खोल कर दिखा देता है। लोक का बलाबल, लोक का भावाभाव, लोक की आशा-अभिलाषाएँ, संक्षेप में कहें तो लोक का सच्चा हृदय लोक-साहित्य में ही निवास करता है।

जब तक समाज स्वाभाविक रहता है, तब तक लोक-जीवन और लोक-साहित्य में संगति दिखाई देती है। लेकिन जब समाज ढोंगी बन जाता है तब लोक-जीवन और समाज के मध्य विसंवाद दिखने लगता है। विसंवाद वस्तुतः सच्चा नहीं होता, मात्र दिखाई देता है क्योंकि समाज दंभी बन जाता है। ऐसे समय समाज को ढोंग से बचाने के लिए लोक-साहित्य की तरफ समाज की नजर जाए, ऐसा प्रबंध किया जाना चाहिए। ऐसे समय में समाज द्वारा खड़े किए गए कृत्रिम साहित्य के खोखलेपन को उसके समक्ष उघाड़ देने की जरूरत है। अगर एक बार समाज अपनी सच्ची स्थिति को समझ जाएगा तो उसी क्षण से समाज में और उसके लोक-साहित्य में स्वाभाविकता एवं शुद्धता आने लगेगी; यही नहीं उसका शिष्ट साहित्य भी सच्चे जीवन की बुनियाद पर रचा जाएगा।

लोक-साहित्य शिष्ट साहित्य का उत्पत्ति-कारक है। लोक-साहित्य जितना निर्मल होगा उतना ही शिष्ट-साहित्य पवित्र और बलवान होगा। चाहे जितना दंभ करे, पर विकृत मन-मस्तिष्क वाली प्रजा का लोक-साहित्य और शिष्ट-साहित्य विकृत ही होगा। हम लोक-साहित्य में कहाँ हैं, इस विचार से प्रेरित होकर लोक-साहित्य का संग्रह करने की हमारी प्रवृत्ति अत्यंत उपयोगी है।

यह सवाल अब पूछने की जरूरत नहीं है कि लोक-साहित्य कहाँ रहता है। जहाँ-जहाँ सच्चा लोक-हृदय अब भी धड़क रहा है, वहाँ-वहाँ लोक-साहित्य अमिट अक्षरों से लोक-स्मृति में अंकित है। राज दरबार में शिष्ट-संगीत है, पर लोक-संगीत तो किसी मार्गी साधु की भजन-मंडली के तंबूरे की धुन में और माताजी के मंजीरों की रणकार में निहित रहता है। किसी गायिका के गायन में शास्त्रीय-संगीत है पर लोक-संगीत तो उजली रात में रासड़े गाने वाली महिलाओं अथवा लग्नगीत गाने वाली औरतों के कंठों में समाया हुआ है। पंडितों की सभा में या पुराणों की कथा में शिष्ट कथा-वार्ताएँ हैं, पर लोक-कथाएँ तो भाटों-चारणों की जीभ पर रहती हैं या माणभट (कथा-वाचक) की माण (पीतल का कलश) पर रहती हैं या माँ की स्नेह भरी ऊष्मा वाली रजाई में हैं या फिर दोस्तों की गुपचुप बातों में हैं। अगर लोक-साहित्य की जरूरत हो तो वह विद्यालय के अध्यापक या कॉलेज के प्राध्यापक के पास नहीं मिलेगा, किसी राजकीय कर्मचारी के पास या विलायत या अमेरिका से खेती-बाड़ी का प्रशिक्षण लेकर आने वाले किसान के पास नहीं मिलेगा। वह न सिनेमा, नाटक, थियेटर्स में मिलेगा, न थोकबंद पुस्तकें छापने वाले छापाखानों या

206 कथा-कहानी का शास्त्र

प्रकाशन-मंदिरों में मिलेगा। मिलों के भोंपुओं या मोटरों की भों-भों में वह नहीं मिलेगा। न आर्ट गैलेरी में मिलेगा, न संगीतशास्त्रियों के जलसों में मिलेगा। न वह पंचदशी या पंचीकरण बाँचने वाले महाराज के पास मिलेगा, न व्याकरण के पाठ पढ़े हुए शास्त्रियों के पास मिलेगा। न वह खंडकाव्य या प्रबंध काव्य करने वाले कवि के पास रहता, न बंबई में बैठे-बैठे ऐतिहासिक उपन्यास लिखने वाले लेखक के पास मिलेगा। लोक-साहित्य तो रहता है चड़स हाँकने वाले किसान के पास या खेतों में भाथा लेकर जाने वाली भथवारी के पास। या तो वह रहता है पनघट जाने वाली पनिहारिन के घड़े में या फिर रहता है किसी ईधन बटोरने वाली बुढ़िया के पास। लोक-साहित्य रहता है सोनी या लुहार के पास या फिर रहता है कुम्हार के चाक में। कभी वह तंबूरे की रणकार में रहता है, तो कभी चूड़ियों की झनकार में रहता है। भाट-चारण और पुराने जोगी-जती लोक-साहित्य के ज्ञाता होते हैं। कई बार तो वह रहता है माता जी को अर्पित नर-नारियों के पास, तो काफ़ी कुछ रहता है ग्वालों की जीभ पर। लोक-साहित्य की शोध करनी हो तो शहर छोड़कर गाँवों में जाना पड़ेगा या गाँव छोड़कर सिवान में जाना पड़ेगा। खेत में गया हुआ किसान का जवान बेटा और पड़स के खेत का संतान-विहीन कोई अकेला बूढ़ा जब मिलकर दोहे-सोरठे की तान छेड़ते हैं तब लोक-साहित्य की नदी प्रवाहित हो जाती है। काठियावाड़ के गरीब बुजुर्गों की जेवनार समाप्त हो गई हो और अफीम चढ़ाने के बाद गढ़वी लोग जब कहानी छेड़ते हों, तभी लोक-साहित्य अपने उत्कर्ष में दिखाई देता है। अपने घर के काम-काज से निवृत्त होकर जब कोई बूढ़ी माँ दाँतों पर तमाखू घिसती-घिसती नन्हें-नन्हें बालकों के दल को कोई कहानी कहती है तब पता लगता है कि लोक-कथा में कितना अद्भुत जादू है। लोक-साहित्य की शोध में अगर आप निकले हों तो प्रेम में घायल किसी सोन या हलामण के पास अथवा उजळी या जेठवे के पास जरूर जाना। आप किसी भटकते विजाणंद और शेणी से अथवा आशा-भंग, सोनकंसारी या रखापत बावरिया से लोक-साहित्य की आशा रख सकते हैं। इकतारा या रावण हत्था लेकर भीख माँगने निकलने वाला कोई बाबा आपको लोक गीतों का अच्छा-खासा संग्रह प्रदान करेगा। कछुआ-कछुवी का भजन या 'बिजली बैरण भई' जैसा गीत आपको इन लोगों के पास से ही मिलेगा। किसी मनमोहक चाँदनी रात में जब नववधुएँ और विरहिणियाँ बारहमासे गा रही हों तब कान लगाकर अगर सुना जाए तो लोक-गीत की भूख मिट जाएगी। चाँदनी रातों में भाल या झालावाड़ के गाँवों में कपास की डोडियाँ निकाली जा रही हों, या किसी

लोक-कथाओं का साहित्य 207

बड़े भोज की तैयारी के लिए गेहूँ बीने जा रहे हों या नदी तट पर शीतला माता बैठी हों या घर की भीतों पर नाग देवता बनाए गए हों या दुर्गाजी के व्रत या पुरुषोत्तम मास के व्रत मनाये जा रहे हों—अगर वहाँ जाकर बैठें तो ढेर सारी लोक-कथाएँ सुनने को मिलेंगी। लोक-साहित्य की कमी कहाँ है? चोपाल-चोपाल पर लोक-साहित्य का शुभ नेग बैटता है, गली-गली में नन्हें बच्चे बिना मूल्य लोक-साहित्य फैलाते हैं, घर-घर में बुढ़ी माताजी लोक-साहित्य का प्रसाद बाँटती बैठी मिलेंगी।

लोक-कथा लोक-साहित्य का एक बड़ा अंग है। सामान्यतया निम्न बातों को लोक-साहित्य के अंग-स्वरूप माना जा सकता है :

1. लोक कथाएँ
2. लोकगीत
3. लोक रूढ़ियाँ
4. लोक रम्मतें
5. लोक कहावतें
6. लोक बहम अथवा लोक-मान्यताएँ

इनमें से लोक-कथा और लोक-गीत लोक-साहित्य के अंग हैं क्योंकि इनमें लोक-जीवन का सच्चा प्रतिबिम्ब है। यही नहीं, अपितु इनमें लोक-जीवन की असली मलाई है। लोक-कथाएँ हमें उन सभी स्थानों पर मिल जाएँगी, जहाँ-जहाँ पर लोक-साहित्य सुलभ है।

लोक-कथाओं के अनेक प्रकार हैं। लोक-जीवन की विविध स्थितियों के चित्रों से भरपूर अनेक लोक-कथाएँ हम इकट्ठी कर सकते हैं। लोक-जीवन की अलग-अलग समय की अभिलाषाओं का पोषण करे, ऐसी विविध प्रकार की कहानियों के अस्तित्व में ही लोक-जीवन की खूबी है। लोक-कथाओं के भंडार में आबाल-वृद्ध सभी के लिए कहानियाँ संचित हैं। लोक-कहानियों के अत्यंत विशाल मिठे जलाशय से शायद ही कोई प्यासा लौटता है। जिसे जितनी चाहिए, उतनी ही कथाएँ इस सरोवर के तट पर उपलब्ध मिलेंगी। क्या बालक, क्या वृद्ध, क्या स्त्री, क्या पुरुष, क्या राव, क्या रंक, क्या गृहस्थ, क्या साधु, दया वेश्या, क्या कुलांगना, प्रत्येक व्यक्ति कहानी के लिए एक-सा है, प्रत्येक व्यक्ति के लिए मनपसंद कहानी

तैयार रहती है। हास्य-विनोदी को हास्य-प्रचुर कहानी चाहिए तो गंभीर तत्त्ववेत्ता को वैसी चाहिए—पर ऐसा हो नहीं सकता कि ऐसी कहानियाँ इन्हें न मिलें! ऐसी कथाओं के प्रकार निम्न प्रकार से गिनाये जा सकते हैं :

1. प्राणियों की कथाएँ

ऐसी कथाओं के संग्रहों में ईसप नीति, कुछ हद तक जातकमाला, पंचतंत्र व हितोपदेश है। प्राणियों की कथाओं द्वारा समाज को धर्मनीति आदि का ज्ञान देने की इन कथाओं में शक्ति विद्यमान है। पुराने जमाने में ऐसी कथाएँ धार्मिक शिक्षा देने के लिए काम में ली जाती थीं। ये संग्रह किसी जमाने की प्रचलित लोक-कथाओं के ही समूह हैं।

2. प्राकृतिक घटनाओं एवं दृश्यों संबंधी कथाएँ

समाज के बाल्यकाल से जब तक विज्ञान का निर्मल प्रकाश चारों ओर फैला न था, वहाँ तक ऐसी कथाओं में लोग बहुत रुचि लेते थे और आज भी अज्ञानी लोग ऐसी कथाओं में आनंद ले सकते हैं। अज्ञात प्रदेशों से संबंधित जानकारी के अभाव में ऐसी कथाएँ लोगों को अत्यंत प्रिय लगती हैं। ऐसी कथाओं में जो कुछ भी अद्भुत है, जो भी अगम्य है उसका लोक दृष्टि से तथा कल्पना से खुलासा करने का प्रयत्न है। ऐसी कथाओं को अंग्रेजी में प्रकृति-कथाएँ (Nature-Myths) कहा जाता है। चूहे-बिल्ली और फुत्ते-बिल्ली में कुदरती बैर क्यों है, चंद्रमा में हिरन क्यों दिखता है, आकाश ऊँचा कैसे है, बिजली कौंधने के बाद बादल क्यों गरजता है, आदि प्राकृतिक घटनाओं के खुलासे के बतौर ये कहानियाँ हैं। अंग्रेजी में Shovona Devi की लिखी Nature Myths नामक एक पुस्तक भी है।

3. वनस्पति जीवन की कथाएँ

ऐसी बातें हमारे लोक-साहित्य में बहुत कम हैं। अंग्रेजी साहित्य में ऐसी बातें अधिक मिलती हैं। लाजवंती के पौधे को छूने से उसके पत्ते नीचे क्यों झुक जाते हैं, इस तरह की कथाएँ हैं ये! ऐस्पन वृक्ष के पत्ते हिलते क्यों हैं और पतझड़ के मौसम में भी अमुक-अमुक वृक्षों के पत्ते झड़ते क्यों नहीं—इस बारे में अंग्रेजी में कई कहानियाँ हैं।

4. वार-त्थोहार की कथाएँ

वार-त्थोहारों की कहानियाँ को हम भलीभाँति जानते हैं। बोल चौथ, गणेश चौथ, शीतळा सप्तमी आदि की कहानियाँ हम आज भी सुनते हैं। मि. किन्कैड ने तो Deccan Nursery Tales नामक वार-त्थोहारों की एक पुस्तक भी प्रकाशित की है। पंडितजी महाराज के पास वार-त्थोहारों के अवसरों पर बैठकर आज भी हमारी महिलाएँ प्रेमपूर्वक कथाएँ सुनती हैं।

5. बाल-कहानियाँ

बाल-कथाओं का प्रकार भी बड़ा अजीब है। जिन कहानियों में खास तौर पर बालक ही मजा ले सकते हैं, उनको ही हम बाल-कथाएँ कहेंगे। सादी और छोटी कहानियाँ बालकों को बहुत प्रिय लगती हैं। उनके आसपास घटने वाली घटनाओं का प्रतिबिम्ब, पशु-पक्षियों का व्यवहार, छोटी-छोटी तुकबंदियाँ जो फटाफट कंठस्थ हो जाएँ और जिन्हें कहानी में बार-बार दोहराया जाए—ये चीजें बाल-कहानियों की विशेषताएँ मानी जाती हैं। हमारा भाषा में (गुजराती में) ऐसी बाल-कहानियों के संग्रह बहुत कम हैं। कहानी को बाल-कहानी कह देने मात्र से वह बालकथा नहीं बन जाती। बाल कथाओं के लक्षणों का भली भाँति ज्ञान न होने से बहुत-से लोग दूसरी तरह की कहानियों को भूल से बाल कथा कह बैठे हैं, इससे सावधान रहना होगा।

6. कहावतों का मूल बताने वाली कहानियाँ

कई ऐसी कहानियाँ हैं कि जो हमें हमारे बीच प्रचलित कहावतों का मर्म बताती हैं। जब तक हमें यह जानकारी नहीं होगी कि कहावतें कैसे बनीं, तब तक हमें उनके प्रयोग का पता कैसे लगेगा। सभी कहावतों का मूल तो कुछ होता ही है। ऐसी मूल बताने वाली कहावतों की कथाओं का एक अलग संग्रह बन सकता है। ऐसा एक संग्रह श्री गणेशजी जेठभाई ने प्रकाशित करके लोक-साहित्य की श्रीवृद्धि की है। इस संग्रह का नाम है 'कौतुकमाला'। अंग्रेजी साहित्य में ऐसी कथाएँ देखने में नहीं आईं। गुजराती भाषा के लोक-साहित्य की यही एक विशेषता और सम्पत्ति है। ऐसी कहानियाँ लोक-साहित्य की दृष्टि से विशेष अध्ययन करने योग्य हैं। पुराने लोग किस तरह के जीवन में अधिक रुचि लेते थे, किस प्रकार का रहन-सहन उन्हें आकर्षक लगता था, उनकी रीति-नीति की कल्पना कैसी थी, इसकी सही तस्वीर ये कहानियाँ दर्शाती हैं। कहावतें समाज के मन का एक बहुमूल्य चित्र

हैं। ये अपने आप में लोक-साहित्य का अंग हैं अतः इनका मर्म समझाने वाली कहानियों की कीमत अमूल्य है।

7. विनोद-वार्ताएँ तथा चातुरी की वार्ताएँ

हम लोगों का विनोद चातुर्य-प्रधान मालूम पड़ता है। समाज की वैश्यवृत्ति के अनुकूल चातुर्य तथा विनोद ऐसी कहानियों में स्थान-स्थान पर नजर आता है। एक लंबे अर्से से गुलामी में सड़ते लोगों में साहस की कहानियों की बजाय चातुरी की कहानियाँ ही अधिक मिल सकती हैं। किसी से ठगे नहीं जाने और संभव हो तो दूसरों को ठगने में जिन दिनों लोगों की वृत्ति अधिक बढ़ गई होगी उस जमाने के लोगों के जीवन की झाँकी दिखाती हैं ये विनोदमय चातुरी की कहानियाँ। इन कहानियों में बुद्धि-कौशल तो है ही, मीठा विनोद भी है। पर इन सब से अधिक इनमें स्व-रक्षण का विचार अधिक है। लेकिन ऐसी बौद्धिक चातुरी की कहानियाँ अत्यंत कुशल मस्तिष्क से निकली हुई होनी चाहिए। इन कहानियों को रचने वाली प्रजा के बुद्धि-वैभव के लिए तो हमें उन्हें मान देना ही चाहिए। ऐसी कहानियों का भंडार है 'बादशाह और बीरबल' की कथाएँ। 'टचुकड़ी सौ बातें' भी बाल-कहानियों की बजाय चातुरी की महिमा गाने वाली कहानियों का संग्रह है। एक तरह से 'कौतुकमाला' भी ऐसी ही कहानियों का एक प्रकार है।

8. पौराणिक कहानियाँ

स्वयं पुराण की कहानियाँ और उनके ऊपर वेश बदलकर लिखी गई अलग-अलग तरह की चलने वाली कहानियाँ पौराणिक ही कहलाती हैं। ऐसी कहानियाँ का टोप नहीं है। इनका एक अच्छा-सा संग्रह होना जरूरी है। हमारे पुराण तो कथा-कामधेनु हैं अथवा कथा-कल्पवृक्ष हैं। अगर यों कहें तो अतिशयोक्ति नहीं कि पुराण कथाओं का महासागर है। अनेकानेक लोक-कथाएँ पुराणों से उद्भूत हैं।

9. शूरवीरों की कहानियाँ

काठियावाड़ जैसे अद्भुत पहाड़ी भुलक में शूरवीरों की कहानियाँ न हों तो भला और कहाँ होगी? चातुरी की बातें काठियावाड़ के व्यवहार कुशल बनिये के मुँह से जितनी अच्छी लगती हैं उतनी ही ये शूरवीरों की कहानियाँ काठियावाड़ के

वीर नरों का गुणगान करने वाले चारणों-भाटों के मुँह से अच्छी लगती हैं। काठियावाड़ का एक-एक स्मृति-स्तंभ शूरवीरता की कहानी कहता है। शूरवीरता की ये बातें गढ़वियों के पास लड़ते समय निकलने वाले रक्त की भीति अब भी ताजी की ताजी हैं। राजपूत लोग अब भी ये कहानियाँ सुनते-सुनते अपनी जूनी-पुरानी तलवार की मूठ खींचने लगते हैं और व्यवसायी जागीरदार मूँछों पर ताव देते हुए अब भी ललकारने लगते हैं। ऐसी कहानियों के संग्रह की भी बहुत जरूरत है। कविता, दूहों, सोरठों से भरपूर चारणी भाषा में सजी-संवरी कहानियों ने तो काठियावाड़ का ही वर्ण किया है। जैसा इसका किसी जमाने का पराक्रम है, वैसी ही इसकी बातें हैं।

10. प्रेम कहानियाँ

गुजराती भाषा को काठियावाड़ ने ही प्रेम कथाएँ दी हैं। ये प्रेम कथाएँ विश्व-साहित्य में अद्वितीय हैं। सदेवंत-सावलिंगा और हलामण जेठवा प्रेम की अद्भुत कथाएँ हैं। पर ऐसी एक-दो कहानियाँ ही काठियावाड़ी लोक-साहित्य में नहीं हैं, अपितु अनेकानेक हैं। सवाल यह है कि किन कहानियों को मान दें और किनका अपमान करें। श्री कान जी धर्मसिंह ने काठियावाड़ी साहित्य की दो पुस्तकें प्रकाशित की हैं तथा प्रेम-शौर्य अंकित साहित्य की बानगी चखाई है। काठियावाड़ी जवाहिर में भी काठियावाड़ी अनमोल कथाओं की कणिकाएँ संग्रहीत हैं। अंतिम प्रकाशित कृति 'काठियावाड़ की जूनी कथाएँ' भी हमें साहित्य का मधुर रस चखा रही हैं। श्री धीरसिंह गोहिल ने हमें इस अद्भुत साहित्य से अच्छी-खासी पहचान कराई है। इनमें कथाकार की बजाय लोक-साहित्य रसिक की दृष्टि होती तो उनका काम अधिक दीप्तवान होता। काठियावाड़ अर्थात् आज का काठियावाड़ नहीं, रेलवे से जकड़ा हुआ काठियावाड़ नहीं। काठियावाड़ अर्थात् आज के हमारे जैसे वीर्यरहित जनों का काठियावाड़ नहीं। यह काठियावाड़ तो इन कथाओं में है। यह काठियावाड़ वाघेरी के या मूख माणक और बाबावालों के पराक्रमों में तथा श्रेणी व ऊजळी के प्रेम प्रवाह में है। काठियावाड़ का इतिहास अभी हमें जानना है।

11. भक्तों की कहानियाँ

भक्तों की कथाएँ ऐतिहासिक होते हुए भी चमत्कारों से इस कदर गुंथी हुई हैं कि लोक-वार्ताओं जैसी लगती हैं। ऐसी कथाओं का एक संग्रह भक्त लीलामृत

और भक्तमाला नामक ग्रंथों में है। नरसिंह और मीरा, पीपा और धनोजी, रोहीदास, लालो और मस्तराम के काठियावाड़ में भक्तों की कहानियों का पार ही नहीं है। ये कथाएँ अद्भुत होने से ही लोकवार्ता में बैठ गई हैं और अब निकल भी नहीं सकतीं।

12. सतियों की कहानियाँ

सतियों की कहानियाँ इतनी अधिक प्राचीन, अद्भुत और सुंदर हैं कि इन्हें भी लोकवार्ता के क्षेत्र में स्थान मिला है। राणकदेवी, नागमती और जसमा की बातों ने लोक साहित्य के दोहों-सोरठों को तेजस्विता दी है। आज भी राणकदेवी और जसमा की कथाएँ स्थान-स्थान पर गुजरात में गाई जा रही हैं। आज भी अनेक अनजान सतियों के स्मृति-स्तंभ उनके पातिव्रत्य की पवित्रता और अबलाओं के बल की एक-एक, नई-नई मोहक कथाएँ कह रहे हैं। लोक-कथाओं के संग्रहकर्ताओं को अब भी इन स्मृति-स्तंभों, इन पगलियों और सतियों के हाथों बहुत-बहुत पूछताछ करनी है।

13. ऐतिहासिक दंतकथाएँ और स्थानबद्ध कथाएँ

ऐतिहासिक घटनाओं-हकीकतों के साथे में लोक साहित्यकारों और कवियों ने कैसी-कैसी अद्भुत कृतियों को जन्म दिया है। गाँवों के लोग इतिहास की एक भी पुस्तक नहीं पढ़ते, फिर भी उन्हें इन दंतकथाओं की वजह से पूर्वजों का अच्छ-खासा परिचय हो जाता है। काकू की बात जितनी रसिक लगती है उससे भी अधिक धुंधलीमल बाबा की कहानी लोगों को अधिक ऐतिहासिक, अधिक जीवंत और सच्ची लगती है। हमारी भूमि अभी भी ऐसी है कि जहाँ स्थान-स्थान पर लोक-इतिहास लिखा है। चमारड़ी गाँव का ईशाळवा एक कथा कहता है तो बड़वाण की माधावाव दूसरी कथा कहती है; गूंदी कोळियाक के खंडहर ऐतिहासिक कथाएँ कहते हैं लेकिन उनसे भी बढ़कर लोक-कथाएँ कहते हैं। रूवापरी माता एक लोकवार्ता की देवी है, दूणो दूसरी लोककथा का स्थल है, घोघा और पीरम में कितनी ही मोखड़ाजी की कथाएँ चलती हैं, गिरनार और खरड़ा के पत्थर-पत्थर में एक-एक ऐतिहासिक दंत कथा खुदी है। पत्थर से जब ये कथाएँ कागज पर उतरेंगी तब हम इनका मर्म समझेंगे।

14. भूत-प्रेतों की कहानियाँ

राक्षसों और भूत-प्रेतों की कहानियाँ प्रत्येक देश के लोक-साहित्य में दिखाई देती हैं। गुजरात का मानस भी भूत-प्रेतों से विहीन नहीं। भूत-प्रेतों की बातों के लिए लोक-साहित्य को पौराणिक धर्मशास्त्रों का उपकार मानना चाहिए। प्रत्येक धर्म ने अपना बल स्वर्ग और नरक की भावना पर रचने का एक प्रयत्न किया है। इसी प्रयत्न से यह भयंकर लोक-साहित्य प्रकट हुआ है। 'झबरे भूत को तो हमारे शिष्ट साहित्य में कानों से बावले लोगों ने अमर कर दिया। वज्र गाँव का मामा, थान का बाँडिया बेली और ऐसे कई भूत आज भी लोगों की अकल को घुमा रहे हैं। स्वयं को सभ्य और शिष्ट मानने का दावा करने वाले लोग बहुत हैं, वे वेद-वेदांत और धर्म में विश्वास रखने का हक भी जताते हैं फिर भी भूत-प्रेतों की बातों में रुचि लेने वाली जनता का मानस अभी तक असभ्य और जंगली कहीं जाने वाली जनता के मानस से ऊपर नहीं उठा अथवा इस तरफ उनकी सोच भरी दृष्टि गई नहीं, यह बड़े आश्चर्य की बात है। अथवा क्या यह मान लें कि वे सभी योनियों को प्रमाणित करने के लिए जिस तरह का वैज्ञानिक बुद्धिबल और जैसी निडरता हममें होनी चाहिए, उसकी खामी बता रहे हैं।

15. कौटुम्बिक कहानियाँ

ऐसी कहानियाँ हमारे साहित्य में अपार हैं। इन कहानियों में हमारे संयुक्त परिवार के जीवन की भरपूर कड़वी-मीठी छाया मिलती है। ऊपर से स्वतंत्रता और सभ्यता के वस्त्र पहन रखे हैं फिर भी कौटुम्बिक स्थिति और विचारधारा में कोई महत्वपूर्ण बदलाव नहीं आया, यह बात इन कौटुम्बिक कहानियों के अब तक के स्वीकार से प्रमाणित होती है। आज तो पारिवारिक-जीवन का सुख समाप्त हो गया है तथा वैयक्तिक जीवन का नया प्रयोग पूरी तरह से असफल हो गया है—यही बात आज का लोक-जीवन हमें कह रहा है। ऐसी कहानियों के संग्रह अधिक उपयोगी हैं क्योंकि इन्हीं से हम अपने जीवन को अधिक से अधिक पहचान सकेंगे तथा अपनी वर्तमान दशा से चौंक उठेंगे।

16. टोनों-टोटकों की कहानियाँ

कहा जाता है कि टोनों-टोटकों और जादू-मंत्र की कहानियाँ कामरूप देश से आई हैं। चाहे जो कहीं पर हमारी बगल वाले, सफेद कपड़े पहने रहने वाले गुरु

महाराज का और कामण-दूमण (वशीकरण) का गहरा संबंध है। बचपन में मैंने गुरु महाराज और कामण-दूमण से संबंधित बातें बहुत सुनी थीं, जो मुझे आज भी अच्छी तरह याद हैं। पर ये कहानियाँ 'अरेबियन नाइट्स' में कही गई जादू-मंत्र की कहानियों जैसी नहीं हैं, उनके जैसी अद्भुत नहीं हैं। कदाचित् ये कहानियाँ अरेबियन नाइट्स की कहानियों की बजाय ज्यादा सच हैं, ऐसा माना जा सकता है। ये कहानियाँ यूरोपियन देशों की जादू वाली कहानियों के जितनी ही निराली हैं। इन कहानियों का जन्म हमारे यहाँ के गुरु महाराज और दूसरे जो प्रेत विद्या और अन्य वशीकरण विद्या जानते हैं और जो इनका दुरुपयोग करते हैं, उनसे हुआ है। ऐसी कहानियाँ अब बहुत थोड़ी सुनने में आती हैं।

17. लोक-कथाएँ

ऊपर वर्णित सभी तरह की कहानियाँ एक तरह से लोक-कथाएँ ही हैं। फिर भी जो कहानियाँ उपर्युक्त प्रकारों में सामान्यतया नहीं आतीं, उन कहानियों को लोक-कथाओं के विभाग में रख दें तो कोई एतराज नहीं है। सभी लोक-कथाएँ अनेक रसों से युक्त हैं, अनेक रंगों में रंगी हैं तथा लोक-जीवन को अनेक तरह से चित्रित करने वाली हैं। देश-देश की और प्रांत-प्रांत की लोक-कथाएँ देश-देश और प्रांत-प्रांत की विशेषताओं के कारण अलग-अलग होती हैं। पंजाब की, बंगाल की तथा हिन्दुस्तान की लोक-कथाओं तथा गुजरात की लोक-कथाओं में कहीं-कहीं समानता मालूम पड़ती है, जबकि मलाया लोक-कथाओं और गुजराती लोक-कथाओं में समानता नहीं है।

अब थोड़ा लोक-कथाएँ इकट्ठी करने वालों के दृष्टि बिन्दु के बारे में। जैसा कि ऊपर लिखा गया है, लोक-साहित्य जहाँ-तहाँ चारों ओर बिखरा हुआ है और उसे इकट्ठा करने का काम बहुत मुश्किल है। आज लोक-साहित्य के भंडारियों और इनके संग्रहकर्ताओं के बीच कृत्रिम अंतर बहुत पड़ गया है। भंडारी माने बैठे हैं कि अब उनके दिन गए, समाज में उनका कोई दर्जा नहीं रहा और उनका ज्ञान समाज के लिए अनुपयोगी है। संग्रहकर्ता भी ऐसा ही मानते हैं कि उनका वर्ग अधिक विद्वान है, अधिक समझदार है। और भंडारी-वर्ग जैसे अज्ञानी वर्ग से जितनी जल्दी संभव हो सके, लोक-साहित्य जैसी अमूल्य वस्तु ले लेनी चाहिए। संग्रहकर्ता सदैव विद्वान वर्ग से या अधिकारी वर्ग से होने के कारण उभय वर्ग संग्रह के कार्य में

लगभग असफल रहते हैं। अगर थोड़ी-बहुत सफलता मिलती भी है तो साहित्य भंडार के खरे रत्नों की शोध को लेकर नहीं वरन् खोटे और काच के रत्नों की शोध को लेकर ही मिलती है। गाँवों के लोगों, वृद्धजनों एवं अशिक्षित नर-नारियों को बाहरी वेशभूषा और वाणी-व्यवहार से हम सम्य-सुसंस्कृत लगते हैं, और वे मान बैठते हैं कि पढ़े-लिखे लोग तो हमेशा ही उन्हें किसी न किसी बहाने ठगते रहे हैं, ऐसे में हमें अपने बाहरी लिबास, शिष्ट वाणी-व्यवहार और अन्य कारणों को छोड़ देना चाहिए और उनकी नजरों में उनके जैसा ही दिखना चाहिए। हमारा उद्देश्य भी यह रहे कि उन लोगों को समझें, उनका सम्मान करें तथा उन्हें साथ लेकर चलें। हमारे व्यवहार से उन्हें ऐसी स्पष्टता साफ दिखनी भी चाहिए। द्रव्य बल से, पद से अथवा किसी अन्य युक्ति से हम उनके हृदय-भंडार को पूरा-पूरा खोल नहीं पाएँगे अथवा उनकी सच्ची आत्मा को पहचान ही नहीं सकेंगे। जब हम उनके जीवन में रुचि व आनंद लेते उन्हें दिखेंगे और उनकी नजरों में उनके जैसे ही सरल स्वाभाविक लगेंगे तब उनका साहित्य-भंडार अपने आप हमारे समक्ष खुल जाएगा : तभी हम अपने लोक-साहित्य की समृद्धि पूरी तरह से प्राप्त कर सकेंगे। इतना करने के लिए हमें अपने बड़प्पन का अभिमान छोड़ना होगा। हमें अपने दीवानखानों, ऑफिसों और क्लबों में बैठना छोड़कर चौपालों में, ग्वालों के झोंपड़ों में अथवा पानी पिलाने वाले साथी के पास बैठना होगा। अपनी बाल-क्रीड़ा में मस्त बालकों की रम्मतों में हमें रुचि लेनी होगी। रात को रासड़े गाने वाली महिलाओं के गीत सुनने के लिए अपने कान खुले रखने होंगे। वृद्धा माजी के पास जाकर बैठना होगा, उनके पुराने तार को छेड़ना होगा और उससे निकलने वाली गूँज की भाषा को लिखकर रखना होगा। परंतु अगर कान में कलम खोंसकर तथा नाक पर चश्मा चढ़ाकर अगर लोक-साहित्य संग्रह करने जाएँगे तो कोई एक अक्षर नहीं बताएगा। अगर आप छोटे बच्चों को इकट्ठा करके एक कहानी कहेंगे तो वे दस कहानियाँ सुनाएँगे, इक्रे में बैठे-बैठे एक दोहा बोलेंगे तो इक्रे वाला अपने आप दोहों की नदी बहा देगा। अगर कोई लोक साहित्य का भंडारी आपके लोक-साहित्य संबंधी अनुराग को जान लेगा तो वह अपना हृदय छिपाएगा नहीं। शिक्षित लोगों में से जो लोग समाज के अधिक परिचय में आते हैं वे लोक-साहित्य के संग्रह में अच्छा सहयोग दे सकते हैं। गाँवों के वैद्य, अध्यापक, कोतवाल या पुरोहित इस काम के लिए बहुत उपयोगी हैं। स्व. रणजितराम भाई ने अध्यापक वर्ग का अच्छा उपयोग किया था। अच्छा तरीका तो यह है कि जिन लोगों का साहित्य इकट्ठा करना हो, संग्रहकर्ताओं को

अमुक समय उनके साथ इकट्ठा रहना चाहिए। लोक-जीवन के प्रसंगानुसार उन्हें लोक-साहित्य अपने आप मिल जाएगा। लेकिन जब तक ऐसा संभव न हो, तो उपर्युक्त परिचित लोगों के मारफत लोक-साहित्य के भंडारियों से मिलना चाहिए। ऐसे लोग भजन-मंडली में, मेले में, माताजी के मठ में, रांदल के मंडप आगे, शीतला माता के थान पर, गाँव के सिवान पर, चरमाकिया (हरिजनों के एक देवता) के पास, गायों के घण अथवा ग्वालों के झोंपड़ों में खिलते हैं। अशिक्षित महिलाओं के पास से लोक-साहित्य के रत्न बटोर पाना बहुत मुश्किल काम है। स्त्री-सुलभ स्वभाव के कारण वे हमारे पास कहानी सुनाने या गीत गाने नहीं बैठेंगी। लेकिन चाँदनी रात में जब लोक-गीत की ढेर लगती है तब दूर बैठे-बैठे हमें उस प्रवाह में पुण्य स्नान करने की कोई मनाही नहीं है। आस महिलाएँ इस काम में अधिक मददगार हो सकती हैं। इनके बारे में भी ऐसा है कि अगर एक बार ऐसे शर्मिले वर्ग को ऐसा लगेगा कि आपका उद्देश्य निर्मल है, तो वे लंबे समय तक संकोच त्याग कर अपना हृदय खोल देंगी। अज्ञानी लोगों पर खूब ममता और प्रेम प्रकट करने से वे अपने हृदय के भाव खोल कर कहेंगी ही। बस, उन्हें इतना भरोसा आना चाहिए कि उनकी हैंसी नहीं उड़ाई जा रही है अथवा हमारा उद्देश्य उनको या उनके साहित्य को बदनाम करना नहीं है। ऐसे लोग इनाम के वशीभूत होकर लोक-साहित्य प्रदान कर देंगे, ऐसी गलती कभी नहीं करनी चाहिए। हमें यह भी सोचना चाहिए कि अगर अधिकार के बल पर कभी लोक-साहित्य मिला है तो वह कितना सच्चा है। इन लोगों की प्रेमपूर्वक कद्र करना ही इन्हें अच्छा और सच्चा बदला देना है और हमें यही माध्यम हमेशा काम में लाना चाहिए।

यह विषय जितना महत्व का है उतना ही विशाल है। मैंने लोक-कथा साहित्य क्या है, कैसे-कैसे उसके प्रकार हैं और इस साहित्य को कैसे प्राप्त किया जा सकता है, इस संबंध में विचार प्रकट किए हैं। इस विषय पर बहुत-बहुत कहा जा सकता है। लोक-साहित्य क्या है? उसके अध्ययन की जरूरत क्या है? इसका अध्ययन कैसे किया जाए आदि विषय एक प्रकार के हैं। लोक-गीत का प्रदेश भी ऐसा ही है, इतना ही सुंदर और सरस। लोक-साहित्य के अन्य पक्ष भी कम महत्त्व के और अनुपयोगी नहीं हैं। परंतु इन बातों का प्रस्तुत संदर्भ से सीधा संबंध नहीं है अतः यही विराम देता हूँ। □

बारहवाँ प्रकरण

अन्ततः

1. कहानी के बारे में थोड़ा-सा

धर्म नीति, सामाजिक आचार-व्यवहार, राजनीतिक विचार, तरह-तरह की ज्ञान-समृद्धि आदि बहुत-बहुत बातें हम कहानी के माध्यम से सिखाने के लिए निकले थे। प्रत्येक कहानी कहने के बाद हमने उसका नवनीत निकाल कर बालकों के हाथों में दिया। कहानी के नाम पर बालकों को इतिहास और भूगोल आदि विषयों का कड़वा घूँट पिलाया तथा कहानियों के माध्यम से भाषा-शिक्षण का काम भी हाथ में लिया। संक्षेप में कहें तो कहानी को कामधेनु या कल्पवृक्ष बनाकर उसके नीचे बैठे और जो भी मन में आया, उसी को कथा के माध्यम से कहने लगे। संगीत व कला जैसे विषयों को भी कहानी के द्वारा पढ़ाने की हिमायत की गई और प्रयोग होने लगे।

इसके साथ ही कहानी का साहित्य बढ़ा। आज देखते हैं तो कितनी ही तरह का साहित्य मिलता है। नीति का शिक्षण देने के लिए आनंदशंकर भाई की पुस्तक 'नीति-शिक्षण' तैयार है। अंग्रेजी में गुल्ड की 'मोरल टेल्स' का पार ही नहीं है। पढ़ियार ने सामाजिक दृष्टि से ऐसी कहानियाँ लिखीं। भोगिन्द्र राव और दूसरों ने बालकों को तरह-तरह का शिक्षण मिले, इस दृष्टि से ऐसी-ऐसी कहानियों का भाषांतर किया अथवा रचीं। अंततः ऐसा समय आया कि इतिहास को कहानी के द्वारा पढ़ाने की प्रथा पड़ी। निबंध लेखन में कहानी महत्वपूर्ण बुनियाद के रूप में मानी गई और विज्ञान के विषय भी कहानी में लिखे गए। इस तरह मानो सारा संसार कथामय अथवा कथा को अखिल विश्वमय कर डाला।

जिस तरह कहानी के उपयोग में विशालता और कथा-साहित्य में विपुलता आई उसी तरह कथन-शैली में बड़े-बड़े सुधार किए गए। कहानी को साहित्य की दृष्टि से तथा कला की दृष्टि से कहने का मन हुआ। 'बुढ़िया मौँ' वाली शैली फिरने लगी, बुढ़िया मौँ के बिना बरते हुए वाक्यों वाली कहानी को तहस-नहस करके उसमें विशेषण और क्रिया-विशेषणों के रंग भरे गए, प्रकृति वर्णन किया गया,

218 कथा-कहानी का शास्त्र

मनुष्य-स्वभाव के लक्षण डाले गए तथा कहानी को अधिक से अधिक आकर्षक बनाने के प्रयत्न किए गए। भाषा की दृष्टि भी पीछे न रही। कहानी में कहावतों और उपमालंकारों ने प्रवेश किया, वर्णनों ने छल रचा और कहानी सुशोभित हो उठी। कहानी कहने वाले कहानी में प्रस्तुत कला और साहित्य को बालकों के समक्ष प्रेमपूर्वक परोसने लगे। वार्ताकार बोला :

'एक था सुंदर सरोवर, तरह-तरह के कमल खिले हुए : कोई सफेद, कोई लाल, कोई नीले। उनमें भँवरे भँडरा रहे थे। कोई कमल सवेरे सूरज के साथ खिलता तो कोई राते में चंद्रमा के साथ।'

अथवा

'एक था चिड़ा, दो उसके पंख और एक उसकी चोंच। कभी इधर गरदन करता, कभी उधर गरदन करता। एक थी चिड़ी, छोटे-छोटे पैर और छोटी-सी चोंच। चीं-चीं करती और दाने चुगती।'

अथवा

'एक राजा था। उसका राज बहुत बड़ा था। कितने ही कोस लंबा और कितने ही कोस चौड़ा। उसमें बड़े-बड़े शहर थे, गाँव पहाड़ और नदियाँ थीं।'

अथवा

'एक थी भली लड़की। भलाई का भंडार, दया में तो राजा जैसी, दान में राजा कर्ण जैसी और रूप की तो क्या कहें? इन्द्र की अप्सरा भी उसके सामने शर्मिन्दा होती। मानो भगवान से फुरसत से उसे रचा था।'

इस तरह कहानियाँ नई दृष्टि के साथ लिखी गईं। शैली मनमोहक, वर्णन मनोरम। अगर चाहो तो भाषा के सुंदर प्रयोगों वाली कहानी मिल जाए, चाहो तो शैली की सुंदरता युक्त मिले; चाहो तो काव्य जैसी मिले, चाहो तो अपधागध और चाहो तो टैगोर की कृतियों जैसी कहानियाँ मिले।

आज ऐसी वार्ताएँ भी उपलब्ध हैं।

इस तरह सब तैयार है। एक बार पानी में बाढ़ आ गई। कितनी ही चीजें बह गईं। अब धीरे-धीरे पानी नियंत्रण रहा है; अब शैली का और वस्तु का विचार शांति के साथ किया जा सकेगा।

अन्ततः 219

एक बात तो लगभग नक्की हो गई लगती है। वह यह है कि कहानी का मुख्य प्रयोजन आनंद है : शुद्ध, स्वाभाविक, स्वस्थ और प्रेरक आनंद। बालक कहानी के आनंद को सहज शक्ति से पकड़ सकते हैं। ऊपर के आनंद के भीतरी तले में कहानी में क्या छिपा है, यह उनके झट से हाथ आ जाता है। कहानी के नाम पर हम क्या बताना चाहते हैं, वह बात लंबे समय तक उनसे छिपी नहीं रह सकती। इस तरह वे तत्काल जान जाते हैं कि अमुक कहानी तो नाम मात्र की कहानी है, इसके भीतर तो इतिहास या भूगोल सीखने का काम है। उन्हें तत्काल पता लग जाता है कि अमुक पूरी कहानी धर्म का सार बताने के लिए कही गई थी।

कहानी के नाम पर सुनने के लिए इकट्ठे हुए बालकों को जब उसमें तत्त्व की बात नहीं मिलती तो उठ खड़े होते हैं। इससे हमें समझ लेना चाहिए कि भले ही हम कहानी में चाहे जो बातें घुसा दें पर उसकी सही परख तो इसी में निहित है कि वह बालकों को आनंद दे।

नीति का सार बच्चों से निकलवाने की प्रवृत्ति इधर बंद होने लगी है। यह अच्छी बात है। कहानी कहने के बाद सार तत्त्व को नहीं निकलवाना चाहिए, यह विचार इधर स्वीकार किया जाने लगा है। कारण यह है कि बालक को कहानी सुनने में मजा आता है, उसे कहानी कहने में भी मजा आता है, पर कहानी सुनने के बाद तत्काल वहीं का वहीं उसे कहलवाना निरर्थक लगता है। बालकों को कहानी सुनने का शौक होने से जैसे वे सुनते हैं वैसे ही जब उन्हें कहने का शौक जागेगा तब कहने भी लगेंगे। यह एक सही और स्वाभाविक स्थिति है।

यह बात भी अब हमारी समझ में आने लगी है कि भले ही कहानी में इतिहास भरें या भूगोल, गणित भरें या अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र भरें या आरोग्य-विज्ञान, बालक कहानी के आनंद के साथ इनमें जा सकता है। अतः इस संबंध में हम कहानी की वस्तु को नए सिरे से देखने लगे हैं।

इस दृष्टि से कहने की और लिखने की कहानियों में फेर पड़ने लगा है। नई कहानियों में बोध को बोध की तरह न रख कर बोध की बात को उनके तानों-बानों में बुन दी जाती है। सीधे-सीधे कहानी में आचार-विचार को मान देने या इसकी टीका करने संबंधी लेख को निकाल कर इन्हें कहानी के रक्त-प्रवाह में मिला दिया गया है। कहानी की गुँथाई ही इस प्रकार होने लगी है कि उसमें सभी आ जाएँ।

इसी से बालक को कहानी अधिक सुंदर व आकर्षक लगती है। इस तरह कहानी की वस्तु के बारे में ठीक-ठीक चिंतन हुआ है।

2. कहानी कहने वाला खास शिक्षक

आज का युग विशेषीकरण का है, वैयक्तिक-विशेषता का है। प्रत्येक व्यक्ति में जो विशेषता है उसे विकसित करने में उसे और समाज को लाभ रहता है। 'जैक ऑव् ऑल एंड मास्टर ऑव् नन' की कहावत आज का युग बराबर मानता है। ऐसा भी माना जाता है कि अपना व्यक्तित्व पूर्णतया विकसित करने से ही समाज का व्यक्तित्व और उसका जीवन विकसित होगा। जिस व्यक्ति में जो विशेषता हो, अगर वह बराबर बाहर आएगी तो समग्रतया समाज को जिस चीज की जरूरत है, वह उसे मिल सकेगी। (तभी तो आज का युग विनिमय का नहीं।) आज का अर्थशास्त्र पुराने से निराला है। आज एक ही व्यक्ति को सभी तरह के व्यवहारों के लिए कुशलता विकसित करनी नहीं पड़ती, न श्रम उठाना पड़ता है। आज का युग श्रम-विभाजन का है। इस नए युग का असर सर्वत्र बढ़ता जा रहा है। शिक्षण में भी यह असर आया है। Subject Teaching इस युग का फल है। निष्णात के लाभ यह युग शिक्षण में ले रहा है तथा चाहता है। निष्णात व्यक्ति कोरा पोथी पंडित न रहे बल्कि धीमे-धीमे वह अपने एकांगी विषय में तलस्पर्शी ज्ञान अर्जित करे—इसी में वह सर्वदेशी बने और उसे बनना पड़ता है। शिक्षण में यह विचार ज्यादा से ज्यादा फैले, यही अभीष्ट है। सामान्य वातावरण का प्रश्न हो, वहाँ एक ही व्यक्ति की छाप काफी है। जहाँ शिक्षण विषयों में व्यक्ति की, शक्ति की, असाधारण विशेषता की जरूरत नहीं है वहाँ भले ही एक व्यक्ति एक से अधिक विषय सिखाए। परंतु जो विषय ऐसे हैं कि जिनका खास ज्ञान शिक्षक को अर्जित करना चाहिए, जिसे प्रस्तुत करने में कलात्मकता कहीं विद्यमान रहनी चाहिए, कैसे प्रस्तुत की जा सकती है—वह सब जानना आना चाहिए, जहाँ तलस्पर्शी ज्ञान के बिना हर्मिज नहीं चल सकता और जिसके लिए विशेष बुद्धि और श्रम चाहिए, वहाँ तो विषय-शिक्षण ही होना चाहिए।

कहानी हर आदमी को आती है, पर वह कहना भी जाने, यह जरूरी नहीं। प्रत्येक बालक कहानी सुनकर खुश होता है, पर खुश होने वाले बालक को सचमुच उत्तम रीति से ही कहानी सुनने को मिलती है, ऐसा नहीं है। कहानी सुननी अच्छी

लगती है, अतः जैसी भी कही जाए वह सुनता है। ऊँचे दर्जे की कहानी शैली उसने न सुनी हो तो सामान्य वार्ताकार को ही वह श्रेष्ठ मान लेता है, उसी से तृप्त हो जाता है। बालक के अधूरे आनंद और अतृप्ति को अगर हम पूरा आनंद और तृप्ति न दे सकें तो कम से कम बिखेरें तो नहीं, परंतु कहानी कहने का प्रयोजन बालक को शिक्षण के साथ पूरा लाभ और पूरा आनंद देना होना चाहिए।

कहानी सुनाने की प्रवृत्ति को विद्यालय में स्थान मिला। बालकों को तो सूखी रोटी भी मिठाई जैसी लगती है। गालियों और मार-पीट अथवा इतिहास, भूगोल, गणित की माथापट्टी के बीच में बालक को कहानी सुनने को मिले तो उसके मन में यह कोई कम महत्त्व की या ऐसी-वैसी बात नहीं। ऐसे में चाहे कैसा ही गैर जरूरी, बेकदर, अबूझ, कला का शत्रु जैसा शिक्षक क्यों न हो, अगर वह कहानी कहेगा तो बालक उसे सुनेंगे, वह उन्हें प्रिय लगेगा। भूखे आदमी के लिए सूखी रोटी भी बत्तीस व्यंजनों और तैतीस साग-सब्जियों के जैसी होती है। लेकिन पाकविद्या में निपुण व्यक्ति के पास तो कितनी ही तरह की सचमुच मीठी-मधुर बानगियाँ होती हैं।

पर हम बालक को सूखी रोटी कैसे खिला सकते हैं? उन्हें भूख लगी है अतः उन्हें उत्तम भोजन खिलाना चाहिए। कहानी सुनाने में हमें इसी प्रयोजन को ध्यान में रखना चाहिए। प्रत्येक शिक्षक में कहानी कहने की योग्यता नहीं होती, न हो सकती है। कइयों को कहानी याद नहीं रहती, वे पढ़ने के बाद भी भूल-चूक करते हुए कहानी कहते हैं। कोई रट कर बराबर कह देता है, कोई कहानी का रहस्य नहीं जानता, किसी के पास कहानी कहने का ढब नहीं होता। ऐसे कुशल शिक्षक तो बहुत कम होते हैं जो कथा का पूरा चित्र खड़ा कर सकें। गणित विषय में हर तरह का थोड़ा-बहुत जानने वाला शिक्षक नहीं चल सकता, तो भला जैसा-तैसा कहानी कहने वाला शिक्षक कैसे चलेगा!

कोई भी शिक्षक स्वयं को वार्ताकार के बतौर तैयार कर सकता है। उसे अपना कथा-भंडार बढ़ाते रहना चाहिए तथा कहानी कहने के सिद्धांत जान लेने चाहिए। कहानी कहने का विशेष काम शुरू करके वह कहानी का क्रम, वस्तु, रचना, शैली आदि निर्मित करने में सामर्थ्यवान हो सकता है। मात्र कथा कहने का एक विषय लेकर ही उसे इस काम में गहरे उतरना चाहिए। कथा की वस्तु अपने आप इकट्ठी होने पर उसके लिए कहानियों की पुस्तकें लिखने का काम आसान हो

जाएगा। कहानी के व्यापक अध्ययन के बल पर कथा-सृष्टि के पीछे रहने वाले मानवीय बुद्धि एवं भावनाओं के सूक्ष्म बलों और सतहों का अध्ययन करने में उसे मजा आएगा। कथा-साहित्य में वह अकेले साहित्यकार अथवा साहित्य-विवेचक का स्थान प्राप्त कर सकता है। इस तरह अगर वह इस एक ही विषय के पीछे पड़े तो नन्हें बालकों को पूरी तरह प्रसन्न करने के काम से लेकर कहानी में से निकलने वाले जीवन-दर्शन की मीमांसा तक पहुँच सकता है। इस दृष्टि से यह काम एक विशेष काम होना चाहिए और ऐसा होने पर ही कोई शिक्षक इस काम में उत्कृष्टता सिद्ध कर सकता है।

आर्थिक दृष्टि से भी कथा-शिक्षक की पदवी और स्थान किसी अन्य निष्णात शिक्षक के जितना ही ऊँचा चढ़ेगा। प्रत्येक विद्यालय में कहानी कहने वाले शिक्षक की जरूरत होती है। यह विशिष्ट शिक्षक प्रत्येक शाला में संगीत-शिक्षक या चित्र-शिक्षक की ही भाँति जाए और कहानी कहे। निजी घरों में भी जहाँ कहानी कहने की पुरानी प्रथा चालू रखने वाली कोई बुढ़िया न हो अथवा नई बुढ़िया को कहानी की कला न आती हो, वहीं वार्ताकार की जरूरत पड़ती है। शाम के समय की यह प्रवृत्ति बालकों को आनंद देगी, वहीं शिक्षक को योग्य मुआवजा देगी। अनेक शिक्षक-शिक्षिकाओं को कुशल वार्ताकार के रूप में तैयार होकर बाहर आना चाहिए। इससे वे सामान्य शिक्षक वर्ग से ऊँचे उठेंगे और उन्हें लाभ भी ज्यादा मिलेगा।

विशिष्टता के इस युग में कहानी कहने वाले का अनोखा विशिष्ट स्थान सुरक्षित रहेगा।

3. कहानी का जलसा

संगीत के जलसे के अभाव में एक रविवार को कहानी का समारोह रखा गया। यह समारोह संगीत समारोह से भिन्न प्रकार का था। भिन्नता इस रूप में थी कि संगीत के समारोह में बालकों को गाना पड़ता है, जबकि कथा-समारोह में बालकों को सुनना था और बड़ों को कहानियाँ कहनी थीं।

कुलीन, सतीश, भगवानलाल और मूलजी को छोड़ कर सभी बालकों ने इस जलसे में भाग लिया। सभा 12.30 से 3.45 तक चली। थका कोई नहीं, उल्टे

सभा जल्दी बंद कर दी गई थी, इस बात को लेकर श्रोताओं का एक वर्ग नाराज था।

सभा में कहानियों और वार्ताकारों की विविधता थी। ऐसी सभा से कैसे लाभ होते हैं अथवा इनसे क्या अर्जित किया जा सकता है?

बालकों की कथा सुनने की भूख को जल्दी से जल्दी मिटाने का या बढ़ाने का यह एक मार्ग है। सही क्या है?

कहानी सुनते-सुनते जब बालकों को थकान भी महसूस नहीं होती तो यह बात पता लगाने की है कि उनमें ऐसी कैसी रसिकता थी!

बालकों को कौन-सी कहानी पसंद आती है, कैसी पसंद नहीं आती है और लोकप्रिय कहानियाँ कौन-सी हैं, यह जानना भी जरूरी है।

समूहगत बालकों के लिए अथवा व्यक्तिगत बालकों के लिए ऐसे जलसों से बहुत सारी विचारणीय बातें मिलती हैं। कहानी कहते समय बालक के संबंध में जो कुछ अवलोकनीय है तथा उससे जो कुछ लाभ उठाने की बातें हैं, वे सभी बातें इस जलसे में मिल सकती हैं।

कैसी कहानी कही जाए और कैसी नहीं कही जाए, किस तरह कही जाए और किस तरह न कही जाए इन बातों का समाधान तो होना ही चाहिए, परंतु अगर बालक कहानी के पीछे पागल हो जाते हैं तो उसका कारण ज्ञात करके क्या ऐसे जलसों की परंपरा को आगे चलाने में कोई एतराज है? हम कहानी सुनाने के पक्ष में भी हैं और उसे लेकर बाधा भी है। यह प्रश्न विचारणीय है।

पर कहानी के जलसे से दूसरी बातें भी निकल आती हैं। क्यों रखें हम कहानी का जलसा? इसके बजाय लोक-साहित्य का समारोह रखें तो ज्यादा ठीक रहेगा। इसमें लोकवार्ता, लोकगीत, दूहा, सोरठा, भजन, बरत, कहावतें आदि सभी आ जाती हैं और जलसा दिन भर चल सकता है। यह काम करने योग्य लगता है।

दूसरी बात, अभी तो बड़े कहते हैं और बालक कहानी सुनते हैं, लेकिन आगे चलकर बालक ही जलसे में कहानी कहने लगे। जलसे को इस मार्ग पर ले जाने में जलसे की उपयोगिता है। इससे बालक की कहानी की शक्ति व्यक्त होगी, बढ़ेगी और बालक हमारी पराधीनता से मुक्त होंगे। हम देख भी सकेंगे कि हमारे

कथन से बालकों ने समग्र रूप में क्या-कुछ ग्रहण किया है। कहानी कह कर हम बालकों से वापिस उगलवायें नहीं फिर भी हम यह जान सकेंगे कि उन पर हमारी कहानी की और कथन-शैली की कैसी छाप पड़ी है।

इस तरह बीच-बीच में लोक-साहित्य के जलसे आयोजित किए जाएँ तो अच्छा रहे।

4. ऐतिहासिक कहानियों का कथन

कहानी कहना एक प्रकार की मोहिनी है। मैंने अनुभव करके देखा है कि कहानी के द्वारा इतिहास का शिक्षण किया जा सकता है। ऐसा विचार शिक्षाविदों ने भी व्यक्त तो किया ही है। बाल-कहानियों और लोक-कहानियों के क्षेत्र से होकर आने वाले बालकों को ऐतिहासिक कहानियाँ सुनाना सरल और सरस लगता है। उनकी तल्लीनता वैसी की वैसी बनी रहती है। कहानियाँ सच्ची घटनाएँ होती हैं, ऐसा कहा जाता है, अतः बच्चे कई-कई तरह के प्रश्न पूछते हैं तथा कहानी में आने वाली अस्वाभाविकता या कि विचित्रता को ज्यों का त्यों स्वीकार नहीं कर लेते। फ़ौज में कितने आदमी थे, इस बाबत वे सुनिश्चित होना चाहते हैं। भावनाओं के प्रदर्शन में कई बार हिन्दू होना या राष्ट्र प्रेम पक्षपात कराता है। वास्तविक कहानी का प्रतिघोष युद्ध में और नाटक में ही गूँजता है। बच्चे कहानी के पात्रों के चित्र लेकर और आनंदित होते हैं। शिवाजी का सैनिक होने वाला पाठ सभी रुचिपूर्वक सुनते हैं।

कहानी की वस्तु

इस तरह ऐतिहासिक कहानी का कथन शुरू हो चुका है, पर वस्तु को लेकर क्या किया है? वस्तु के चयन में शुरुआत में पास का तथा धीमे-धीमे दूर का यह शास्त्रीय विचार तो त्याग दिया गया है। तभी तो काठियावाड़ के, बल्कि भावनगर के इतिहास से इतिहास-शिक्षण शुरू नहीं किया गया। शुरू में काठियावाड़, गुजरात, हिन्दुस्तान—ऐसे विभाग किए बिना समग्र हिन्द में विख्यात आकर्षक ऐतिहासिक विभूति की कहानियों को शामिल किया गया है। इस तरह जय शिखरी, वनराज, शिवाजी, दुर्गादास, हमीर आदि की कथाएँ कही गई हैं, और बालकों ने बहुत अधिक रुचि के साथ इन्हें सुना है। वस्तु को लेकर हमारी दरिद्रता

जबरदस्त है। फिर भी कहानी कहने वाले भाई रामनारायण ऐतिहासिक विषय-वस्तु को जहाँ-तहाँ से ढूँढ़ कर लाने में जबरदस्त परिश्रम कर रहे हैं।

इतिहास-शिक्षण की विधि

इतिहास के शिक्षण में काम आने वाली कालक्रमानुसारी, व्युत्क्रम अथवा केन्द्रानुसारी तीनों विधियों में से किसी भी विधि को यहाँ विशेष रूप से स्वीकृत नहीं किया गया है, यहाँ तो अलग-अलग व्यक्तियों की कथा कही जाती है। इसको चरित्र-कथन विधि नाम दिया जा सकता है। चरित्र नायक के आसपास जितना इतिहास गूँथा जा सके, उतना गूँथ लेने के पश्चात् उसकी शृंखला आगे जोड़ दी जाती है। चरित्र कथन पद्धति की सच्ची विशेषता चरित्रों के कथन में रहती है। अतएव वार्ताकार में कथन की कला के उपरांत भावाविष्ट होने की शक्ति भी चाहिए। जब ऐतिहासिक कथा कहने वाला व्यक्ति कहानी कहते-कहते इतिहास के पात्रों के साथ तन्मय बन जाता है, लड़ाई के प्रसंग में उसका चेहरा लालसुख हो जाता है मानो लहू छलक आया हो, और करुण प्रसंगों में जब वह स्वयं करुणता का अनुभव करने लगता है, तब कहानी-कथन को अद्भुत सफलता मिलती है। इतिहास के कथन में ऐसी सफलता दिखाई देती है।

इस उम्र में बालकों की ऐतिहासिक कहानियाँ इनके लिए स्वाभाविक खुराक हैं। उनकी विकासमान साहसिक वृत्ति को इतिहास की कहानियों से पोषण मिलता है। उनमें बहादुरी का संचार होता है तथा देशभिमान और जात्याभिमान का बीजारोपण होता है।

निष्कर्ष

छानबीन करने पर पता लगा है कि लगभग सभी बालकों को कहानियों की घटनाएँ याद रहती हैं, उनके स्थल और पात्रों के रिश्तों की भी उन्हें अच्छी खासी जानकारी रहती है। रटने पर भी जो याद नहीं रहता वह बालकों को सहज ही याद रह जाता है। इस संबंध में अभी काफी-कुछ किया जाना है। □

तेरहवाँ प्रकरण

कथा-कहानी का भंडार

इस पुस्तक का यह अंतिम प्रकरण है। इसमें इस बात की जानकारी दी गई है कि कहानी कहने वाला वांछित कहानियाँ कहाँ से प्राप्त करे। कहानी के क्रम में हमने पाँच श्रेणियाँ रखी हैं। पहली श्रेणी तुकबंदियों की अथवा तुकबंदियों-युक्त¹ कथा-कहानियों की है। दूसरी श्रेणी कल्पित² कथा-कहानियों की है। तीसरी श्रेणी शूरवीरता³ संबंधी कथा-कहानियों की है। चौथी श्रेणी अद्भुत और प्रेम⁴ कहानियों की है। पाँचवीं श्रेणी में सामान्य⁵ कथा-कहानियों को शामिल किया गया है। इस प्रकरण के अंत में उल्लिखित कथा-कहानियों में से कौन-सी किस श्रेणी की है, यह बात कथाकार को श्रेणी के गुणधर्म के अनुसार तय करना चाहिए। वैसे बालकों के सामने जब कहानी कही जाएगी तो हमें अपने आप पता लग जाएगा कि कौन-सी कहानी किस श्रेणी की है।

गुजराती की कहानियाँ तो हमें उपलब्ध हैं ही, अन्य भाषाओं की कहानियों को कथाकार अपनी भाषा में रूपांतरित कर ले। रूपांतरण के द्वारा कहने योग्य कहानी बना ली जाए, यह दूसरा काम है। गुजराती भाषा की कहानियों में कहने योग्य कहानियाँ ज्यादा नहीं हैं। यह परिस्थिति अस्वाभाविक नहीं है। कारण यह है कि आज दिन तक इस दिशा में कथा-लेखकों का ध्यान गया ही नहीं। जो कहानियाँ सिर्फ कहानियाँ हैं, उन्हें कहने-योग्य तो बनाना ही होगा। इस कच्ची धातु को तपा-गला कर आकार और चमक तो देनी ही होगी। खान से निकले हीरों-माणकों को बहुत गौर से घिस कर पहलदार बनाना होगा। अब तक प्रकाशित हमारी कहानियों की किताबें बालकों की दृष्टि से नहीं लिखी गईं अतः मैं उन्हें जस का तस उपयोग में लेने की सलाह नहीं दूँगा। अब तक जिन-जिन उत्साही लोगों ने कथा-साहित्य तैयार किया है, बेशक उन्होंने अपनी दृष्टि से उपयोगी (अमूल्य) साहित्य दिया है, पर वह सब है कच्चा माल ही। उसे भट्टी में चढ़ाकर हमें उसका शोधन करना पड़ेगा।

1. Rhythmic Period, 2. Imaginative Period, 3. Heroic Period, 4. Romantic Period, 5. General Period.

सूची में उल्लिखित किताबों को कथा-चयन की दृष्टि से प्रत्येक कथाकार को अपने स्तर पर परख लेना है और तभी उन्हें कहने-योग्य बनाने का परिश्रम करना है। मैंने कथा-कहानी के बारे में जो सिद्धांत बनाए हैं, उनको भंग करने वाली कोई कहानी अगर इस सूची में आ गई हो तो उसे अवश्य हटा दें। आदर्श के अंतर से अगर कोई कहानी आघातजनक लगे तो उसका मुझे धोखा नहीं होगा।

अंग्रेजी में कथा साहित्य बहुत विस्तृत है। इस सूची के लिए कैथर के प्रयत्नों को धन्यवाद। इनकी पुस्तक *Educating by Story Telling* के प्रत्येक अध्याय के अंत में सही किताबों की सूची दी गई है। कैथर की सूची स्वयं में पूर्ण है, ऐसा न समझ बैठें। तमाम सूचियाँ दिशा सूचक मात्र होती हैं। गुजराती पुस्तकों की सूची भी अपूर्ण है। जो-जो भाई इस सूची में वांछित वृद्धि करना चाहें, उनका सहयोग प्रेम से स्वीकार किया जाएगा। अन्य भाषाओं की पुस्तकों की सूची का विचार मात्र दिशा रूपी है। अभी इन सूचियों में शून्य ही है।

सूची में लिखी हुई पुस्तकों के नाम देखकर कहानी कहने वाले किसी व्यक्ति को ऐसा लगेगा कि वाह, यह तो कथा-कहानी का अच्छा-खासा भंडार मिल गया। यह हकीकत सच है, पर इसका लाभ एकदम से नहीं उठाया जा सकेगा। कथा के भंडार से उपयोगी कथा बनाने का काम मुश्किल है, इसी से कहानी को कहने योग्य बना लेने की कला पर अधिक बल देना मुझे बहुत जरूरी लगता है।

कई किताबों के नाम पढ़कर कथाकारों को हैसी आएगी। उन्हें लगेगा कि ऐसी कहानियों को भी कहाँ गिना दिया? सूची बनाने में मैंने कोई पक्षपात नहीं किया। जो कहानी मुझे साधन के बतौर अच्छी लगी, उसे मैंने अवश्य लिया है। 'सदेवंत सावलिंगा' की तथा 'गजरा मारू' की कहानियों को मैं खराब नहीं मानता। इनका भी अपना स्थान है। कथा-कहानी के शास्त्र के अनुसार इसमें वांछित फेर-बदल कर लेने की हमें छूट है। अधिकांशतया मैं नयी और पुरानी दोनों तरह की कहानियों को स्थान देता हूँ, तथापि पुरानी कहानियाँ मुझे ज्यादा पसंद आती हैं। इसका कारण यह है कि उनमें स्वाभाविकता अधिक होती है, उनकी सादगी आकृष्ट करती है तथा उनका प्रमुख उद्देश्य आनंद प्रदान करना होता है। कई कहानियाँ मैंने सूची में शामिल अवश्य की हैं, पर मुझे लगता है कि वे निष्फल जाएँगी। उन्हें भी एक अवसर देना मुझे समीचीन लगा।

228 कथा-कहानी का शास्त्र

कथा-कहानी की सूची पर विचार करते हुए मुझे लगता है कि हमारी भाषा में कहानी के अच्छे संग्रह बहुत कम हैं। स्व. कांटावाळा जैसे कुछेक व्यक्तियों का ही ध्यान ऐसे संग्रहों की ओर गया है, लेकिन अभी इन संग्राहकों की दिशा स्पष्ट नहीं हुई। तभी तो इनकी कहानियाँ खान में से खोद कर निकाले गए कच्चे सोने जैसी हैं। बहुत अशुद्ध। अभी इनको फिर से लिखकर शुद्ध करने की जरूरत है। यहाँ शुद्धि का अर्थ भाषा-शुद्धि के संकेत में नहीं है।

मेरी कामना है कि थोड़े ही अर्से में तरह-तरह के बालोपयोगी कथा-कहानी संग्रह हमारी भाषा में प्रकाशित होंगे। श्री झवेरचंद मेघाणी ने इस दिशा में सुंदर काम शुरू किया है, यह हर्ष का विषय है। दूसरे उत्साही युवकों ने भी काम आरंभ कर दिया है, ऐसा मुझे विदित है। अतः मेरी आशा व्यर्थ नहीं जाएगी। इस क्षेत्र में काम करने वाले जिन-जिन भाई-बहनों के नाम का उल्लेख होना रह जाए, वे मेरे अज्ञान को ही दोषी मानें, बावजूद इसके मेरा उन्हें बहुत धन्यवाद!

अंग्रेजी में इस विषय पर बहुत लिखा गया है। हमारी भाषा में यह पहला-पहला प्रयास है—विनम्र प्रयास। यह विनम्र प्रयास सफल हो, ऐसी कामना के साथ यह प्रकरण समाप्त करता हूँ। □

सूची

अठारह पुराण	
अँधेरी नगरीनो गंधर्व सेन	हरगोविंददास द्वा. कांटावाळा
अरेबियन नाइट्स	
अमारी वार्ताओ भाग 1-2-3	नागरदास ई. पटेल
आख्यायिकाओ खंड 1-2	नानाभाई का. भट्ट
आदर्श चरितावली भाग 1-2	धीरजलाल अमृतलाल भट्ट
आपणी लोक कथाओ	स्व. कमला बेन
इरानियन नाइट्स	ब. न. काब्राजी
ईसप कृत कल्पित वातो	
ईसप नीति पूर्वार्द्ध	चित्रशाला प्रेस
ईसप नीति भाग 1-2	चित्रशाला प्रेस

कथा-कहानी का भंडार 229

उद्यम कर्म संवाद
 उपनिषदो नी वातो
 ओखाहरण
 कच्छ देश नी जूनी वातो
 कथा मंजरी भाग 1-2
 कथावलि भाग 1-2 (टल्सटाय)
 कथा सरित्सागर भाग 1-2
 करण घेलो
 कंकावटी भाग 1-2
 काउंट टल्सटायनी टूकी वार्ताओ
 काउंट टल्सटायनी टूकी वार्ताओ
 काठियावाड़ नी जूनी वार्ताओ
 काठियावाड़ी साहित्य
 काठियावाड़ नी लोक वार्ताओ
 किशोर कथाओं खंड 1-2
 कुरबानी नी कथाओ
 कौतकमाळा अने बोधवाचन
 खजाना नी शोध मां
 खलीफा नां अद्भुत पराक्रम
 खाटी-मीठी वातो
 गजरा मारू नी वार्ता
 गिरीश भाई नी वार्ताओ
 गुजराती बाळमित्र 1-2
 गुजरात तथा काठियावाड़ देश नी वातो
 गुजरात नी जूनी वार्ताओ
 गुलबंकावली
 गुलीवर नी मुसाफरी
 230 कथा-कहानी का शास्त्र

कवि शामळदास
 वळामे
 कवि प्रेमानंद
 गौरीशंकर विजयशंकर बोरसात
 जीवनलाल अमरशी महेता
 विश्वनाथ म. भट्ट
 गुजराती प्रेस
 नंदशंकर तुळजाशंकर
 झवेरचंद मेघाणी
 भोगिन्द्र राव दिवेटिया
 नरसिंह भाई ई. पटेल
 हरगोविंद प्रेमशंकर त्रिवेदी
 कवि कानजी धर्मसिंह
 गो. द्वा. रामचुरा
 गिजुभाई
 सौराष्ट्र साहित्य मंदिर
 गणेशजी जेठाभाई
 मूळशंकर मो. भट्ट
 मणिलाल के. परीख
 नानालाल मगनलाल
 गिरीश म. भट्ट
 मुंबई इलाका नुं केळवणी खातुं
 गु. व. सोसाइटी
 मणिलाल छबाराम
 (अंग्रेजी नुं भाषांतर)

गोळीबार नी मुसाफरी 1-2
 घासीराम कोटवाळ
 चक्रवर्ती अशोक
 चंद्रकांत 1-2-3-4
 छत्रपति शिवाजी
 जातक कथा संग्रह भाग-1
 जातक कथाओ
 जातकमाळा
 जादुई बाग भाग 1
 जे मंगला हाथी नी वार्ता
 झांसी नी राणी
 टचुकडी सो वातो भाग 1-4
 टारजन
 टूकी वार्ताओ भाग 1-7
 टागोर नी टूकी वार्ताओ-1
 टागोर नी टूकी वार्ताओ-2
 टोड राजस्थान
 डोशी मा नी वार्ता
 दखण नी दंत कथाओ
 दरियापार नी वातो
 दादाजी नी वातो
 देश-देशनी अद्भुत वातो 1-2
 देश-देशनी दंत कथाओ
 देश-देशनी मार्मिक वातो
 देश-देशनी रसमय वातो
 देव कथाओ
 धर्मात्माओ ना चरितो

सौ. हंसा महेता
 शाकेरराम दलपतराम
 द. भा. रावळ
 इच्छाराम सूर्यराम देसाई
 डाह्याभाई रामचंद्र महेता
 धर्मानंद कोसंबी
 हरभाई त्रिवेदी
 प्रभुदास प्राणजीवन ठक्कर
 कृष्ण प्रसाद गिरजाशंकर भट्ट

मणिलाल छबाराम भट्ट
 हरगोविंददास द्वा. कांटवाळा
 शंकर शाह
 सस्तुं साहित्यवर्धक कार्यालय
 धनशंकर ही. त्रिपाठी
 ललित वाङ्मय ग्रंथमाळा
 सवाईलाल छोटमलाल वहोरा
 सौराष्ट्र साहित्य मंदिर
 एन. एम. त्रिपाठी नी कं.
 गणपतराम अनुपमराम त्रिवाड़ी
 झवेरचंद मेघाणी
 रमणलाल ना. शाह
 रमणलाल ना. शाह
 हरिलाल मा. देसाई
 हरिलाल देसाई : कल्याण राय जोशी
 चंद्रशंकर म. भट्ट
 गिजुभाई

धीरजलाल टोकरशी शाह कृत (जैन धर्म संबंधी) वार्ताओ
 नंद बत्तीशी
 नवरंगी बालको
 नवल कथा संग्रह भाग -1
 नवल ग्रंथावली
 नवा युग नी वातो भाग 1-2
 नागमती अथवा प्रेमनी प्रतिमा
 नागानंद नाटक
 नाट्य कथा रस (शेक्सपियर)
 नानी नानी वार्ताओ 1 से 5
 नीति शिक्षण
 पंचतंत्र
 पंचदंड
 पंचासरनो जयशिखरी
 पराक्रमी लाखो फूलाणी
 पांच वातो
 पृथुराज चहुआण
 प्रवास वार्ता
 बैकिम निबंधमाळा
 बत्रीश पूतळीनी वार्ता
 बरास कस्तूरी नी वार्ता
 बाइबल कथाओ
 बादशाह अने बीरबल
 बालवार्ता
 बालवार्ता भाग 1 से 5
 बाल वार्तावलि भाग 1-2
 बालको नो आनंद भाग 1-2
 232 कथा-कहानी का शास्त्र

कवि शामळ भट्ट
 भोगिन्द्र राव दिवेटिया
 रत्नसिंह दीपसिंह परमार
 नवलराम लक्ष्मीराम पंड्या
 सस्तुं साहित्यवर्धक कार्यालय
 धीरजसिंह व्हेराभाई गोहेल
 राजाराम रामशंकर
 एन. एम. त्रिपाठी नी. कें.
 चित्रशाला प्रेस
 आनंदशंकर बापुभाई ध्रुव
 प्राणजीवन हरिहर शास्त्री
 कवि शामळ भट्ट
 चंदुलाल जे. व्यास
 धीरजसिंहजी व्हेराभाई गोहेल
 मणिलाल छबाराम भट्ट
 शंकर शाह अने नरेन्द्र बंधेका
 पाठक अने महेता
 कवि शामळ भट्ट
 कवि शामळ भट्ट
 सुबन्धु आत्माराम
 साकरलाल बुलाकीदास
 गं. मा. वैष्णव
 गिजुभाई
 सौ. हंसा महेता
 इच्छाराम सूर्यराम देसाई

बाल सद्बोध वार्ताशतक
 बे बहेनो
 बुद्ध लीला सार संग्रह
 बोंबयुग नुं बंगाला
 भारत ना महान पुरुष 1-2
 भारत लोककथा भाग 1 से 9
 भारत ना वीर पुरुषो भाग 1-2
 भारत ना स्त्रीरलो भाग 1-2-3
 भूतकाल ना पड़छाया भाग 1-2
 मझापचीसी
 मधपूडो
 मनुशपरेमी (वार्ताओ नो जूनो संग्रह)
 मनोरंजक वार्तावलि भाग-1
 महान अलेक्जेंडर
 महान सिख गुरुओ
 महाभारत
 महाभारत ना पात्रो
 महाभारत कथा
 महाराणा प्रताप
 महाराणा बापाराव
 महाराष्ट्रीय कथाकुंज
 मांगडो भूत
 मानमुसाफरी
 मीठी-मीठी वातो
 मूळराज सोलंकी
 मेवाड़नी जाहोजलाली
 रखडुं टोळी भाग 1-2

खंडुभाई मकनजी उमरवाडिया
 हरगोविंददास द्वा. कांटावाळा
 अध्यापक धर्मानंद कोसंबी
 गांडीव साहित्य मंदिर
 सस्तुं साहित्यवर्धक कार्यालय
 गुजराती प्रेस
 सस्तुं साहित्यवर्धक कार्यालय
 सस्तुं साहित्यवर्धक कार्यालय
 गुणवंतराय आचार्य
 कवि शामळ भट्ट
 नटवरलाल वीमावाळा
 पे. का. रबाडी
 छगनलाल हरिलाल पंड्या
 वृजलाल जादवजी ठक्कर
 सस्तुं साहित्यवर्धक कार्यालय
 गुजराती प्रेस
 नानाभाई का. भट्ट
 नानाभाई का. भट्ट
 रमणलाल वसंतलाल
 ल. का. पटेल
 छो. दा. देसाई
 धीरजसिंह व्हेराभाई गोहेल
 गणपतराम अनुपमराम त्रिवाड़ी
 सुब्रीलाल वर्धमान
 विठ्ठलदास धनजी पटेल
 गिजुभाई

रलमाळा
 रशीदनी पेट अने बीजी वार्ता
 राजस्थान नो इतिहास भाग-1
 रामायण
 रामायण ना पात्रो
 रासमाळा भाग 1-2
 रोबिन्सन क्रूसो
 वनराज चावडो
 वर्तमान युग ना बहिरवटिया
 वार्ता विहार
 विज्ञान नी वातो
 वीर दुर्गादास
 वीर मंडल
 वीर नी वातो भाग 1 से 4
 वीर कथाओ
 शिशु सद्बोध माळा भाग 1-2-3
 शूरवीर नी वातो भाग-1
 शेरलोक होम्स ना पराक्रमो
 श्रीमद् भागवत
 सती अजळा
 सती मंडळ
 सद्गुणी बालको
 सदेवंत सावलिंगा
 सधरा जेसंग
 सागर सम्राट
 सारी-सारी वातो भाग 1 से 4
 साहसिको नी सृष्टि
 234 कथा-कहानी का शास्त्र

कवि दलपतराम डाह्याभाई
 नटवरलाल वीमावाळा
 सस्तुं साहित्यवर्धक कार्यालय
 सस्तुं साहित्यवर्धक कार्यालय
 नानाभाई का. भट्ट
 रणछोड़भाई उदयराम ओझा
 चंद्रशंकर म. भट्ट
 महीपतराम रूपराम नीलकंठ
 झवेरचंद मेघाणी
 वृजलाल जादव जी ठक्कर
 कल्याण राय नथुभाई जोशी
 विठ्ठलदास धनजीभाई पटेल
 नारायण हेमचंद
 टी.पी. अडलजा
 मोतीलाल बापुजी शाह
 वृजलाल पु. महेता
 मगनलाल ब्रह्मभट्ट
 धनसुखलाल महेता
 गुजराती प्रेस
 धीरसिंहजी व्होराभाई गोहेल
 केशवजी विश्वनाथ त्रिवेदी
 नारायण हेमचंद्र
 महीपतराम रूपराम नीलकंठ
 मूळशंकर मो. भट्ट
 रमणलाल ना. शाह
 मूळशंकर मो. भट्ट

सिंदबाद नी सात सफरो
 सिंहासन बत्तीसी 1-2
 सुडाबहोतरी
 सुंदर कामदार
 सोन कंसारी
 सोरठी वहारवटिया 1-2-3
 सोरठी संतो
 सोरठी विभूतियो
 सोरठी शूरवीरो
 सौराष्ट्र नी रसधार भाग 1 से 5
 स्वर्ग ना पुस्तको
 हलामण जेठवो
 हाजी बाबा नां साहसकर्मो
 हास्य कथा मंजरी
 हास्यजनक वार्तालाप
 हितोपदेश
 होयल पदमणी

वि. य. अवसत्थी
 केशव प्रसाद छे. देसाई
 कवि शामल भट्ट
 धीरजसिंह जी व्होराभाई गोहेल
 झवेरचंद मेघाणी
 झवेरचंद मेघाणी
 मनुभाई मेघाणी
 मनुभाई मेघाणी
 झवेरचंद मेघाणी
 अमृतलाल सुंदरजी पट्टियार
 गुजराती प्रेस
 जीवणलाल अमरशी
 छगनलाल हरिलाल पंड्या
 धीमतराम न. पंडित

परिशिष्ट

मरम की बात

गिजुभाई बंधेका की इस पुस्तक 'कथा कहानी का शास्त्र' जब पहली बार सन् 1925 में छपी थी, तब 'रहस्य' शीर्षक से प्रख्यात विद्वान काका साहब कालेलकर ने इसकी भूमिका लिखी थी। यहाँ प्रस्तुत है उस भूमिका का रूपांतरण।

ऋषि-महर्षि और साधु-संत सामान्यतया जन-कोलाहल से बहुत दूर जंगल में जाकर निवास करते हैं लेकिन श्रद्धालु भक्त भी जैसे-तैसे उन तक पहुँच जाते हैं और वहाँ एक बस्ती बस जाती है। धीरे-धीरे वहाँ बाजार भी बन जाता है और वह स्थान श्रद्धालुओं के लिए सहज सुलभ हो जाता है। तब प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में रहने वाले साधु उस स्थान को छोड़कर कहीं आगे निकल जाते हैं और नया जंगल ढूँढ़ कर वहाँ रहने लग जाते हैं। इस तरह जंगल का प्रदेश धीमे-धीमे आदमी के नियंत्रण में आता जा रहा है।

यही बात ज्ञान के प्रदेश पर लागू होती है। प्रतिभा सम्पन्न, क्रांतदर्शी और दूरदर्शी मनीषी लोग अनुभवों, विचारों एवं कल्पना के नए-नए प्रदेशों और साधनों को ढूँढ़ निकालते हैं और मनुष्य की बुद्धि को चकित कर डालते हैं। धीमे-धीमे उनके सम्पर्क-साहचर्य में रहने वाला शिष्य समुदाय भी उन मनीषियों के ज्ञान को 'प्रणिपातेन, परिप्रश्नेन और सेवया' सीख लेता है। धीमे-धीमे उसका भी एक मार्ग, एक विभाग बन जाता है और जो चीज किसी काल में प्रतिभा या ईश्वरीय वरदान मानी जाती थी, उसका एक व्यवस्थित शास्त्र बन जाता है। उसका अनोखापन और अद्भुतता समाप्त हो जाती है, उसके नियमों-उपनियमों का साम्राज्य फैल जाता है और आखिरकार वह सर्वसाधारण के अध्ययन-मनन का एक अनिवार्य अंग बन जाता है।

इतना हो जाने के पश्चात् मनुष्य की विजय-लोलुप प्रतिभा उससे भी आगे बढ़ती है, आगे का प्रदेश ढूँढ़ निकालती है और कुछ अर्से तक वह नया-ज्ञान प्रतिभा का—जीनियस का क्षेत्र माना जाता है। नए-नए ज्ञान की खोज का यह क्रम अनादि काल से चला आया है और चलता रहेगा।

किसी जमाने में ऐसा माना जाता था कि कविता का शास्त्र हो ही नहीं सकता। बल्कि ऐसी भी मान्यता थी कि सौंदर्यशास्त्र और कला की विशेषताओं को व्यक्ति अपने-आप आत्मसात करता है। भला इनमें किसी दूसरे को सिखाने की बात ही क्या है! और तो और भोजन बनाने का शास्त्र भी नहीं हो सकता। बचपन में मैंने एक कथा के मंगलाचरण के रूप में एक बार निम्न दोहा सुना था।

रागी, बागी, पागी, पारखी अरु न्याव।

इन पांचन को गुरु होत है, पर उपजत अंग स्वभाव ।।

उस कथाकार का भाव यह था कि संगीत, बागवानी, अश्वपालन, रत्न-परीक्षा और न्याय ये पाँच व्यवसाय ऐसे हैं जो गुरु के पास रहते हुए विधिवत् सीखे जा सकते हैं, लेकिन आखिरकार आदमी के अंदर ही कुछ ऐसा होता है कि जहाँ दिया-लिया नहीं जा सकता। बेचारे कथाकार को यों बोलते समय इस बात का खयाल तक नहीं आया होगा कि सरस्वती का वरदान समझे जाने वाले उसके 'कथा-वाचन' के व्यवसाय पर भी कोई काठियावाड़ी अध्यापक एक पूरा शास्त्र लिख डालेगा।

सचाई यही है कि शिक्षण-कला भी 'उपजत अंग स्वभाव' ही है, पर इसके एक-एक अंग पर लिखे जाते-जाते सम्पूर्ण शिक्षण-कला पर शास्त्र लिखा जा चुका है। स्वच्छंदतापूर्वक विचरण करने वाली कथा-कहानी की विधा न जाने किस विचित्र मुहूर्त में शिक्षण की सहायता के लिए उसके पास गई थी, पर एक अध्यापक के हाथ लग गई और देखते-देखते उसका भी शास्त्र बन गया।

यह 'कथा-कहानी का शास्त्र' सिर्फ अध्यापकों के लिए ही उपयोगी नहीं है अपितु लेखकों, साहित्य के आचार्यों, चारण-भायों, कथा-पुराणियों और नाटककारों सभी के लिए है। उनके लिए इस ग्रंथ को पढ़े बिना छुटकारा नहीं है।

कथाएँ कहने में प्रवीण कथाकार, चारण, भाट, अध्यापक, उपदेशक, मुसाफिर और साधु-संत सभी इस ग्रंथ में अपनी-अपनी विशेषताओं को स्पष्ट एवं बोधगम्य रीति से लिखा हुआ जब देखेंगे तो अवश्य ही वे इस ग्रंथ के रचनाकार पर अपनी नाराजगी व्यक्त करेंगे कि उसने उनके रहस्य-स्फोट (Trade Secret) को इस तरह जाहिर कर डाला। पर मैं समझता हूँ कि उन सभी को इस बात की खुशी भी होगी और संतोष भी कि इस लेखक ने कितनी सारी बहुमूल्य बातों की जानकारी दी है।

कथा-कहानी के शास्त्र पर अंग्रेजी में लिखी अनेक पुस्तकें उपलब्ध हैं। अगर गिजुभाई ने उन पुस्तकों में से किसी एक का सिर्फ अनुवाद किया होता तो मैं नहीं समझता कि उससे शिक्षाशास्त्र की अथवा गुजराती भाषा की किसी तरह की सेवा होती। बल्कि वे 'उपजत अंग स्वभाव' की चमक चढ़ा कर स्वयं कथा-प्रवीण बने, अनेक प्रकार के साहित्य में अवगाहन करके कथा-वारिधि बने और तब 'कथा-कहानी का शास्त्र' लिखने बैठे। यह उनकी रचनाशीलता का स्वतंत्र प्रयत्न है और स्वतंत्रता के सभी लक्षण इसमें स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। पुस्तक के प्रारंभिक प्रकरणों में शास्त्रीय पद्धति के निरूपण के कारण थोड़ी जड़ता दिखाई दे सकती है, लेकिन जैसे-जैसे उनका वर्णन-विवेचन आगे बढ़ता है, वैसे-वैसे प्रपात की भाँति उसका वेग आगे बढ़ता जाता है। कथा-शास्त्र के सभी अंगों-उपांगों से गुजरते हुए लेखक की भाषा ऐसी छय दिखाती है मानो सचमुच ही हम उनका व्याख्यान सुन रहे हों।

इस ग्रंथ की खास खूबी तो इसके उत्साह में निहित है। इसके कई अनुच्छेद गुजराती साहित्य के सुंदर दृष्टान्तों की भाँति शोभा देते हैं। उन तमाम बातों का उल्लेख करते हुए मुझे भय है कि कहीं पुनरुक्ति न हो जाए, अतः स्वयं पर नियंत्रण लगाता हूँ। एक सामान्य पाठक को भी, जिसे कथा-कहानी का शास्त्र सीखने में कोई रुचि नहीं है, इस ग्रंथ को पढ़ने पर अत्यंत आनंद आएगा। अब अगर कोई 'शास्त्र' शब्द से ही भड़क उठे, और नीरस तात्त्विक-विवेचन की आशंका से इसे छूना ही न चाहे तो यह उसी का दुर्भाग्य होगा।

मैंने गिजुभाई की लगभग प्रत्येक पुस्तक की भूमिका लिखी है अतः उनके प्रति मेरा पक्षपात सुविदित है। लेकिन पक्षपात को एक तरफ रख दूँ तो तटस्थ भाव से मेरा अभिमत यही होगा कि 'कथा-कहानी का शास्त्र' की रचना में गिजुभाई अत्यंत सफल रहे हैं। शिक्षाशास्त्र के लिए यह उनका बहुमूल्य अवदान है। अध्यापकों को इस ग्रंथ के द्वारा यह जानने को मिलेगा कि जब वे अध्यापक बन ही गए हैं तो उन्हें कहानी के शिक्षण को लेकर किन-किन दृष्टिकोणों से विचार करना चाहिए।

—दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

गिजुभाई का जीवन वृत्त

- 1885 15 नवम्बर को जन्म, जन्म स्थान चित्तल, सौराष्ट्र
- 1897 प्रथम विवाह स्व. हरिबेन के साथ
- 1906 द्वितीय विवाह श्रीमती जड़ी बेन के साथ
- 1907 पूर्वी अफ्रीका प्रस्थान
- 1909 स्वदेश आगमन
- 1910 मुम्बई में कानून की पढ़ाई
- 1913 हाई कोर्ट प्लीडर, बड़वाण केम्प
- 1913 श्री नरेन्द्र भाई का जन्म
- 1915 श्री दक्षिणामूर्ति भवन के कानूनी सलाहकार
- 1916 श्री दक्षिणामूर्ति विद्यार्थी-भवन से जुड़े
- 1920 बाल मन्दिर की स्थापना
- 1922 भावनगर में तख्तेश्वर महादेव मन्दिर के समीप टेकड़ी पर बने बाल-मन्दिर भवन का उद्घाटन पूज्या कस्तूरबा गांधी के कर-कमलों से
- 1925 प्रथम मोंटेसरी सम्मेलन, भावनगर
- 1925 प्रथम अध्यापन मन्दिर स्थापित
- 1928 द्वितीय मोंटेसरी सम्मेलन अहमदाबाद की अध्यक्षता
- 1930 सत्याग्रह संग्राम में : शरणार्थी शिविरों में निवास, वानर परिषद सूरत, अक्षरज्ञान योजना प्रारम्भ
- 1936 श्री दक्षिणामूर्ति विद्यार्थी भवन से मुक्त
- 1936 करांची में आयोजित बाल मेले के अध्यक्ष : कच्छ का प्रवास
- 1937 सम्मान थैली भेंट
- 1938 गुजरात का प्रवास—राजकोट में अन्तिम अध्यापन मन्दिर शुरू किया
- 1939 23 जून को मुम्बई में देहावसान

मोण्टीसोरी-बाल-शिक्षण-समिति
राजलदेसर (चूरू) राजस्थान
द्वारा प्रकाशित गिजुभाई-ग्रंथमाला

1. दिवास्वप्न
2. माता-पिता से
3. माता-पिता के प्रश्न
4. माँ-बाप बनना कठिन है
5. माँ-बापों की मायापट्टी
6. प्राथमिक शाला में भाषा-शिक्षा
7. शिक्षक हों तो
8. बाल शिक्षण : जैसा मैं समझ पाया
9. प्राथमिक शाला में शिक्षा-पद्धतियाँ
10. प्राथमिक शाला में शिक्षक
11. प्राथमिक शाला में चिट्ठी-वाचन
12. मोटेसरी-पद्धति (प्रथम खण्ड)
13. मोटेसरी-पद्धति (द्वितीय खण्ड)
14. प्राथमिक शाला में कला-कारीगरी की शिक्षा (प्रथम भाग)